प्रस्तावना.

(प्रथम संस्करण)

पाठक महाशय ! हमारी इच्छा थी कि मूल ग्रन्थकर्त्ताका जीवन चरित्र यथाशक्ति संग्रह करके प्रकाशित किया जाय परंतु यथासाध्य अन्वेषण करनेपर भी ग्रन्थकर्त्ताका कुछ भी तथ्य संग्रह नहिं हुवा. विशेष खेदकी बात यह है कि स्वामिकार्त्तिकेय मुनिमहाराज कौनसी शताब्दीमें हुए सो भी निर्णय नहिं हुवा यद्यपि दंतकथापरसे प्रसिद्ध है कि ये आचार्यवर्य विक्रम संवतसे दो तीनसौ वर्ष पहिले हुये हैं. परंतु जबतक कोई प्रमाण न मिले इस दंतकथापर विश्वास नहिं किया जा सक्ता. आचार्योंकी कई पट्टावली भी देखी गई उनमें भी इनका नाम कहीं पर भी दृष्टिगोचर नहिं हुवा किंतु इस ग्रंथकी गाथा ३९४ की संस्कृत टीका वा भाषा टीकामें इतना अवश्य लिखा हुवा मिला कि—" स्वामिकार्त्तिकेय मुनि क्रौंचराजाकृत उपसर्ग जीति देवलोक पाया " परंतु क्रौंचराजा कब हुवा और यह वाक्य कौनसे ग्रंथके आधारसे टीकाकारने लिखा है सो हमको मिला नहीं. एक मित्रने कहा कि इनकी कथा किसी न किसी कथा कोषमें मिलेगी. परंतु प्रस्तुत समयतक कोई भी कथाकोश हमारे देखनेमें नहिं आया परंतु इसमें कोई संदेह नहीं कि ये बालब्रह्मचारी आचार्यश्रेष्ठ दो हजार वर्षसे पहिले हो गये हैं. क्योंकि इस ग्रन्थकी प्राकृत भाषा व रचनाकी शैली विक्रमशताब्दीके बने प्राकृत पुस्तकोंसे भिन्न प्रकारकी ही यत्र तत्र दृष्टिगत हुई. प्रचलित आधुनिक प्राकृतभाषाके व्याकरणोंमें भी इस ग्रन्थके आर्षप्रयोगोंकी सिद्धि बहुत कम मिलती है. इसकारण मूल पुस्तकको शुद्ध करनेमें भी सिवाय प्राचीन प्रतियोंके कोई साधन प्राप्त नहिं हुवा है।

इस ग्रन्थमें मूल गाथा ४८९ हैं जिनमें मुमुक्षुजनोंके लिये प्रायः आवश्यकीय सब ही विषय संक्षिप्त स्पष्टतया वर्णन किये गये हैं. परंतु मुख्यतया इनमें संसारके दुःख दिखाकर संसारसे विरक्त होनेका उपदेश है, इसकारण समस्त विषय द्वादश अनुप्रेक्षाके कथनमें ही गर्भित करके वर्णन किये गये हैं. मानो घडेमें समुद्र भर दिया गया है।

इस ग्रंथपर एक टीका तो वैद्यक ग्रंथके कर्त्ता जगत्प्रसिद्ध दिगंबरजैनाचार्य वाग्भट्ट विरचित है. जिसका उल्लेख पिटर्सनसाहब तथा बूथरसाहब की किसी रिपोर्टमें किया गया है. उसके आदि अन्तके श्लोक छपे हुये एकवार हमारे देखनेमें आये थे। दूसरी टीका—पद्मनंदी आचार्यके पट्टपर सुशोभित त्रैविद्यविद्याधरषड्भाषाकविचक्रवर्त्ति भट्टारक शुभचन्द्राचार्य सागवाडा पट्टाधीशकृत है. जिसमें अनेक प्राचीन जैनग्रंथोंके प्रमाणोंसे ७००० श्लोकोंमें विस्तृतव्याख्या की है. तीसरे—किसी महाशयने प्राकृत पदोंकी संस्कृत छाया लिखी है. इसके सिवाय एक प्राचीन गुर्जर भाषामिश्रित टिप्पणिग्रन्थ भी प्राप्त हुवा है. इन्ही सब ग्रंथोंपरसे मूल, तथा जयचन्द्रजीकी दो वचनिकापरसे शुद्ध करके मुद्रणयंत्रद्वारा इस ग्रंथकी सुलभ प्राप्ति की गयी है. मूलपाठमें जहां कहीं पाठान्तर था, कहीं २ टिप्पणीमें दिखाया गया है तथा संस्कृत टीकाकी प्रतिका पाठ शुद्ध समझकर वही पाठ रक्खा गया है।

यद्यपि हमारे कई मित्रोंकी सम्मति थी कि जयचन्द्रकृत वचनिका (भाषाटीका) ढुंढाडीभाषामिश्रित पुराने ढंगकी है. इसको वर्तमानकी प्रचलित हिंदीभाषामें परिवर्तन करके छापना उचित है. परन्तु हमने ऐसा नहिं किया, कारण जैनियोंका जो कुछ हिंदी साहित्य—धर्मशास्त्र, पारलौकिक पदार्थविद्या वा अध्यात्म पुराणादिक हैं वे सब जयपुरीभाषा और

आगरेकी प्राचीन व्रजभाषाके गद्यपद्यमें ही हैं. यदि इस प्राचीन हिंदी सा-हित्यको सर्व साधारणमें प्रचार नहिं करके सर्वथा आजकलकी नवीन गढी हुई भाषामें ही अनुवादके ग्रंथ छपाये जायगे तो कहांतक अनुवाद किया जायगा क्योंकि प्रथम तो प्राचीन भाषाके ग्रंथ बहुत हैं. दूसरे-हमारी क्षुद्रजैनसमाजमें ऐसे वहुत कम विद्वान हैं जो प्राचीन हिंदी साहित्यके समस्त विषयोंके सैंकडों ग्रंथोंका नयी हिंदीमें अनुवाद कर सक्के हों. तीसरे ऐसा कोई समझदार धर्मात्मा धनाढय सहायक भी तो नहीं दीखता, जो सबसे पहिले करने योग्य जिनवाणीके जीर्णोद्धार करनेमें पुण्य वा नामवरी समझ-ता हो. जब समस्तप्रकारके प्राचीन हिंदी जैनग्रंथोंके अनुवादपूर्वक प्रका-शित करनेका वर्तमानमें कोई साधन नहीं है और उपदेशकोंके द्वारा पाठ-शालायें स्थापन करनेका प्रचार बढाया जाता है तो कुछ ग्रन्थ प्राचीन भाषाके भी छापकर सर्व साधारणको इस भाषाके जानकार कर देना ब-हुत लाभ दायक हो सक्ता है क्योंकि नयी भाषाके ग्रन्थोंकी प्राप्ति नहीं होगी तो प्राचीन भाषाका ज्ञान होनेसे हस्तलिखित प्राचीन भाषाके ग्रंथोंकी स्वाध्याय करके ही हमारे जैनीभाई ज्ञानप्राप्ति कर सकेंगे. परंतु-यह भाषा कुछ मराठी गुजरातीकी तरह सर्वथा पृथक भी तो नहीं है ? हम जहांतक विचारते हैं तो कोई २ ठेठ ढुंढाडी शब्द होने तथा द्वितीया पं-चमी आदि विभक्तिव्यवहारका किंचिन्मात्र विभेदरूप होनेके सिवाय कोई भी दोष इस भाषामें दृष्टिगोचर नहिं होता. किन्तु आजकलकी नवीन हिंदी भाषामें बहुभाग लेखकगण व वंग भाषाके अनुवादकगण संस्कृत शब्दोंकी इतनी भरमार करते हैं कि उस भाषाको पश्चिमोत्तरप्रदेशके काशीप्रयागादि मुख्य २ शहरोंके सिवाय ग्रामनिवासी, मारवाडी (राजपूतानानिवासी) गुजराती आदि कोई भी नहीं समझ सक्के. ऐसा दोष इस प्राचीन जयपुरी

भाषामें नहीं है. क्योंकि यह भाषा वहुत सरल है तथा इस भाषाके ह-जारों गूंथ समस्त देशोंके बडे २ जैनमंदिरोंमें मोजूद हैं तथा बडे २ शहरों और ग्रामोंके पढे लिखे जैनी भाई नित्यशः स्वाध्याय भी करते रहते हैं. अतएव इस प्राचीन भाषाका अनादर नहिं करकें इस भाषामें ही ग्रन्थोंका छापना युक्तिसंगत समझकर इस ग्रंथको नवीन भाषामें परिवर्तन नहिं किया गया किन्तु खास विद्वद्वर्य पंडित जयचन्द्रजीकी भाषामें ही छपाया है. परंतु प्रमादवशतः यत्र तत्र इस भाषासंवंधी नियमोंका पालन नहिं हुवा हो तो जयपुर निवासी विद्वद्गण क्षमाकरेंगे।

मुम्बयी- जैनीभाइयोंका दास,

ता. १-१०-१९०४ ई० पन्नालाल वाकलीवाल.

वक्तव्य।

इस ग्रंथकी पहिली आवृत्ति नहीं मिल सकनेके कारण हमने सर्व साधारणके हितार्थ यह सुलभ संस्करण कराया है। पहिले गाथाओंके नीचे छाया भी वह इस वार नहीं छपाई गई क्यों कि संस्कृतज्ञ थोडासा ही प-रिश्रम करनेसे गाथाओं द्वारा भी अपना प्रयोजन सिद्ध कर सक्ते हैं। संशोधनमें यथाशक्ति सावधानी रक्खी हैं पं० जयचंद्रजी कृत पीठिका और विषय सूची साथमें छपाकर पहिली त्रुटि दूर करदी गई है।

आशा है पाठक गण! इस संसारके सच्चे स्वरूपको वतलानेवाले मनकी चंचलताके निवारक ग्रन्थका स्वाध्याय कर वास्तविक शांतिका लाभ करेंगे।

विषयसूची।

पीठिका।

अब यामें प्रथम ही पीठिका लिखिए है। तहां प्रथम ही मंगलाचरण गाथा एकमें करि बहुरि गाथा दोयमें बारह अनुप्रेक्षाका नाम कहे हैं। पीछै उगणीस गाथामें अध्रुवानुप्रेक्षाका वर्णन किया। पीछै अशरण अनुप्रेक्षाका वर्णन गाथा नवमें किया। पीछै संसार अनुप्रेक्षाका वर्णन गाथा बियालीसमें किया है। तहां च्यारि गति दुःखका वर्णन, संसारकी विचित्रताका वर्णन, पंच प्रकार परावर्तन रूप भ्रमणका वर्णन है। बहुरि पीछे एकत्वानुप्रेक्षाका वर्णन गाथा छहमें किया। पीछे अन्यत्वानुप्रेक्षाका वर्णन गाथा तीनमें किया। पीछै अशुचित्वानुप्रेक्षाका वर्णन गाथा पांचमें किया है। पीछे आस्रवानुप्रेक्षाका वर्णन गाथा सातमें किया है। पीछै संवरानुप्रेक्षाका वर्णन गाथा सातमें किया है। पीछे निर्जरानुप्रेक्षाका वर्णन गाथा तेरामें किया है। पीछै लोकानुप्रेक्षाका वर्णन गाथा एकसौ अडसठमें कीया है। तहां यहु लोक षट्द्रव्यनिका समूह है। सो आकाशद्रव्य अनंता है ताके मध्य जीव अजीव द्रव्य है ताकूं लोक कहिये है। सो पुरुषाकार चौदह राजू ऊंचा घनरूप क्षेत्रफल कीए तीनसै तियालीस राजू होय है। ऐसें कहिकरि पीछै कह्या है जो यह जीव अजीव द्रव्यनितैं भर्या है। तहां प्रथम जीव द्रव्यका वर्णन किया है। ताके अठ्याणवे जीव समास कहे हैं, पीछै पर्याप्तिनिका वर्णन है। बहुरि तीन लोकमें जो जीव जहां जहां बसै हैं तिनका

वर्णन करि तिनकी संख्याका कही है ताका अल्प बहुत्व कह्या है। बहुरि आयु कायका परिमाण कह्या है। बहुरि अन्यवादी केई जीवका स्वरूप अन्य प्रकार मानै हैं, तिनिका युक्ति करि निराकरण किया है। बहुरि अंतरात्मा बहिरात्मा परमात्माका वर्णन करि कह्या है—जो अंतरतत्त्व तो जीव है अर अन्य सर्व बाह्य तत्त्व हैं। ऐसैं कहि करि जीवनिका निरूपण समाप्त किया है। पीछै अजीवका निरूपण है। तहां पुद्गल द्रव्य धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य आकाश-काल द्रव्यका वर्णन किया है। बहुरि द्रव्यनिकै परस्पर कारण कार्य भावका निरूपण किया है। बहुरि कह्या है जो द्रव्य सर्व हो परिणामी द्रव्य पर्यायरूप हैं ते अनेकान्त स्वरूप हैं। अनेकान्त विना कार्य कारण भाव नाहीं बनै है। कारण कार्य विना काहेका द्रव्य ? ऐसैं कह्या है। बहुरि द्रव्य पर्यायका स्वरूप कहिकरि पीछै सर्व पदार्थकूं जाननेवाला प्रत्यक्ष परोक्ष स्वरूप ज्ञानका वर्णन किया है। बहुरि अनेकान्त वस्तुका साधनेवाला श्रुतज्ञान है, ताके भेद नय हैं। ते वस्तुकूं अनेक धर्मस्वरूप साधै हैं तिनिका वर्णन है। बहुरि कह्या है जो प्रमाण नयनितैं वस्तुकूं साधि मोक्ष-मार्गकूं साधै हैं ऐसे तत्त्वके सुननेवाले, जाननेवाले, भावनेवाले विरले हैं विषयनिकै वशीभूत होनेवाले बहुत हैं। ऐसे कहिकरि लोकभावनाका कथन संपूर्ण किया है। बहुरि आगें बोधदुर्लभानुप्रेक्षाका वर्णन अठारह गाथानिमैं कीया है। तहां निगोदतैं लेकरि जीव अनेक पर्याय सदा

गाथा करै है। ते सर्व सुलभ हैं। अर सम्यग्ज्ञान चारित्र स्वरूप मोक्षका मार्गका पावना अति दुर्लभ है। ऐसैं कह्या है। आगैं धर्मानुप्रेक्षाका वर्णन एकसौ छत्तीस गाथामें है, तहां निवै गाथामें तो श्रावक धर्मका वर्णन है। तामैं छत्ती-स गाथामें तो अविरत सम्यग्दृष्टीका वर्णन है। पीछै दोय गाथामें दर्शन प्रतिमाका, इकतालीस गाथामें व्रतप्रतिमाका, तिनमें पांच अणुव्रत तीन गुणव्रत, च्यारि शिक्षाव्रत ऐसे बारह व्रतांका, दोय गाथामें सामायिक प्रतिमाका, छह गाथामें प्रोषध प्रतिमाका, तीन गाथामें सचित्त त्याग प्रति-माका, दोय गाथामें अनुमति त्याग प्रतिमाका दोय गाथा-में उद्दिष्ट आहार त्याग प्रतिमाका, ऐसैं ग्यारा प्रतिमाका वर्णन है। बहुरि बियालीस गाथामें मुनिके धर्मका वर्णन है। तहां रत्न त्रयकरि युक्त मुनि होय उत्तम क्षमा आदि दश लक्षण धर्मकूं पालै, तिन दश लक्षणका जुदा २ वर्ण-न है। पीछै अहिंसा धर्मकी बडाई वर्णन है। बहुरि फेरि कह्या है जो धर्म सेवना सो पुण्य फलके अर्थि न सेवना, मोक्षके अर्थि सेवना। बहुरि शंका आदि आठ दूषण हैं सो धर्ममें नाहीं राखणा। निशंकित आदि आठ अंग सहित धर्म सेवना, ताका जुदा जुदा वर्णन है। बहुरि धर्मका फल माहात्म्य वर्णन किया है। ऐसैं धर्मानुप्रेक्षाका वर्णन समाप्त कीया है। बहुरि आगैं धर्मानुप्रेक्षाकी चूलिका रूप बारह प्रकार तप है। तिनिका जुदा जुदा वर्णन है। ताकी गाथा इक्यावन हैं। बहुरि तीन गाथामें कर्ता अपना कर्तव्य प्रगटकरि अन्त मंगल करि ग्रन्थ समाप्त किया है। सर्व गाथा च्यारिसै निवै हैं ऐसैं जानना।

श्रीपरमात्मने नमः

स्वामिकार्त्तिकेयानुप्रेक्षा ।

(भाषानुवादसहित)

भाषाकारका मंगलाचरण ।

दोहा ।

प्रथम ऋषभ जिन धर्मकर, सनमति चरम जिनेश ।
विघनहरन मंगलकरन, भवतमदुरितदिनेश ॥ १ ॥
वानी जिनमुखतैं खिरी, परी गणाधिपकान ।
अक्षरपदमय विस्तुरी, करहि सकल कल्यान ॥ २ ॥
गुरु गणधर गुणधर सकल, प्रचुर परंपर और ।
व्रततपधर तनुनगनतर, बंदौं वृष शिरमौर ॥ ३ ॥
स्वामिकार्त्तिकेयो मुनी, वारह भावन भाय ।
कियो कथन विस्तार करि, प्राकृतछंद बनाय ॥ ४ ॥
ताकी टीका संस्कृत, करी सुघर शुभचन्द्र ।
सुगमदेशभाषामयी, करूं नाम जयचन्द्र ॥ ५ ॥

पढहु पढावहु भव्यजन, यथाज्ञान मनधारि ।
करहु निर्जरा कर्मकी, बार बार सुविचारि ॥ ६ ॥

ऐसें देवशास्त्र गुरुको नमस्काररूप मंगलाचरणपूर्वक प्रतिज्ञा करि स्वामिकार्त्तिकेयानुप्रेक्षानामा ग्रन्थकी देशभाषामय वचनिका करिये है। तहां संस्कृत टीकाका अनुसार ले, मेरी बुद्धिसारू गाथाका संक्षेप अर्थ लिखियेगा. तामें कहीं चूक होय तौ विशेष बुद्धिमान संवार लीजियो ।

श्रीमत्स्वामिकार्त्तिकेय नाम आचार्य अपने ज्ञानवैराग्य की वृद्धि होना, नवीन श्रोता जनोंके वैराग्यका उपजना तथा विशुद्धता होनेतैं पापकर्मकी निर्जरा, पुण्यका उपजना, शिष्टाचारका पालना निर्विघ्नतैं शास्त्रकी समाप्ति होना इत्यादि अनेक भले फल चाहता संता अपने इष्टदेवको नमस्काररूप मंगलपूर्वक प्रतिज्ञाकरि गाथासूत्र कहैं है—

तिहुवणतिलयं देवं, वंदित्ता तिहुअणिंदपरिपुज्जं ।
वोच्छं अणुपेहाओ, भवियजणाणंदजणणीओ ॥ १ ॥

भावार्थ—तीन भुवनका तिलक, बहुरि तीन भुवनके इंद्रनिकरि पूज्य ऐसा देव है ताहि मैं वंदिकर भव्य जीवनिकौं आनन्दके उपजावनहारी अनुप्रेक्षा तिनहि कहूंगा। भावार्थ—

---

(१) इस जगह भाषानुवादक स्वर्गीय पं० जयचन्द्रजीने समस्त ग्रन्थकी पीठिका (कथनकी संक्षिप्त सूचनिका) लिखी है सो हमने उसको यहां न रखकर आधुनिक प्रथानुसार भूमिकामें (प्रस्तावनामें) लिखा है।

यहां 'देव' ऐसी सामान्य संज्ञा है सो क्रीडा विजिगीषा द्युति स्तुति मोद गति कांति इत्यादि क्रिया करै ताकौं देव कहिये. तहां सामान्यविषै तो चार प्रकारके देव वा कल्पित देव भी गिनिये है. तिनितैं न्यारा दिखानेके अर्थि 'त्रिभुवनतिलकं' ऐसा विशेषण किया तातैं अन्यदेवका व्यवच्छेद (निराकरण) भया, बहुरि तीनभुवनके तिलक इन्द्र भी हैं तिनितैं न्यारा दिखावनेके अर्थि 'त्रिभुवनेंद्रपरिपूज्यं' ऐसा विशेषण किया, यातैं तीन भुवनके इन्द्रनिकरि भी पूजनीक ऐसा देव है ताहि नमस्कार किया, इहां ऐसा जानना कि ऐसा देवपणा अर्हंत् सिद्ध आचार्य उपाध्याय साधु इन पंच परमेष्ठीविषै ही संभवै है. जातैं परम स्वात्मजनित आनंद सहित क्रीडा, तथा कर्मके जीतने रूप विजिगीषा, स्वात्मजनित प्रकाशरूप द्युति, स्वस्वरूपकी स्तुति, स्वरूपविषै परमप्रमोद, लोकालोकव्याप्तरूप गति, शुद्धस्वरूपकी प्रवृत्तिरूप कान्ति इत्यादि देवपणाकी उत्कृष्ट क्रिया सो समस्त एकदेश वा सर्वदेशरूप इनिहीविषै पाईए है. तातैं सर्वोत्कृष्ट देवपना इनिहीविषै आया, तातैं इनिकों मंगलरूप नमस्कार युक्त है. 'मं' कहिये पाप ताकों गालै तथा 'मंग' कहिये सुख, ताकों लाति ददाति कहिये दे, ताहि मंगल कहिये. सो ऐसे देवको नमस्कार करनेतैं शुभपरिणाम हो है तातैं पापका नाश हो है. शांतभावरूप सुख प्राप्त हो है, बहुरि अनुप्रेक्षाका सामान्य अर्थ वारम्बार चिंतवन करना है। तहां चिंतवन अनेक प्रकार है, ताके करनेवाले अनेक हैं, तिनितैं न्यारे दिखा-

बनेके अर्थि 'भव्यजनानन्दजननी:' ऐसा विशेषण दिया है. तातैं भव्यजीवनिके मोक्ष होना निकट आया होय तिनिकैं आनन्दकी उपजावनहारी ऐसी अनुप्रेक्षा कहूंगा । बहुरि यहां 'अनुप्रेक्षा:' ऐसा बहु वचनांत पद है सो अनुप्रेक्षा-सामान्य चितवन एक प्रकार है तो हू अनेक प्रकार है, तहां भव्य जीवनिको सुनते ही मोक्षमार्गविषै उत्साह उपजै, ऐसा चितवन संक्षेपताकरि वारह प्रकार है, तिनका नाम तथा भावनाकी प्रेरणा दोय गाथानिविषै कहै हैं ।

अद्धुव असरण भणिया संसारामेगमण्णमसुइत्तं ।
आसव संवरणामा णिज्जरलोयाणुपेहाओ ॥ २ ॥
इय जाणिऊण भावह दुल्लह धम्माणुभावणाणिच्चं
मणवयणकायसुद्धी एदा उद्देसदो भणिया ॥ ३ ॥

भाषार्थ—भो भव्य जीव हो ! एते अनुप्रेक्षा नाम मात्र जिनदेव कहे हैं, तिनहि जाणकरि मनवचनकाय शुद्ध करि आगैं कहैंगे तिसप्रकार निरंतर भावो. ते कौन-? अध्रुव १ अशरण २ संसार ३ एकत्व ४ अन्यत्व ५ अशुचित्व ६ आस्रव ७ संवर ८ निर्जरा ९ लोक १० दुर्लभ ११ धर्म १२ ऐसे वारह। भावार्थ—ये वारह भावनाके नाम कहे, इनका विशेष अर्थरूप कथन तो यथास्थान होयहीगा । बहुरि नाम ये सार्थक हैं, तिनिका अर्थ कहा ? अध्रुव तौ अनित्यकों कहिये । जामैं शरण नाहीं सो अशरण । भ्रमणकों संसार कहिये । जहां दूसरा नहीं सो एकत्व । जहां सर्वतैं जुदा सो

अन्यत्व। मलिनताकों अशुचित्व कहिये। जो कर्मका आवना सो आस्रव। कर्मका आवना रोकै सो संवर। कर्मका झरना सो निर्जरा। जामें षट्द्रव्य पाइये सो लोक। अतिकठिनतासों पाइए सो दुर्लभ। संसारतैं उद्धार करै सों वस्तुस्वरूपादिक धर्म। इस प्रकार इनके अर्थ हैं।

—:०:—

अथ अध्रुवानुप्रेक्षा लिख्यते.

प्रथम ही अध्रुवानुप्रेक्षाका सामान्य स्वरूप कहै हैं,—

जं किंपिवि उप्पण्णं तस्स विणासो हवेइ णियमेण।
परिणामसरूवेण वि ण य किंपिवि सासयं अत्थि॥४॥

भाषार्थ—जो कुछ उपज्या, ताका नियमकरि नाश हो है. परिणाम स्वरूपकरि कछू भी शाश्वता नाहीं है. भावार्थ सर्ववस्तु सामान्य विशेषस्वरूप हैं. तहां सामान्य तो द्रव्यको कहिये, विशेष गुणपर्यायको कहिये. सो द्रव्य करिकैं तो वस्तु नित्यही है. बहुरि गुण भी नित्यही है और पर्याय है सो अनित्य है याकों परिणाम भी कहिये सो यहु प्राणी पर्यायबुद्धि है सो पर्यायकूं उपजता विनशता देखि हर्षविषाद करै है. तथा ताकूं नित्य राख्या चाहै है सो इस अज्ञानकरि व्याकुल होय है, ताकों यहु भावना (अनुप्रेक्षा) चिंतवना युक्त है। जो मैं द्रव्यकरि शाश्वता आत्मद्रव्य हौं, बहुरि उपजै विनशै है सो पर्यायका स्वभाव है, यामें हर्षविषाद

कहा ? शरीर है सो जीव पुद्गलका संयोगजनित पर्याय है. धन धान्यादिक हैं ते पुद्गलके परमाणूनिके स्कन्धपर्याय हैं. सो इनकै मिलना विछुरना नियमकरि अवश्य है. थिरकी बुद्धि करै है सो यहु मोहजनित भाव है. तातैं वस्तु स्वरूप जानि हर्ष विषादादिकरूप न होना ।

आगें इसहीको विशेषकरि कहै हैं,—

जम्मं मरणेण समं संपज्जइ जुव्वणं जरासहियं ।
लच्छी विणाससहिया इयसव्वं भंगुरं मुणह ॥ ५ ॥

भाषार्थ—भो भव्य हो ! यह जन्म है सो तौ मरणकरि सहित है, यौवन है सो जराकर सहित उपजै है, लक्ष्मी है सो विनाश सहित उपजै है, ऐसैं ही सर्व वस्तु क्षणभंगुर जानहु. भावार्थ—जेती अवस्था जगतमें हैं, तेती सर्व प्रतिपक्षी भावको लिये हैं. यह प्राणी जन्म होय तब तो ताकूं थिर मानि हर्ष करै है. मरण होय तब गया मानि शोक करै है. ऐसें ही इष्टकी प्राप्तिमें हर्ष, अप्राप्तिमें विषाद, तथा अनिष्टकी प्राप्तिमें विषाद, अप्राप्तिमें हर्ष करै है. सो यह मोहका माहात्म्य है. ज्ञानीनिकों समभावरूप रहना ।

अथिरं परियणसयणं पुत्तकलत्तं सुमित्त लावण्णं ।
गिहगोहणाइ सव्वं णवघणविंदेण सारित्थं ॥ ६ ॥

भाषार्थ— जैसे नवीन मेघके बादल तत्काल उदय होकर विलाय जांय, तैसें ही या संसारविषै परिवार बन्धुवर्ग

पुत्र, स्त्री, भले मित्र, शरीरकी सुन्दरता, गृह, गोधन इत्यादि समस्त वस्तु अथिर हैं। भावार्थ– ये सर्व वस्तु अथिर जानिकरि हर्ष विषाद नहिं करना।

सुरधणुतडिव्वचवला इंदियविसया सुभिच्चवग्गा य।
दिट्ठपणट्ठा सव्वे तुरयगयरहवरादीया ॥ ७ ॥

भाषार्थ– या जगतविषै इन्द्रियनके विषय हैं ते इन्द्रधनुष तथा विजलीके चमत्कारवत् चंचल हैं पहिली दीसै पीछैं तुरत विलाय जाय हैं बहुरि तैसे ही भले चाकरनिके समूह हैं बहुरि तैसे ही भले घोडे हस्ती रथ हैं ऐसे सर्व ही वस्तु हैं. भावार्थ– यह प्राणी श्रेष्ठ इन्द्रियनके विषय भले चाकर घोडे हाथी रथादिक की प्राप्ति करि सुख मानै है, सो ये सारे क्षणविनश्वर हैं. अविनाशी सुखका उपाय करना ही योग्य है।

आगे बन्धुजनका संगम कैसा है सो दृष्टांतद्वारकरि कहैं हैं–

पंथे पहियजणाणं जह संजोओ हवेइ खणमित्तं।
बंधुजणाणं च तहा संजोओ अद्धुओ होइ ॥ ८ ॥

भाषार्थ– जैसें मार्गविषै पथिक जननिका संयोग क्षण मात्र है तैसें ही संसारविषै बन्धुजननिका संयोग अथिर है।

भावार्थ– यह प्राणी बहुत कुटुम्ब परिवार पावै, तब अभिमान करि सुख मानै है. या मदकरि निजस्वरूपको भूलै है, सो यह बन्धुवर्गका संयोग मार्गके पथिकजन सा-

रिखा है शीघ्र ही बिछुडै है. याविषै संतुष्ट होय स्वरूपकूं न भूलना.

आगे देहसंयोगकूं अथिर दिखावै हैं—

अइलालिओ वि देहो ण्हाणसुयंधेहिं विविहभक्खेहिं
खणसित्तेण वि विहडइ जलभरिओ आमघडउव्व॥

भाषार्थ— देखो यह देह स्नान तथा सुगन्ध वस्तुनि करि संवारया हुवा भी तथा अनेक प्रकार भोजनादि भक्ष्यनिकरि पाल्या हुआ भी जलका भरया कचा घडाकी नाईं क्षणमात्रमें विघट जाय है। भावार्थ— ऐसे शरीरविषै स्थिरबुद्धि करना वडी भूल है।

आगे लक्ष्मीका अस्थिरपणा दिखावै हैं—

जा सासया ण लच्छी चक्कहराणं पि पुण्णवंताणं।
सा किं बंधेइ रइं इयरजणाणं अपुण्णाणं॥ १०॥

भाषार्थ— जो लक्ष्मी कहिये संपदा पुण्यकर्मके उदय सहित जे चक्रवर्ति तिनकैं भी शाश्वती नाही तौ अन्य जे पुण्यउदयरहित तथा अल्प पुण्यसहित जे पुरुप हैं तिनसहित कैसैं राग बांधै? अपि तु नाही बांधै. भावार्थ— या संपदाका अभिमानकरि यहु प्राणी प्रीति करै है सो वृथा है।

आगे याही अर्थको विशेष करि कहै हैं,—

कत्थवि ण रमइ लच्छी कुलीणधीरे वि पंडिए सूरे।

सुज्जे धम्मिट्ठे वि य सुरूवसुयणे महासत्ते ॥ ११ ॥

भाषार्थ– यह लक्ष्मी संपदा कुलवान धैर्यमान पंडित सुभट पूज्य धर्मात्मा रूपवान सुजन महापराक्रमी इत्यादि काहू पुरुषनिविषैहू नाहीं राचै है. भावार्थ– कोई जानेगा कि मैं बडा कुलका हूं, मेरे बडांकी संपदा है, कहां जाती है तथा मैं धीरजवान हौं कैसै गमाऊंगा. तथा पंडित हौं, विद्यावान हौं, मेरी कौन ले है. मोकूं देहीगा तथा मैं सुभट हूं कैसे काहूको लेने द्योंगा. तथा मैं पूजनीक हूं मेरी कौन ले है. तथा मैं धर्मात्मा हों, धर्मतैं तो आवै, छती कहां जाय है. तथा मैं बडा रूपवान हों, मेरा रूप देखि ही जगत प्रसन्न है, संपदा कहां जाय है. तथा मैं सुजन हों परका उपकारी हों, कहां जायगी; तथा मैं बडा पराक्रमी हों, संपदा बढाऊंगा, छती कहां जाने द्योंगा; सो यह सर्व विचार मिथ्या है. यह संपदा देखते देखते विलय जाय है. काहूकी राखी रहती नाहीं ।

आगे कहै हैं जो लक्ष्मी पाई ताकों कहा करिये सोई कहिये है,—

ता भुंजिज्जउ लच्छी दिज्जउ दाणं दयापहाणेण ।
जा जलतरंगचवला दोतिण्णिदिणाणि चिट्ठेइ ॥१२॥

भाषार्थ—यह लक्ष्मी जलतरंगसारखी चंचल है । जेतै दो तीन दिन ताईं चेष्टा करै है, विद्यमान है, तेतैं भोगवो,

दयाप्रधान होय करि दान द्यो। भावार्थ—कोऊ कृपणबुद्धि या लक्ष्मीकूं संचय करि थिर राख्या चाहै ताकूं उपदेश है। जो यहु लक्ष्मी चंचल है, रहनेकी नाहीं, जेते थोरे दिन विद्यमान है, तेते प्रभुकी भक्तिनिमित्त तथा परोपकारनिमित्त दानकरि खरचो तथा भोगवो। इहां प्रश्न—जो भोगनेमें तो पाप निपजै है। भोगनेका उपदेश काहेकूं दिया ? ताका समाधान—संचय राखनेमें प्रथम तौ ममत्व बहुत होय तथा कोई कारणकरि विनशै तब विषाद बहुत होय। आसक्तपणातैं कषाय तीव्र परिणाम मलिन निरंतर रहै हैं। बहुरि भोगनेमैं परिणाम उदार रहैं, मलिन न रहैं। उदारतासूं भोग सामग्रीविषै खरचै, तामैं जगत जश करै। तहां भी मन उज्जल रहै है। कोई अन्य कारणकरि विनशै तो विषाद बहुत न होय इत्यादि भोगनेमें भी गुण होय हैं। कृपणकै तो कछु ही गुण नाहीं। केवल मनकी मलिनताको ही कारण है। बहुरि जो कोई सर्वथा त्याग ही करै तो ताकौं भोगने का उपदेश है नाहीं।

जो पुण लच्छिं संचदि ण य भुंजदि णेय देदि पत्तेसु
सो अप्पाणं वंचदि मणुयत्तं णिप्फलं तस्स ॥१२॥

भावार्थ—बहुरि जो पुरुष लक्ष्मीको संचय करै है, पात्रनिके निमित्त न दे है, न भोगवै है, सो अपने आत्मा को ठगै है। ता पुरुषका मनुष्यपना निष्फल है वृथा है। भावार्थ—जा पुरुषने लक्ष्मी पाय संचय ही किया। दान

भोगमें न खर्चीं, तानै मनुष्यपणा पाय कहा किया, निष्फल ही खोया, आपा ठगाया।

जो संचिऊण लच्छि धरणियले संठवेदि अइदूरे।
सो पुरिसो तं लच्छि पाहाणसमाणियं कुणइ ॥ १४॥

भाषार्थ—जो पुरुष अपनी लक्ष्मीको अति ऊंडी पृथिवी तलमें गाडै है, सो पुरुष उस लक्ष्मीको पाषाणसमान करै है। भावार्थ—जैसैं हवेलीकी नीवमें पाषाण धरिये है। तैसें याने लक्ष्मी गाडी तब पाषाणतुल्य भई।

अणवरयं जो संचदि लच्छि ण य देदि णेय भुंजेदि
अप्पणिया वि य लच्छी परलच्छिसमाणिया तस्स॥

भाषार्थ—जो पुरुष लक्ष्मीको निरन्तर संचय करै है, न दान करै है, न भोगवै है, सो पुरुष अपनी लक्ष्मीको परकी समान करै है। भावार्थ—लक्ष्मी पाय दान भोग न करै है, ताकै वह लक्ष्मी पैलेकी है। आप रखवाला (चौकीदार है) है, लक्ष्मीको कोऊ अन्य ही भोगवैगा।

लच्छीसंसत्तमणो जो अप्पाणं धरेदि कट्ठेण।
सो राइदाइयाणं कज्जं साधेहि मूढप्पा ॥ १६॥

भाषार्थ—जो पुरुष लक्ष्मीविषै आसक्तचित्त हुवा संता अपने आत्माको कष्टसहित राखै है, सो मूढात्मा राजानिका तथा कुटुम्बीनिका कार्य साधै है। भावार्थ— लक्ष्मीके विषै

आसक्तचित्त होयकरि याके उपजावनेके अर्थि तथा रक्षाके अर्थ अनेक कष्ट सहै है, सो वा पुरुषके केवल कष्ट ही फल होय है। लक्ष्मी कौं तो कुटुंब भोगवैगा, कै राजा लेगा।

जो वड्ढारइ लच्छि बहुविहबुद्धीहिं णेय तिप्पेदि।
सव्वारंभं कुव्वदि रत्तिदिणं तंपि चिंतवदि॥ १७॥
ण य भुंजदि वेलाए चिंतावत्थो ण सुयदि रयणीये।
सो दासत्तं कुव्वदि विमोहिदो लच्छितरुणीए॥१८॥

भावार्थ- जो पुरुष अनेक प्रकार कला चतुराई बुद्धि करि लक्ष्मीने वधावै है, तृप्त न होय है, याके वास्ते असि-मसि कृष्यादिक सर्वारंभ करै है, रातिदिन याहीके आरम्भ को चिंतवै है, वेला भोजन न करै है, चिंतामें तिष्ठता हुवा रात्रि विषै सोवै नाहीं है सो पुरुष लक्ष्मीरूपी स्त्रीका मोह्या हुवा ताका किंकरपणा करै है, भावार्थ- जो स्त्रीका किंकर होय ताकों लोकविषै 'मोहल्या' ऐसा निंद्यनाम कहै हैं, जो पुरुष निरन्तर लक्ष्मीके निमित्त ही प्रयास करै है सो लक्ष्मीरूपी स्त्रीका मोहल्या है।

आगें जो लक्ष्मीको धर्म कार्यमें लगावै ताकी प्रशंसा करै हैं—

जो वड्ढमाण लच्छिं अणवरयं देहिधम्मकज्जेसु।
पंडिएहिं थुव्वदि तस्स वि सहला हवे लच्छी॥१९॥

भावार्थ—जो पुरुष पुण्यके उदय करि वधती जो लक्ष्मी

ताहि निरन्तर धर्म कार्यनिविषैं दे है सो पुरुष पंडितनिकरि स्तुति करने योग्य है. वहुरि ताहीकी लक्ष्मी सफल है. भावार्थ—लक्ष्मी पूजा प्रतिष्ठा, यात्रा, पात्रदान, परका उपकार इत्यादि धर्मकार्यविषै खरची हुई ही सफल है, पंडितजन भी ताकी प्रशंसा करै हैं।

एवं जो जाणित्ता विहलियलोयाण धम्मजुत्ताणं ।
णिरवेक्खो तं देहि हु तस्स हवे जीवियं सहलं ॥२०॥

भाषार्थ—जो पुरुष पहिले कह्या ताको जाणि धर्मयुक्त जे निर्धन लोक हैं, तिनके अर्थि प्रति उपकारकी वांछासों रहित हूवा तिस लक्ष्मीको दे है, ताका जीवन सफल है। भावार्थ—अपना प्रयोजन साधनेके अर्थि तौ दान देनेवाले जगतमें बहुत हैं. वहुरि जे प्रतिउपकारकी वांछारहित धर्मात्मा तथा दुःखी दरिद्र पुरुषनिको धन दे हैं, ऐसे विरले हैं उनका जीवितव्य सफल है।

आगें मोहका माहात्म्य दिखावै हैं—

जलवुब्वयसारित्थं धणजुव्वणजीवियं पि पेच्छंता ।
मण्णंति तो वि णिच्चं अइवलिओ मोहमाहप्पो ॥२१॥

भाषार्थ—यह प्राणी धन यौवन जीवनको, जलके बुद्बुदासारिखे तुरत विलाय जाते देखतें संते भी नित्य मानै है. सो यह हू वडा अचिरज है. यह मोहका माहात्म्य वडा वलवान है. भावार्थ—वस्तुका स्वरूप अन्यथा जनावनेको मदपी-

वना ज्वरादिक रोग नेत्रविकार अन्धकार इत्यादि अनेक कारण हैं, परन्तु यह मोह सवतैं बलवान है, जो प्रत्यक्ष विनाशीक वस्तुको देखै है, तो हू नित्य ही मनावै है. तथा मिथ्यात्व काम क्रोध शोक इत्यादिक हैं ते सब मोहहीके भेद हैं. ए सर्व ही वस्तु स्वरूपविषै अन्यथा बुद्धि करावै हैं।

आगैं या कथनको संकोचै हैं—

चइऊण महामोहं विसए सुणिऊण भंगुरे सव्वे ।
णिव्विसयं कुणह मणं जेण सुहं उत्तमं लहइ ॥२२॥

भाषार्थ-भो भव्य जीव हो ! तुम समस्त विषयनिकूं विनाशीक सुणकरि, महा मोह को छोडकरि, अपने मनकूं विषयनितैं रहित करिहु, जातैं उत्तम सुखको पावो. भावार्थ-पूर्वोक्त प्रकार संसार देह भोग लक्ष्मी इत्यादिक अथिर दिखाये तिनकूं सुणिकरि अपना मनकूं विषयनितैं छुडाय अथिर थावैगा सो भव्य जीव सिद्धपदके सुखकों पावैगा ।

—:—०—:—

अथ अशरणानुपेक्षा लिख्यते.

तत्थ भवे किं सरणं जत्थ सुरिंदाण दीसये विलओ ।
हरिहरबंभादीया कालेण कवलिया जत्थ ॥ २३ ॥

भाषार्थ-जिस संसारविषै देवनिके इन्द्रनिका विनाश देखिये है बहुरि जहां हरि कहिये नारायण, हर कहिये रुद्र, कहिये विधाता आदि शब्द कर बडे २ पदवीधारक

सर्वंही कालकरि ग्रसे, तिस संसारविषै कहा शरणा होय ? किछू भी न होय. भावार्थ—शरणा ताकूं कहिये जहां अपनी रक्षा होय, सो संसारमें जिनका शरणा विचारिये ते ही काल–पाय नष्ट होय हैं. तहां काहेका शरणा ?

आगें याका दृष्टान्त कहै हैं,–

सिंहस्स कमे पडिदं सारंगं जह ण रक्खदे को वि ।
तह मिच्चुणा य गहियं जीवं पि ण रक्खदे को वि ॥

भाषार्थ—जैसें वनविषै सिंहके पगतलें पड्या जो हिरण, ताहि कोऊ भी राखनेवाला नाहीं, तैसें या संसारमें काल-करि ग्रह्या जो प्राणी, ताहि कोउ भी राखि सकै नाहीं. भावार्थ—उद्यानमें सिंह मृगकूं पगतलैं दे, तहां कौन राखै ? वैसें ही यह कालका दृष्टांत जानना ।

आगें याही अर्थकूं दृढ़ करै हैं,–

जइ देवो वि य रक्खइ मंतो तंतो य खेत्तपालो य ।
मियमाणं पि मणुस्सं तो मणुया अक्खया होंति २५

भाषार्थ—जो मरणकूं प्राप्त होते मनुष्यकूं कोई देव मंत्र तंत्र क्षेत्रपाल उपलक्षणतैं लोक जिनकूं रक्षक मानै, सो सर्वही राखनेवाले होंय तौ मनुष्य अक्षय होंय, कोई भी मरै नाहीं. भावार्थ—लोक जीवनेके निमित्त देवपूजा मंत्रतंत्र ओषधी आदि अनेक उपाय करै है परंतु निश्चय विचारिये

तौ कोई जीवित दीसै नाहीं. वृथा ही मोहकरि विकल्प उपजावै है। आगें याही अर्थको बहुरि दृढ करै हैं,—

अइबलिओ वि रउद्दो मरणविहीणो ण दीसए को वि।
रक्खिज्जंतो वि सया रक्खपयारेहिं विविहेहिं ॥२६॥

भषार्थ—इस संसारविषै अति बलवान तथा अतिरौद्र, भयानक बहुरि अनेक रक्षाके प्रकार तिनकरि निरन्तर रक्षा कीया हूवा भी मरणरहित कोई भी नाहीं दीखै है। भावार्थ— अनेक रक्षाके प्रकार गढ कोट सुभट शस्त्र आदि उपाय कीजिये परन्तु मरणतैं कोऊ बचै नाहीं। सर्व उपाय विफल जाय हैं।

आगें शरणा कल्पै ताकूं अज्ञान बतावै हैं—

एवं पेच्छंतो वि हु गहभूयपिसाय जोइणी जक्खं।
सरणं मण्णइ मूढो सुगाढमिच्छत्तभावादो॥ २७॥

भाषार्थ—ऐसैं पूर्वोक्तप्रकार अशरण प्रत्यक्ष देखताभी मूढ जन तीव्रमिथ्यात्वभावतैं सूर्यादि ग्रह भूत व्यंतर पिशाच योगिनी चंडिकादिक यक्ष मणिभद्रादिक इनहि शरणा मानै है। भावार्थ—यहु प्राणी प्रत्यक्ष जाणै है जो मरणतैं कोऊ भी राखणहारा नाहीं, तोऊ ग्रहादिकका शरणा कल्पै है, सो यह तीव्रमिथ्यात्वका उदयका माहात्म्य है।

आगैं मरण है सो आयुके क्षयतैं होय है यह कहै हैं—

आयुक्खयेण मरणं आउं दाऊण सक्कदे को वि।

तह्मा देविंदो वि य मरणाउ ण रक्खदे को वि २८

भाषार्थ—जातैं आयुकर्मके क्षयतैं मरण होय है बहुरि आयु कर्म कोईकूं कोई देनेको समर्थ नाहीं, तातैं देवनका इन्द्र भी मरणतैं नाहिं राख सकै है. भावार्थ—मरणतैं आयु पूर्ण हुवा होय; बहुरि आयु कोई काहूको देने समर्थ नाहीं तब रक्षा करनेवाला कौन ? यह विचारो !

आगें याही अर्थकूं दृढ करै हैं,—

अप्पाणं पि चवंतं जइ सक्कदि रक्खिदुं सुरिंदो वि।
तो किं छंडदि सग्गं सव्वुत्तमभोयसंजुत्तं ॥ २९ ॥

भाषार्थ— जो देवनका इन्द्रहू आपको चयता [मरते हुये] राखनेको समर्थ होता तो सर्वोत्तम भोगनिकरि संयुक्त जो स्वर्गका वास, ताकूं काहेको छोड़ता ? भावार्थ—सर्व भोगनिका निवास अपना वश चलते कौन छोडै ?

आगें परमार्थ शरणा दिखावै हैं—

दंसणणाणचरित्तं सरणं सेवेहि परमसद्धाए।
अण्णं किं पि ण सरणं संसारे संसरंताणं ॥ ३० ॥

भाषार्थ—हे भव्य ! तू परम श्रद्धाकरि दर्शन ज्ञान चारित्रस्वरूप शरणा सेवन करि। या संसारविषै भ्रमते जीवनिकूं अन्य कछू भी शरणा नाहीं है। भावार्थ—सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र आपना स्वरूप है सो ये ही परमार्थरूप [वास्तवमें] शरणा है। अन्य सर्व अशरणा हैं। निश्चय

श्रद्धानकरि यहु ही शरणा पकडो, ऐसा उपदेश है।

आगें इसहीको दृढ करै हैं,—

अप्पाणं पि य सरणं खमादिभावेहिं परिणदं होदि
तिव्वकसायाविट्ठो अप्पाणं हणादि अप्पेण ॥३१॥

भाषार्थ—जो आपकूं क्षमादि दशलक्षणरूप परिणत करै, सो शरणा है। वहुरि जो तीव्रकषाययुक्त होय है सो आपकरि आपकूं हणै है। भावार्थ—परमारथ विचारिये तो आपकूं आपही राखनेवाला है, तथा आप ही घातनेवाला है। क्रोधादिरूप परिणाम करै है, तव शुद्ध चैतन्यका घात होय है। वहुरि क्षमादि परिणाम करै है, तव आपकी रक्षा होय है। इनही भावनिसों जन्ममरणतैं रहित होय अविनाशी पद प्राप्त होय है।

दोहा।

वस्तुस्वभावविचारतैं, शरण आपकूं आप।
व्यवहारे पण परमगुरु, अवर सकल संताप ॥ २ ॥

इति अशरणानुप्रेक्षा समाप्ता ॥ २ ॥

अथ संसारानुप्रेक्षा लिख्यते।

प्रथमही दोय गाथानिकरि संसारका सामान्य स्वरूप कहै हैं,—

एक्कं चयदि सरीरं अण्णं गिण्हेदि णवणवं जीवो।
पुणु पुणु अण्णं अण्णं गिण्हदि मुंचेदि बहुवारं ॥ ३२ ॥

एक्कं जं संसरणं णाणादेहेसु हवदि जीवस्स।
सो संसारो भण्णदि मिच्छकसायेहिं जुत्तस्स॥ ३३॥

भाषार्थ--मिथ्यात्व कहिये सर्वथा एकान्तरूप वस्तुको श्रद्धना, बहुरि कषाय कहिये क्रोध मान माया लोभ इनकरि युक्त यह जीव, ताकैं जो अनेक देहनिविषै संसरण कहिये भ्रमण होय, सो संसार कहिये। सो कैसैं? सो ही कहिये है। एक शरीरकूं छोडै अन्य ग्रहण करै फेरि नवा ग्रहणकरि फेरि ताकूं छोडि अन्य ग्रहण करै ऐसें बहुतबार ग्रहण किया करै सो ही संसार है। भावार्थ--शरीरतैं अन्य शरीरकी प्राप्ति होवो करै सो संसार है।

आगें ऐसे संसारविषैं संक्षेप करि चार गति हैं तथा अनेक प्रकार दुःख हैं। तहां प्रथम ही नरकगतिविषै दुःख है, ताकूं छह गाथानिकरि कहै हैं—

पावोदयेण णरए जायदि जीवो सहेदि बहुदुक्खं।
पंचपयारं विविहं अणोवमं अण्णदुक्खेहिं॥ ३४॥

भाषार्थ--यह जीव पापके उदयकरि नरकविषैं उपजै है तहां अनेकभांतिके पंचप्रकारकरि उपमातैं रहित ऐसे बहुत दुःख सहै है। भावार्थ--जो जीवनिकी हिंसा करै है, झूठ बोलै है, परधन हरै है, परनारि तकै है, बहुत आरंभ करै है, परिग्रहविषैं आशक्त होय है, बहुत क्रोधी, प्रचुर मानी, अति कपटी, अति कठोर भाषी, पापी, चुगल, कृपण,

देवशास्त्रगुरुका निंदक, अधम, दुर्बुद्धि, कृतघ्नी, बहु शोक दुःख करनेहीकी प्रकृति जाकी, ऐसा होय सो जीव, मरि· करि नरकविषै उपजै है, अनेक प्रकार दुःखकूं सहै है।

आगें ऊपरि कहे जे पंचप्रकार दुःख तिनकूं कहै हैं,—

असुरोदीरियदुक्खं, सारीरं माणसं तहा विविहं।
खित्तुब्भवं च तिव्वं अण्णोण्णकयं च पंचविहं॥ ३५॥

भाषार्थ—असुरकुमार देवनिकरि उपजाया दुःख, बहुरि शरीरहीकर निपज्या बहुरि मनकरि भया, तथा अनेक प्रकार क्षेत्रसों उपज्या, बहुरि परस्पर किया हुवा ऐसें पांच प्रकार दुःख हैं। भावार्थ—तीसरे नरकतांई तो असुरकुमार देव कुतूहलमात्र जाय हैं, सो नारकीनकों देखि परस्पर लडावै हैं. अनेकप्रकार दुःखी करै हैं. बहुरि नारकीनका शरीरही पापके उदयतैं स्वयमेव अनेक रोगनिसहित बुरा घिनावना दुःखमयी होय है. बहुरि चित्त जिनके महाक्रूर दुःखरूप ही होय हैं. बहुरि नरकक्षेत्र महाशीत उष्ण दुर्गन्ध अनेक उपद्रव सहित है. बहुरि परस्पर वैरके संस्कारतैं छेदन भेदन मारन ताडन कुंभीपाक आदि करैं हैं. वहांका दुःख उपमारहित है।

आगें याही दुःखका विशेष कहै हैं,—

छिज्जइ तिलतिलमित्तं भिंदिज्जइ तिलतिलंतरं सयलं
वज्जाग्गिए कढिज्जइ णिहिप्पए पूयकुंडह्मि॥ ३६॥

भाषार्थ–जहां तिलतिलमात्र छेदिये है बहुरि शकल कहिये खंड तिनकूंभी तिलतिलमात्र भेदिये है. बहुरि वज्राग्निविषै पचाइये है. बहुरि राधके कुंडविषै क्षेपिये है ।

इच्चेवमाइदुक्खं जं णरए सहदि एयसमयम्हि ।
तं सयलं वण्णेदुं ण सक्कदे सहसजीहोपि ॥ २७ ॥

भाषार्थ—इति कहिये ऐसें एवमादि कहिये पूर्व गाथा में कहे तिनकूं आदि दे करि जे दुःख, ते नरक विषै एक काल जीव सहै है, तिनको कहनेको जाके हजार जीभ होय सो भी समर्थ न हो है. भावार्थ—या गाथामें नरकके दुःखनिका वचन अगोचरपणा कह्या है ।

बहुरि कहै हैं नरकका क्षेत्र तथा नारकीनके परिणाम दुःखमयीही हैं ।

सव्वं पि होदि णरये खित्तसहावेण दुक्खदं असुहं ।
कुविदा वि सव्वकालं अण्णुण्णं होंति णेरइया ॥ २८

भाषार्थ—नरकविषै क्षेत्र स्वभाव करि सर्व ही कारण दुःखदायक हैं, अशुभ हैं. बहुरि नारकी जीव सदा काल परस्पर क्रोध रूप हैं. भावार्थ—क्षेत्र तो स्वभाव कर दुःखरूप है ही. बहुरि नारकी परस्पर क्रोधी हूवा संता वह वाकूं मारै, वह वाकूं मारै है. ऐसें निरंतर दुःखीही रहै हैं ।

अण्णभवे जो सुयणो सो वि य णरये हणेइ अइकुविदो
एवं तिव्वविवागं बहुकालं विसहदे दुःखं ॥ २९ ॥

भाषार्थ—पूर्व भवविषैं जो सज्जन कुटंबका था, सोभी या नरकविषैं क्रोधी हुवा घात करै है. या प्रकार तीव्र है विपाक जाका ऐसा दुःख वहुत कालपर्यंत नारकी सहै है. भावार्थ—ऐसे दुःख सागरां पर्यन्त सहे हैं आयु पूरी किये विना तहांतैं निकसना न हो है।

आगैं तिर्यञ्चगतिसंबन्धी दुःखनिको साढे च्यारि गाथानकरि कहै हैं,—

तत्तो णीसारिऊणं जायदि तिरएसु बहुवियप्पेसु।
तत्थ वि पावदि दुःखं गब्भे वि य छेयणादीयं ॥४०॥

भाषार्थ—तिस नरकतैं निकसिकरि अनेक भेद भिन्न जे तिर्यंच, तिनविषै उपजै है. तहां भी गर्भविषै दुःख पावै है. अपि शब्दतैं सम्मूर्छन होय छेदनादिकका दुःख पावै है।

तिरिएहिं खज्जमाणो दुट्ठमणुस्सेहिं हण्णमाणो वि।
सव्वत्थ वि संतट्ठो भयदुक्खं विसहदे भीमं ॥४१॥

भाषार्थ— तिस तिर्यंचगतिविषै जीव सिंहव्याघ्रादिककरि भख्या हूवा तथा दुष्ट मनुष्य म्लेच्छ व्याध धीवरादिककरि मारया हूवा सर्व जायगां त्रास युक्त हूवा रौद्रभयानक दुःखकूं विशेष करि सहै है।

अण्णुण्णं खज्जंता तिरिया पावंति दारुणं दुक्खं।
माया वि जत्थ भक्खदि अण्णो को तत्थ रक्खेदि॥

भाषार्थ— जिस तिर्यंचगतिविषै जीव परस्पर खाया हुवा उत्कृष्ट दुख पावै है. दह वाकूं खाय, वह वाकूं खाय, जहां जिसके गर्भमें उपज्या ऐसी माता भी पुत्रकूं भक्षण कर जाय तौ अन्य कौन रक्षा करै?

तिव्वतिसाए तिसिदो तिव्वविभुक्खाइ भुक्खिदो संतो।
तिव्वं पावदि दुक्खं उयरहुयासेहिं डज्झंतो ॥ ४३ ॥

भाषार्थ—तिस तिर्यंचगतिविषैं जीव तीव्र तृषाकरि तिसाया तीव्र क्षुधाकर भूखासंता उदराग्निकरि जलता तीव्र दुःख पावै है।

आगें इसको संकोचै हैं,—

एवं बहुप्पयारं दुक्खं विसहेदि तिरियजोणीसु।
तत्तो णीसरऊणं लद्धिअपुण्णो णरो होइ ॥ ४४ ॥

भाषार्थ—ऐसैं पूर्वोक्तप्रकार तिर्यंचयोनिविषैं जीव अनेक प्रकार दुखकूं पावै है ताहि सहै है. तिस तिर्यंचगतितैं नीसर मनुष्य होय तौ कैसा होय—लब्धि अपर्याप्त, जहां पर्याप्ति पूरे ही न होय।

अब मनुष्यगतिविषै दुःख है तिनकूं बारह गाथानिकरि कहै हैं—

सो प्रथम ही गर्भविषै उपजै ताकी अवस्था कहै हैं—

अह गब्भे वि य जायदि तत्थ वि णिवडीकयंगपच्चंगो।
विसहदि तिव्वं दुक्खं णिग्गममाणो वि जोणीदो ४५

ही मनोवांछित मिलै. भावार्थ—वडे पुण्यवानकै भी वांछित वस्तुमें किछु कमती रहै, सर्व मनोरथ तो काहूके पुरै नाहीं तव सर्व सुखी काहेतैं होय ?

कस्स वि णत्थि कलत्तं अहव कलत्तं ण पुत्तसंपत्ती।
अह तेसिं संपत्ती तह वि सरोओ हवे देहो ॥ ५१ ॥

भापार्थ—कोई मनुष्यकै तो स्त्री नाहीं है. कोई कै जो स्त्री है तौ पुत्रकी प्राप्ति नाहीं है. कोई कै पुत्रकी प्राप्ति है तो शरीर रोगसहित है ।

अह णीरोओ देहो तो धणधण्णाण णेय सम्पत्ति ।
अह धणधण्णं होदि हु तो मरणं झत्ति ढुक्केइ ॥ ५२ ॥

भाषार्थ—जो कोईकै नीरोग देह भी हो तो धन धान्य की प्राप्ति नाहीं है. जो धन धान्यकी भी प्राप्ति हो जाय तौ शीघ्र मरण होय जाय है ।

कस्स वि दुट्ठकलित्तं कस्स वि दुव्वसणवसणिओ पुत्तो
कस्स वि अरिसमबंधू कस्स वि दुहिदा वि दुच्चरिया ॥

भाषार्थ—या मनुष्यभवमें कोईकै तो स्त्री दुराचारिणी है. कोईकै पुत्र जुवा आदिक व्यसनोंमें रत है, कोईकै शत्रु समान कलही भाई है. कोईकै पुत्री दुराचारिणी है ।

कस्स वि मरदि सुपुत्तो कस्स वि माहिला विणस्सदे इट्ठा
कस्स वि अग्गिपलित्तं गिहं कुडंबं च डज्झेइ ५४

भावार्थ—कोईकै तो भला पुत्र मरि जाय है, कोईकै इष्ट स्त्री मरिजाय है. कोईकै घर कुटुम्ब सर्व ही अग्नि करि वलि जाय है।

एवं मणुयगदीए णाणा दुक्खाइं विसहमाणो वि ।
ण वि धम्मे कुणदि मइं आरंभं णेय परिच्चयइ ॥५५॥

भाषार्थ--ऐसें पूर्वोक्त प्रकार मनुष्य गतिविषै नाना प्रकार दुःखनिकूं सहता भी यहु जीव धर्मविषै बुद्धि नाहीं करै है. पापारम्मकूं नाहीं छोड़ै है।

सधणो वि होदि णिधणो धणहीणो तह य ईसरो होदि
राया वि होदि भिच्चो भिच्चो वि य होदि णरणाहो ॥

भाषार्थ—धनसहित तौ निर्धन होय है तैसैं ही निर्धन होय सो ईश्वर हो जाय है. वहुरि राजा होय सो तो किंकर होय जाय है और किंकर होय सो राजा होय जाय है।

सत्तू वि होदि मित्तो मित्तो वि य जायदे तहा सत्तू।
कम्माविवायवसादो एसो संसारसब्भावो ॥ ५७ ॥

भाषार्थ--कर्मके उदयके वशतैं वैरी होय सो तौ मित्र होय जाय है. वहुरि मित्र होय सो वैरी होय जाय है. यहु संसारका स्वभाव है. भावार्थ—पुण्यकर्मके उदयतैं वैरी भी मित्र होय जाय अर पापकर्मके उदयतैं मित्र भी शत्रु होय जाय. संसारमें कर्म ही वलवान है।

आगें देवगतिका स्वरूप कहै हैं—

अह कहवि हवदि देवो तस्स य जायेदि माणसं दुक्खं
दट्ठूण महद्धीणं देवाणं रिद्धिसंपत्ती ॥ ५८ ॥

भाषार्थ—अथवा बडा कष्ट करि देवपर्याय भी पावै तौ ताकै बडे ऋद्धिके धारक देवनिकी ऋद्धि सम्पदा देखिकरि मानसीक दुःख उपजै है।

इट्ठविओगं दुक्खं होदि महद्धीण विसयतण्हादो ।
विसयवसादो सुक्खं जेसिं तेसिं कुतो तित्ती ॥ ५९॥

भाषार्थ—महर्द्धिक देवनकै भी इष्ट ऋद्धि देवांगनादिका वियोग होय है, तासंबंधी दुःख होय है. जिनकै विषयनिके आधीन सुख है तिनकै काहेतैं तृप्ति होय ? तृष्णा बधती ही रहै।

आगै शारीरिक दुःखतैं मानसीक दुःख बडा है ऐसें कहै हैं।

सारीरियदुक्खादो माणसदुक्खं हवेइ अइपउरं ।
माणसदुक्खजुदस्स हि विसया वि दुहावहा हुंति ॥

भाषार्थ—कोई जानैगा शरीरसंबंधी दुःख बडा है मानसिक दुःख तुच्छ है, ताकूं कहै हैं, शारीरिक दुःखतैं मानसिक दुःख अति प्रचुर है बडा है. देखो ! मानसीक दुःख सहित पुरुषकैं अन्य विषय बहुत भी होय तो दुःख उपजावन हारे दीसैं. भावार्थ—मनकी चिंता होय तब सर्व ही सामग्री दुःखरूप भासै।

देवाणं पि य सुक्खं मणहरविसएहिं कीरदे जदि हीं
विषयवसं जं सुक्खं दुक्खस्स वि कारणं तं पि ॥ ६१

भावार्थ—प्रगटपणै जो देवनिकै मनोहर विषयनिकरि सुख विचारिये तो सुख नाहीं है. जो विषयनिकै आधीन सुख है सो दुःखहीका कारण है. भावार्थ—अन्य निमित्ततैं सुख मानिये सो भ्रम है, जो वस्तु सुखका कारण मानिये है सो ही वस्तु कालान्तरमें दुःखकूं कारण होय है।

आगैं ऐसैं विचार किये कहूं भी सुख नहीं ऐसा कहै हैं.

एवं सुट्ठु—असारे संसारे दुक्खसायरे घोरे।
किं कत्थ वि अत्थि सुहं वियारमाणं सुणिच्चयदो ॥

भावार्थ—ऐसें सर्व प्रकार असार जो यहु दुःखका सागर भयानक संसार, ताविषै निश्चयथकी विचार कीजिये किछू कहूं सुख है ? अपि तु नाहीं है. भावार्थ—चारगतिरूपसंसार है तहां चारि ही गति दुःखरूप हैं, तब सुख कहां ?

आगें कहै हैं-जो यहु जीव पर्याय बुद्धि है जिस योनिमैं उपजै तहां ही सुख मानले है।

दुक्कियकम्मवसादो राया वि य असुइकीडओ होदि
तत्थेव य कुणइ रइं पेक्खह मोहस्स माहप्पं ॥ ६२॥

भावार्थ—जो प्राणी हो तुम देखो मोहका माहात्म्य, कि पापके वशतैं राजा भी मरकरि विष्ठाका कीडा जाय उपजै है सो तहां ही रति मानै है क्रीडा करै है।

आगें कहे हैं कि या प्राणीकैं एक ही भवविषै अनेक संबंध होय हैं—

पुत्तो वि भाओ जाओ सो वि य भाओ वि देवरो होदि।
माया होइ सवत्ती जणणो वि य होइ भत्तारो ६४
एयम्मि भवे एदे संबंधी होंति एयजीविस्स।
अण्णभवे किं भण्णइ जीवाणं धम्मरहिदाणं ६५

भावार्थ—एक जीवकै एक भवविषै एता संबन्ध होय हैं तौ धर्मरहित जीवनिकै अन्य भव विषै कहा कहिये ? ते संबन्ध कौन कौन ? सो कहिये है. पुत्र तौ भाई हूवा वहुरि जो भाई था सो ही देवर भया. वहुरि माता थी सो सौति भई वहुरि पिता था सो भरतार हुवा. एता सम्बन्ध वसन्ततिलका वेश्याके अरु धनदेवके अरु कमलाके अरु वरुणके हूवा तिनिकी कथा ग्रन्थान्तरतैं लिखिये है—

एक भवमें अठारह नातेकी कथा।

मालवदेश उज्जयनीविषै राजा विश्वसेन. तहां सुदत्त नाम श्रेष्ठी वसै. सो सोलह कोटि द्रव्यको धनी. सो वसन्ततिलकानाम वेश्यासूं आशक्त होय ताहि घरमें घाली. सो गर्भवती भई. तव रोगसहित देह भई तव घरमेंसूं काढि दई. वसन्ततिलका आपके घरहीमें पुत्र पुत्रीको जुगल जायो। सो वेश्या खेद खिन्न हो, तिनि दोऊ वालकनिकूं जुदे जुदे रत्न कम्बलमें लपेटि पुत्रीको तो दक्षिण दरवाजे क्षेपी. सो तौ प्रयागनिवासी विणजारेने लेकर अपनी स्त्रीको सौंपी.

कमला नाम धरयो। बहुरि पुत्रको उत्तर दिशाके दरवाजे खेप्यो. तहां साकेतपुरके एक सुभद्रनाम विणजारेने अपनी स्त्री सुव्रताको सौंप्यो. धनदेव ताको नाम धरयो. बहुरि पूर्वोपार्जित कर्मके वशतैं धनदेव अर कमलाके साथ विवाह हूवो. स्त्री भरतार भया. पीछैं धनदेव विणज निमित्त उज्जयिनी नगरी गया. तहां बसन्ततिलका वेश्यासूं लुब्ध हूवा. तब ताके संयोगतैं वसन्ततिलकाकै पुत्र हूवा, 'वरुण' नाम धरया. बहुरि एक दिवस कमला मुनिनै सम्बन्ध पूछ्या. मुनिने याका सर्व सम्बन्ध कहा।

इनका पूर्वभववर्णन.

इसी उज्जयिनी नगरीविषै सोमशर्मा नामा ब्राह्मण, ताकै काश्यपी नामा स्त्री, तिनकै अग्निभूत सोमभूत नाम दोय पुत्र हुए. ते दोऊ कहींतैं पढकर आवतै हुते. मार्गमैं जिनदत्तमुनिको ताकी माता जो जिनमती नामा अर्जिका सो शरीर समाधान पूछती देखी. बहुरि जिनभद्रनामा मुनिकूं सुभद्रा नाम आर्यिका पुत्रकी बहू थी सो शरीर समाधान पूछती देखी। तहां दोऊ भाईने हास्य करी कि तरुणकै तौ वृद्ध स्त्री अरु वृद्धकै तरुणी स्त्री—विधाता अच्छ्या विपरीत रच्या. सो हास्यके पापतैं सोमशर्मा तो वसन्ततिलका हुई. बहुरि अग्निभूति सोमभूति दोनूं भाई मरकरि वसन्ततिलकाके पुत्र पुत्री युगल भये। तिनके कमला अरु धनदेव नाम पाया. बहुरि काश्यपी ब्राह्मणी वसन्ततिलकाकै धनदेवके संयोगतैं वरुण

नाम पुत्र हुवा. ऐसैं सर्व सम्बन्ध सुणकरि कमलाकों जाति स्मरण हूवा, तव उज्जयिनी नगरीविषै वसन्ततिलकाके घर गई. तहां-वरुण पालणै झूलै था, ताकूं कहती भई. कि हे बालक ! तेरे साथ मेरे छै नाते हैं सो सुणि—

१ । मेरा भरतार जो धनदेव ताके संयोगतैं तु हुवा सो मेरा भी तू (सोतेला) पुत्र है ।

२ । बहुरि धनदेव मेरा सगा भाई है, ताका तू पुत्र, तातैं मेरा भतीजा भी है.

३ । तेरी माता वसन्ततिलका, सो ही मेरी माता है यातैं मेरा भाई भी है.

४ । तू मेरे भरतार धनदेवका छोटा भाई है, तातैं मेरा देवर भी है.

५ । धनदेव, मेरी माता बसन्ततिलकाका भरतार है, तातैं धनदेव मेरा पिता भया. ताका तू छोटा भाई है, तातैं काका (चाचा) भी है.

६ । मैं वसन्ततिलकाकी सौकि (सौतिन) तातैं धनदेव मेरा पुत्र (सोतीला पुत्र] ताका तू पुत्र तातैं मेरा पोता भी है.

या प्रकार वरुणके साथ छह नाता कहती हुती सो बसन्ततिलका तहां आई और कमलाकूं बोली कि तू कौन है जो मेरे पुत्रसूं या प्रकार ६ नाता सुनावै है ? तव कमला बोली तेरे साथ भी मेरे छै नाते हैं सो सुणि—

१ । प्रथम तो तू मेरी माता है क्योंकि मैं धनदेवके साथ तेरे ही उदरसे युगल उपजी हूं.

२ । धनदेव मेरा भाई, उसकी तू स्त्री, तातैं मेरी भावज [भौजाई] है.

३ । तू मेरी माता, ताका भरतार धनदेव मेरा पिता भया ताकी तू माता, तातैं मेरी दादी है ।

४ । मेरा भरतार धनदेव, ताकी तू स्त्री, तातैं मेरी शोही (सौतिन) भी है ।

५ । धनदेव तेरा पुत्र सो मेरा भी पुत्र (सौतीला पुत्र) ताकी तू स्त्री, तातैं तू मेरी पुत्रवधू भी है ।

६ । मैं धनदेवकी स्त्री, तू धनदेवकी माता, तातैं तू मेरी सास भी है. याप्रकार वेश्या ६ नाते सुनकर चिन्तामें विचारतीरही, सो ही तहां धनदेव आया. ताकूं देखकर कमला बोली कि तुमारे साथ भी हमारे ६ नाते हैं सो सुणो.

१ । प्रथम तो तू और मैं इसी वेश्याके उदरसूं युगल उपज्या सो मेरा भाई है.

२ । पीछें तेरा मेरा विवाह हो गया सो तू मेरा पति है.

३ । वसन्ततिलका मेरी माता ताका तू भरतार तातैं मेरा पिता भी है ।

४ । वरुण तेरा छोटा भाई सो मेरा काका भया ताका तू पिता तातैं काकाका पिता होनेतैं मेरा तू दादा भी भया

५ । मैं वसन्त तिलकाकी सौकी-अर तू मेरी सौकीका पुत्र तातैं मेरा भी तू पुत्र है ।

६ । तू मेरा भरतार तातैं तेरी माता वेश्या मेरी सास भई, बहुरि सासके तुम भरतार, तातैं मेरे ससुर भी भये.

* या प्रकार एक ही भवमें एक ही प्राणीके अठारह नाते भये, ताका उदाहरण कहा. यह संसारकी विचित्र विडंबना है. यामें कछु भी आश्चर्य नहीं है।

आगें पांच प्रकार संसारके नाम कहै हैं,—

संसारो पंचविहो दव्वे खत्ते तहेव काले य।
भवभमणो य चउत्थो पंचमओ भावसंसारो ॥ ६६॥

भावार्थ—संसार कहिये परिभ्रमण सो पांच प्रकार है. द्रव्ये कहिये पुद्गल द्रव्यविषै ग्रहणत्यजनरूप परिभ्रमण. बहुरि क्षेत्रे कहिये आकाशके प्रदेशनिविषै स्पर्शनेरूप परिभ्रमण. बहुरि काले कहिये कालके समयनिविषै उपजने विनसनेरूप परिभ्रमण. बहुरि तैसें ही भव कहिये नारकादि भवका ग्रहण त्यजनरूप परिभ्रमण बहुरि भाव कहिये अपने कषाययोगनिका स्थानकरूप जे भेद तिनका पलटनेरूप परिभ्रमण. ऐसे पंच प्रकार संसार जानना ॥ ६६ ॥ आगें इनिका स्वरूप कहै हैं। प्रथमही द्रव्य परिवर्त्तनकूं कहै हैं।

---

* यह अठारहनातेकी कथा ग्रंथान्तरसे लिखी गई है यथा—

वालय हि सुणि सुवयणं तुज्झ सरिसा हि अट्ठ दहणत्ता।
पुत्तु भतिज्जउ भायउ देवरु पत्तिय हु पौत्तज्ज ॥ १ ॥
तुहु पियरो सुहुपियरो पियामहो तहय हवइ भत्तारो।
भायउ तहावि पुत्तो ससुरो हवइ वालयो मज्झ ॥ २ ॥
तुहु जणणी हुइ भज्जा पियामही तह य मायरी सवई।
हवइ बहू तह सासू ए कहिया अट्ठदहणत्ता ॥ ३ ॥

बंधदि मुंचदि जीवो पडिसमयं कम्मपुग्गला विविहा
णोकम्मपुग्गला वि य मिच्छत्तकसायसंजुत्तो ॥६७॥

भाषार्थ—यह जीव या लोक विषै तिष्ठते जे अनेक प्रकार पुद्गल ज्ञानावरणादि कर्मरूप तथा औदारिकादि शरीर नोकर्मरूपकरि समयसमयप्रति मिथ्यात्वकषायनिकरि संयुक्त हूवा संता बांधै है तथा छोडै है. भावार्थ—मिथ्यात्व कषायके वश करि ज्ञानावरणादि कर्मका समयप्रबद्ध अभव्यराशितैं अनन्तगुणा सिद्धराशिके अनन्तवें भाग पुद्गलपरमाणुनिका स्कन्धरूप कार्माणवर्गणाकूं समयसमयप्रति ग्रहण करै है. बहुरि पूर्वें ग्रहे थे ते सत्तामें हैं, तिनमेंसों येते ही समयसमय क्षरै हैं। बहुरि तैसैं ही औदारिकादि शरीरनिका समयप्रबद्ध शरीरग्रहणके समयतैं लगाय आयुकी स्थितिपर्यन्त ग्रहण करै है वा छोडै है. सो अनादि कालतैं लेकरि अनन्तवार ग्रहण करना वा छोडना हो है. तहां एक परिवर्त्तनका प्रारंभविषै प्रथमसमयमें समयप्रबद्धविषै जेते पुद्गल परमाणु जैसे स्निग्ध रूक्ष वर्ण गन्ध रूप रस तीव्र मंद मध्यम भाव करि ग्रहे होय तेते ही तैसें ही कोई समयविषै फेरि ग्रहणमें आवैं तब एक कर्म परावर्त्तन तथा नोकर्मपरावर्त्तन होय. वीचिमें अनन्तवार और भांतिके परमाणू ग्रहण होंय ते न गिणिये. जैसेके तैसे फेर ग्रहणकूं अनन्ता काल वीते, ताकूं एक द्रव्यपरावर्त्तन कहिये. ऐसें या जीवने या लोकविषै अनन्ता परावर्त्तन किये।

आगैं क्षेत्रपरिवर्तन कहै हैं—

सो को वि णत्थि देसो लोयायासस्स णिरवसेसस्स।
जत्थ ण सव्वो जीवो जादो मरिदो य बहुवारं॥

भाषार्थ—या लोकाकाशप्रदेशनिमें ऐसा कोई भी प्रदेश नाहीं है जामैं यह सर्वही संसारी जीव बहुतवार जन्म्या तथा मर्या नाहीं है। भावार्थ—सर्व लोकाकाशका प्रदेशनिविषै बहु जीव अनन्तवार उपज्या अनन्तवार मर्या। ऐसा प्रदेश रह्या ही नाहिं जामैं नाहीं उपज्या मर्या। इहां ऐसा जानना जो लोकाकाशके प्रदेश असंख्याता हैं। ताके मध्यके आठ प्रदेशकूं बीचि दे, सूक्ष्मनिगोदलब्धिअपर्याप्तक जघन्य अवगाहनाका धारी उपजै है सो याकी अवगाहना भी असंख्यात प्रदेश है सो जेते प्रदेश तेती बार तो वाही अवगाहना तहां ही पावै। बीचिमैं और जायगां अन्य अवगाहनातैं उपजै सो गिनतीमैं नाहीं। पीछै एक एक प्रदेश क्रमकरि वधती अवगाहना पावै सो गिणतीमैं, सो ऐसैं उत्कृष्ट अवगाहना महामच्छकी तांई पूरण करै। तैसैं ही क्रम करि लोकाकाशके प्रदेशनिकूं परसै तब एक क्षेत्रपरावर्तन होय ॥ ६८ ॥ आगै काल परिवर्तनकूं कहै हैं—

उवसप्पिणिअवसप्पिणिपढमसमयादिचरमसमयंतं।
जीवो कमेण जम्मदि मरदि य सव्वेसु कालेसु ६९

भाषार्थ—उत्सर्पिणी बहुरि अवसर्पिणी कालके पहिले

समयतैं लगाय अन्तके समयपर्यंत यहु जीव अनुक्रमतैं सर्व कालविषै उपजै तथा मरै है, भावार्थ—कोई जीव उत्सर्पिणी जो दशकोडाकोडी सागरका काल ताका प्रथम समयविषै जन्म पावै, पीछै दूसरे उत्सर्पिणीके दूसरे समयविषै जन्मै, ऐसे ही तीसरेके तीसरे समयविषै जन्मैं, ऐसे ही अनुक्रमतैं अन्तके समयपर्यंत जन्मैं, बीचिबीचिमें अन्यसमयनिविषै विना अनुक्रम जन्मै सो गिणतीमें नाहीं ऐसें ही अवसर्पिणीके दश कोडाकोडी सागरके समयपूरण करै तथा ऐसें ही मरण करै सो यह अनंत काल होय ताकूं एक कालपरावर्त्तन कहिये।

आगें भवपरिवर्त्तनकूं कहै हैं—

णेरइयादिगदीणं अवरट्ठिदिदो वरट्ठिदी जाव।
सव्वट्ठिदिसु वि जम्मदि जीवो गेवेज्जपज्जंतं ॥ ७० ॥

भाषार्थ—संसारी जीव नरक आदि चारि गतिकी जघन्य स्थितितैं लगाय उत्कृष्टस्थितिपर्यन्त सर्व स्थितिविषै ग्रैवेयकपर्यन्त जन्मै। भावार्थ—नरकगतिकी जघन्यस्थिति दश हजार वर्षकी है सो याके जेते समय हैं तेतीवार तौ जघन्यस्थितिकी आयु ले जन्मै. पीछै एक समय अधिक आयु लेकर जन्मै। पीछै दोय समय अधिक आयु ले जन्मै. ऐसें ही अनुक्रमतैं तेतीस सागरपर्यन्त आयु पूरण करै, बीचिबीचिमें घाटि वाधि आयु ले जन्मै तो गिणतीमें नाहीं. ऐसें ही तिर्यंच गतिकी जघन्य आयु अन्तरमुहूर्त्त, ताके जेते समय हैं तेतीवार जघन्य आयुका धारक होय पीछै एक समयाधिक-

क्रमतैं तीन पल्य पूरण करै. वीचमें घाटि वाधि पावै ते गिणतीमें नाहीं. ऐसें ही मनुष्यकी जघन्यतैं लगाय उत्कृष्ट तीनपल्य पूरण करै. ऐसें ही देव गतिकी जघन्य दश हजार वर्षतैं लगाय ग्रैवेयकके उत्कृष्ट इकतीस सागरताईं समयाधिकक्रमतैं पूरण करै. ग्रैवेयकके आगे उपजनेवाला एक दोय भव ले मोक्ष ही जाय, तातैं न गिण्या ऐसें या भवपरावर्त्तनका अनन्त काल है ॥ ७० ॥

आगें भावपरिवर्त्तनकूं कहै हैं,—

परिणमदि सण्णिजीवो विविहकसाएहिं ट्ठिदिणिमित्तेहिं
अणुभागणिमित्तेहिं य वट्ठंतो भावसंसारो ॥७१॥

भाषार्थ—भावसंसारविषै वर्त्तता जीव अनेक प्रकार कर्मकी स्थितिबंधकूं कारण वहुरि अनुभागवन्धकूं कारण जे अनेक प्रकार कषाय तिनिकरि सैनी पंचेंद्रिय जीव परिणमैं है. भावार्थ—कर्मकी एक स्थितिवन्धकूं कारण कषायनिके स्थानक असंख्यात लोकप्रमाण हैं, तामें एक स्थितिबंधस्थानमें अनुभागवन्धकूं कारण कषायनिके स्थान असंख्यातलोकप्रमाण हैं. वहुरि योग्यस्थान हैं ते जगत्श्रेणीके असंख्यातवें भाग हैं. सो यह जीव तिनिकूं परिवर्त्तन करै है. सो कैसें ? कोई सैनी मिथ्यादृष्टी पर्याप्तकजीव स्वयोग्य सर्व जघन्य ज्ञानावरण प्रकृतिकी स्थिति अन्तःकोटाकोटीसागर वांधै, ताके कषायनिके स्थान असंख्यात लोकमात्र तामें सर्व जघन्यस्थान एकरूप परिणमै, तामें तिस एक

स्थानमें अनुभागबंधकूं कारण स्थान ऐसे असंख्यातलोकप्रमाण हैं. तिनमेंसों एक सर्वजघन्यरूप परिणमै तहां तिस योग्य सर्वजघन्य ही योगस्थानरूप परिणमै, तब जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भाग योगस्थान अनुक्रमतैं पूरण करै. वीचिमें अन्य योगस्थानरूप परिणमैं सो गिणतीमें नाहीं. ऐसें योगस्थान पूरण भये अनुभागका स्थान दूसरारूप परिणमै तहां भी तैसें ही योगस्थान सर्व पूरण करै। बहुरि तीसरा अनुभागस्थान होय तहां भी तेते ही योगस्थान भुगतै. ऐसें असंख्यातलोकप्रमाण अनुभागस्थान अनुक्रमतैं पूरण करै तब दूसरा कषायस्थान लेणा. तहां भी तैसें ही क्रमतैं असंख्यात लोकप्रमाण अनुभागस्थान तथा जगत्श्रेणीके असंख्यातवें भाग योगस्थान पूर्वोक्त क्रमतैं भुगतै तब तीसरा कषायस्थान लेणा. ऐसें ही चतुर्थादि असंख्यात लोकप्रमाण कषायस्थान पूर्वोक्त क्रमतैं पूरण करै, तब एकसमय अधिक जघन्यस्थिति स्थान लेणा, तामैं भी कषायस्थान अनुभागस्थान योगस्थान पूर्वोक्त क्रमतैं भुगतै. ऐसें दोय समय अधिक जघन्यस्थितितैं लगाय तीसकोड़ाकोडीसागर पर्यन्त ज्ञानावरणकर्मकी स्थिति पूरण करै. ऐसे ही सर्वमूलकर्मप्रकृति तथा उत्तरप्रकृतिनका क्रम जानना. ऐसैं परिणमतैं अनंत काल वीतै, तिनिकूं भेला कीये एक भावपरिवर्त्तन होय. ऐसें अनंत परावर्तन यह जीव भोगता आया है ॥

आगें पंचपरावर्त्तनका कथनकूं संकोचै हैं—

एवं अणाइकालं पंचपयारे भमेइ संसारे।

णाणादुक्खणिहाणे जीवो मिच्छत्तदोसेण ॥ ७२ ॥

भाषार्थ—ऐसें पांच प्रकार संसारविषै यह जीव अनादि कालतैं मिथ्यात्व दोषकरि भ्रमै है. कैसा है संसार, अनेक प्रकारके दुःखनिका निधान है ।

आगें संसारतैं छूटनेका उपदेश करै हैं—

इय संसारं जाणिय मोहं सव्वायरेण चइऊण ।
तं झायह ससहावं संसरणं जेण णासेइ ॥ ७३ ॥

भाषार्थ—ऐसें पूर्वोक्त प्रकार संसारकूं जाणि सर्व प्रकार उद्यम करि मोहकूं छोडि करि हे भव्य हो ! तिस आत्मस्वभावकूं ध्यावो जाकरि संसारका भ्रमणका नाश होय ।

दोहा ।

पंचपरावर्त्त नमयी, दुःखरूप संसार ।
मिथ्याकर्म उदै यही, भरमै जीव अपार ॥ ३ ॥

इति संसारानुप्रेक्षा समाप्त ॥ ३ ॥

अथ एकत्वानुप्रेक्षा लिख्यते.

इक्को जीवो जायदि इक्को गब्भम्मि गिह्णदे देहं ।
इक्को बाल जुवाणो इक्को वुड्ढो जरागहिओ ॥ ७४ ॥

भाषार्थ— जीव है सो एक ही उपजै है. सो ही एक गर्भविषै देहकूं ग्रहण करै है. सो ही एक बालक होय है. सो ही एक जवान होय है. सो ही एक वृद्ध जराकरि गृहीत होय है. भावार्थ—एक ही जीव नाना पर्यायनिकूं धारै है ।

इक्को रोई सोई इक्को तप्पेइ माणसे दुक्खे ।
इक्को मरदि वराओ णरयदुहं सहदि इक्को वि ७५

भाषार्थ—एक ही जीव रोगी होय है, सो ही एक जीव शोकसहित होय है. सो ही एक जीव मानसिक दुःखकरि तप्तायमान होय है. सो ही एक जीव मरै है. सो ही एक जीव दीन होय नरकके दुःख सहै है. भावार्थ—जीव अकेला ही अनेक अनेक अवस्थाकूं धारै है ।

इक्को संचदि पुण्णं इक्को भुंजेदि विविहसुरसोक्खं
इक्को खवेदि कम्मं इक्को वि य पावए मोक्खं ॥७६॥

भाषार्थ—एक ही जीव पुण्यका संचय करै है. सो ही एक जीव देवगतिके सुख भोगवै है. सो ही एक जीव कर्मकी निर्जरा करै है. सो ही एक जीव मोक्षकूं पावै है. भावार्थ—सो ही जीव पुण्य उपजाय स्वर्ग जाय है. सो ही जीव कर्मनाशकर मोक्ष जाय है ।

सुयणो पिच्छंतो वि हु ण दुक्खलेसंपि सक्कदे गहिदुं ।
एवं जाणंतो वि हु तोवि ममत्तं ण छंडेइ ॥ ७७ ॥

भाषार्थ—स्वजन कहिये कुटुंब है सो भी या जीवमें दुःख आवै ताकूं देखता संता भी दुःखका लेश भी ग्रहण करणेकूं असमर्थ होय है. ऐसे जनता भी प्रगटपणे या कुटंबतें ममत्व नाही छोडै है. भावार्थ— दुःख आपका आप ही भो-

गवै है. कोई बटाय सकै नाहीं, या जीवकै ऐसा अज्ञान है जो दुःख सहता भी परके ममत्वकूं नाहीं छोड़ै है ॥ ७७ ॥

आगें कहै हैं या जीवकै निश्चयतैं धर्म ही स्वजन है।

जीवस्स णिच्चयादो धम्मो दहलक्खणो हवे सुयणो
सो णेइ देवलोए सो चिय दुक्खक्खयं कुणइ ॥ ७८

भाषार्थ—या जीवकै अपना हितू निश्चयतैं एक उत्तम क्षमादि दशलक्षण धर्म ही है. काहेतैं ? जातैं सो धर्म ही देवलोककूं प्राप्त करै है. बहुरि सो धर्म ही सर्व दुःखका नाशरूप मोक्षकूं करै है. भावार्थ—धर्मसिवाय और कोऊ हितू नाहीं ॥ ७८ ॥

आगें कहै हैं ऐसा एकला जीवकूं शरीरतैं भिन्न जानहु।

सव्वायरेण जाणह इक्कं जीवं सरीरदो भिण्णं ।
जह्मि दु मुणिदे जीवो होइ असेसं खणे हेयं ॥ ७९ ॥

भाषार्थ—भो भव्य हो ! तुम जीवकूं शरीरतैं भिन्न सर्वप्रकार उद्यम करि जानहु. जाके जानें अवशेष सर्व परद्रव्य क्षणमात्रमें त्यजने योग्य होय हैं. भावार्थ—जब अपना स्वरूपकूं जानै, तब परद्रव्य हेय ही भासै, तातैं अपना स्वरूपहीके जाननेका महान उपदेश है ॥ ७९ ॥

दोहा।

एक जीव परजाय बहु, धारै स्वपर निदान।
पर तजि आपा जानिकै, करो भव्य कल्यान ॥ ४ ॥

इति एकत्वानुप्रेक्षा समाप्त ॥ ४ ॥

अथ अन्यत्वानुप्रेक्षा लिख्यते.

अण्णं देहं गिह्णदि जणणी अण्णा य होदि कम्मादो ।
अण्णं होदि कलत्तं अण्णो वि य जायदे पुत्तो ॥ ८० ॥

भाषार्थ—यह जीव संसारविषै देह ग्रहण करै है सो आपतैं अन्य है. बहुरि माता है सो भी अन्य है. बहुरि स्त्री है सो भी अन्य है. बहुरि पुत्र है सो भी अन्य उपजै है. यह सर्व कर्मसंयोगतैं होय हैं ॥ ८० ॥

एवं वाहिरदव्वं जाणदि रूवा हु अप्पणो भिण्णं ।
जाणंतो वि हु जीवो तत्थेव य रच्चदे मूढो ॥८१॥

भाषार्थ—ऐसें पूर्वोक्तप्रकार सर्व बाह्यवस्तुकूं आत्मस्वरूपतैं न्यारा जानै है तोऊ प्रगटपणै जाणता संता भी यह मूढ मोही तिन परद्रव्यनिविषै ही राग करै है. सो यह बडी मूर्खता है ॥ ८१ ॥

जो जाणिऊण देहं जीवसरूवादु तच्चदो भिण्णं ।
अप्पाणं पि य सेवदि कज्जकरं तस्स अण्णत्तं ॥ ८२ ॥

भाषार्थ—जो जीव अपने स्वरूपतैं देहकूं परमार्थतैं भिन्न जानिकरि आत्मस्वरूपकूं सेवै है, ध्यावै है ताकै अन्यत्वभावना कार्यकारी है. भावार्थ—जो देहादिक परद्रव्यकूं न्यारे जानि अपने स्वरूपका सेवन करै है ताकूं न्याराभावना (अन्यत्वभावना) कार्यकारी है।

---

१ रुवादु इत्यादि पाठः ।

दोहा ।

निज आतमतैं भिन्न पर, जानै जे नर दक्ष ।
निजमें रमैं वमैं अपर, ते शिव लखैं प्रत्यक्ष ॥ ५ ॥

इति अन्यत्वानुप्रेक्षा समाप्ता ॥ ५ ॥

अथ अशुचित्वानुप्रेक्षा लिख्यते ।

सयलकुहियाण पिंडं किमिकुलकलियं अउव्वदुग्गंधं
मलमुत्ताणं गेहं देहं जाणेह असुइमयं ॥ ८३ ॥

भाषार्थ—हे भव्य तू या देहकूं अपवित्रमयी जाणि. कैसा है देह ? समस्त जे कुत्सित कहिये निंदनीक वस्तु तिनका पिंड कहिये समूह है. बहुरि कैसा है ? किमि कहिये उदरके जीव लट तथा अनेक प्रकार निगोदादिक जीव तिनकरि भरया है. बहुरि अत्यन्त दुर्गन्धमय है. बहुरि मल तथा मूत्रका घर है. भावार्थ—सर्व अपवित्र वस्तुका समूह देहकूं जाणहु ।

आगैं कहै हैं यहु देह अन्य सुगन्ध वस्तुकोभी संयोगतैं दुर्गंध करै है—

सुट्ठुपवित्तं दव्वं सरससुगंधं मणोहरं जं पि ।
देहणिहित्तं जायदि घिणावणं सुट्ठुदुग्गंधं ॥ ८४ ॥

भाषार्थ—या देहकेविषै क्षेपे लगाये भले पवित्र सुरस सुगंध मनके हरणहारे द्रव्य, ते भी घिणावणा अत्यन्त दुर्गन्ध होय हैं । भावार्थ—या देहकै चंदन कपूरादिकूं लगाये

ते दुर्गन्ध होय जांय, भले मिष्टान्नादि रससहित खाये ते मलादिकरूप परिणमैं. अन्य भी वस्तु या देहके स्पर्शतें अ-स्पर्श्य होय जाय हैं।

बहुरि या देहकूं अशुचि दिखावै हैं—

मणुआणं असुइमयं विहिणा देहं विणिम्मियं जाण।
तेसिं विरमणकज्जे ते पुण तत्थेव अणुरत्ता॥ ८५॥

भावार्थ—हे भव्य! यहु मनुष्यनिका देह कर्मने अशुचि बणाया है, सो यहां ऐसी उत्प्रेक्षा संभावना जाणि, जो इनि मनुष्यनिकूं वैराग्य जनावनेके अर्थिही ऐसा रच्या है परंतु ये मनुष्य ऐसे भी देहमें अनुरागी होय हैं. सो यह अज्ञान है।

बहुरि याही अर्थकूं दृढ करै हैं,—

एवं विहं पि देहं पिच्छंता वि य कुणंति अणुरायं।
सेवंति आयरेण य अलद्धपुव्वत्ति मण्णंता॥ ८६॥

भावार्थ—ऐसा पूर्वोक्तप्रकार अशुचि देहकूं प्रत्यक्ष देखता भी ये मनुष्य तहां अनुराग करै हैं, जैसैं पूर्वे ऐसे कभी न पाया ऐसा मानते संते आदरै हैं, याकूं सेवै हैं, सो यह वडा अज्ञान है।

आगें या देहसूं विरक्त हो है ताकैं अशुचि भावना सफल है ऐसा कहै हैं—

जो परदेहविरत्तो णियदेहे ण य करेदि अणुरायं।
अप्पसरूवि सुरत्तो असुइत्ते भावणा तस्स॥ ८७॥

भाषार्थ—जो भव्य परदेह जो स्त्री आदिककी देह तातैं विरक्त हुवा संता निज देहविषै अनुराग नाहीं करै है ताकै अशुचि भावना सार्थिक होय है. भावार्थ—केवल विचारहीतैं वैराग्य प्रगट होय ताकै भावना सत्यार्थ कहिये ।

दोहा

स्वपर देहकूं अशुचि लखि, तजै तास अनुराग।
ताकै सांची भावना, सो कहिये बडभाग॥ ६॥

इति अशुचित्वानुप्रेक्षा समाप्ता ॥ ६ ॥

अथ आस्रवानुप्रेक्षा लिख्यते ।

मणवयणकायजोया जीवपयेसाणफंदणविसेसा ।
मोहोदएण जुत्ता विजुदा वि य आसवा होंति॥ ८८॥

भाषार्थ—मन वचन काययोग हैं ते ही आस्रव हैं । कैसें हैं ? जीवके प्रदेशनिका जो स्पंदन कहिये चलणा कंपना तिसके विशेष हैं ते ही योग हैं. बहुरि कैसें हैं ते ? मोहकर्मका उदय जे मिथ्यात्व कषाय तिन कर्म सहित हैं. बहुरि मोहके उदयकरि रहित भी हैं. भावार्थ—मन वचन कायके निमित्त पाय जीवके प्रदेशनिका चलाचल होना सो योग है तिनहीकूं आस्रव कहिये. ते गुणस्थानकी परिपाटीविषै सूक्ष्मसांपराय दशमां गुणस्थानताई तो मोहके उदयरूप यथासंभव मिथ्यात्व कषायनिकरि सहित होय हैं. ताकूं सांपरायिक आस्रव कहिये बहुरि ऊपरि तेरहवां गुणस्थानताई मोहके

उदय करि रहित है ताकूं ईर्यापथ आस्रव कहिये. जो पुद्गल वर्गणा कर्मरूप परिणमै ताकूं द्रव्यास्रव कहिये. जीवके प्रदेश चंचल होंय ताकूं भावास्रव कहिये ।

आगें मोहके उदयसहित आस्रव हैं ऐसा विशेषकरि कहै हैं—

मोहविभागवसादो जे परिणामा हवंति जीवस्स ।
ते आसवा मुणिज्जसु मिच्छत्ताई अणेयविहा ॥८९॥

भावार्थ—मोहकर्मके उदयतैं जे परिणाम या जीवकै होय हैं ते ही आस्रव हैं, हे भव्य तू प्रगटपणे ऐसे जाणि. ते परिणाम मिथ्यात्वनै आदि लेकर अनेक प्रकार हैं. भावार्थ—कर्मबन्धके कारण आस्रव हैं. ते मिथ्यात्व अविरत प्रमाद कषाय योग ऐसें पांच प्रकार हैं. तिनमें स्थिति अनुभागरूप बंधके कारण मिथ्यात्वादिक च्यारि ही हैं सो ए मोहकर्मके उदयतैं होय हैं. बहुरि योग हैं ते समयमात्र बंधकूं करै हैं. कछू स्थिति अनुभागकं करै नाहीं तातैं बंधका कारणमें प्रधान नाहीं ।

आगें पुण्यपापके भेदकरि आस्रव दोय प्रकार कहै हैं—

कम्मं पुण्णं पावं हेउं तेसिं च होंति सच्छिदरा ।
मंदकसाया सच्छा तिव्वकसाया असच्छा हु ॥ ९० ॥

भावार्थ—कर्म है सो पुण्य तथा पाप ऐसे दोय प्रकार है. ताकूं कारण भी दो प्रकार है. प्रशस्त अर इतर कहिये

अप्रशस्त. तहां मंद कषाय परिणाम ते तौ प्रशस्त हैं शुभ हैं बहुरि तीव्रकषाय परिणाम ते अप्रशस्त अशुभ हैं. ऐसें प्रगट जानहु. भावार्थ–सातावेदिनी शुभ आयुः उच्चगोत्र शुभनाम ये प्रकृतियें तो पुण्यरूप हैं. अवशेष चारघातियाकर्म, असातावेदनी, नरकायुः नीचगोत्र अशुभनाम ए प्रकृतियें पापरूप हैं तिनकूं कारण आस्रव भी दोय प्रकार हैं. तहां मंदकषायरूप परिणाम तौ पुण्यास्रव हैं और तीव्र कषायरूप परिणाम पापास्रव हैं।

आगें मंद तीव्रकषायकुं प्रगट दृष्टान्त करि कहै हैं.

सव्वत्थ वि पियवयणं दुव्वयणे दुज्जणे वि खमकरणं।
सव्वेसिं गुणगहणं मंदकसायाण दिट्ठंता ॥ ९१ ॥

भाषार्थ–सर्व जायगां शत्रु तथा मित्र आदिविषै तो प्यारा हितरूप वचन और दुर्वचन सुणिकरि दुर्जनविषै भी क्षमा करणा, बहुरि सर्व जीवनिके गुण ही ग्रहण करना, ए ते मंदकषायनिके उदाहरण हैं।

अप्पपसंसणकरणं पुज्जेसु वि दोसगहणसीलत्तं।
वेरधरणं च सुइरं तिव्वकसायाण लिंगाणि ॥ ९२॥

भाषार्थ–अपनी प्रशंसा करणा पूज्य पुरुषनिका भी दोष ग्रहण करनेका स्वभाव तथा घणे कालतांई वैर धारणा ए तीव्रकषायनिके चिन्ह हैं।

आगें कहै हैं ऐसे जीवके आस्रवका चितवन निष्फल है।

एवं जाणंतो वि हु परिच्चयणीये वि जो ण परिहरइ।

तस्सासवाणुपिक्खा सव्वा वि णिरत्थया होदि ॥

भाषार्थ—ऐसे प्रगटपणे जानता सन्ता भी जो त्यजनेयोग्य परिणामनिकूं नाहीं छोडै है ताकैं सारा आस्रवका चिंतवन निरर्थक है. कार्यकारी नाहीं. भावार्थ—आस्रवानुप्रेक्षाका चिंतवन करि प्रथम तौ तीव्रकषाय छोडणा, पीछैं शुद्ध आत्मस्वरूपका ध्यान करणा, सर्व कषाय छोडना, तब यहु चिंतवन सफल है. केवल वार्त्ता करणमात्र ही तौ सफल है नाहीं।

एदे मोहजभावा जो परिवज्जेइ उवसमे लीणो।
हेयमिदि मण्णमाणो आसवअणुपेहणं तस्स ॥ ९४ ॥

भाषार्थ—जो पुरुष एते पूर्वोक्त मोहके उदयतैं भये जे मिथ्यात्वादिक परिणाम तिनिकूं छोडै है, कैसा हूवा संता उपशम परिणाम जो वीतराग भाव ताविषैं लीन हूवा संता तथा इनि मिथ्यात्वादिक भावनिकूं हेय कहिये त्यागनेयोग्य हैं, ऐसैं जानता संता. ताकैं आस्रवानुप्रेक्षा हो है।

दोहा.

आस्रव पंचप्रकारकूं, चितवैं तजैं विकार।
ते पावैं निजरूपकूं, यहै भावनासार ॥ ७ ॥

इति आस्रवानुप्रेक्षा समाप्ता ॥ ७ ॥

अथ संवरानुप्रेक्षा लिख्यते ।

सम्मत्तं देसवयं महव्वयं तह जओ कसायाणं ।

एदे संवरणामा जोगा भावो तहच्चेव ॥ ९५ ॥

भाषार्थ—सम्यक्त्व देशव्रत महाव्रत तथा कषायनिका जीतना तथा योगनिका अभाव एते संवरके नाम हैं. भावार्थ-पूर्वे आस्रव, मिथ्यात्व, अविरत, प्रमाद, कषाय, योगरूप पंच प्रकार कह्या था, तिनका अनुक्रमतैं रोकना सो ही संवर है. सो कैसें ? मिथ्यात्वका अभाव तौ चतुर्थगुणस्थानविषै भया तहां अविरतका संवर भया. अविरतका अभाव एक देश तौ देशविरतिविषै भया, अर सर्वदेश प्रमत्तगुणस्थानविषैं भया तहां अविरतका संवर भया. बहुरि अप्रमत्त गुणस्थानविषै प्रमादका अभाव भया तहां ताका संवर भया. अयोगिजिनविषै योगनिका अभाव भया, तहां तिनिका संवर भया । ऐसें संवरका क्रम है ।

आगें इसीको विशेषकरि कहै हैं,—

गुत्ती समिदी धम्मो अणुवेक्खा तह परीसहजओ वि ।

उक्किट्ठं चारित्तं संवरहेदू विसेसेण ॥ ९६ ॥

भाषार्थ—कायमनोवचनगुप्ति, ईर्या भाषा एषणा आदाननिक्षेपणा प्रतिष्ठापना एवं पंचसमिति, उत्तम क्षमादि दशलक्षण धर्म, अनित्य आदि बारह अनुप्रेक्षा, क्षुधा आदि बाईस परीषहका जीतना, सामायिक आदि उत्कृष्ट पंचप्रकार चारित्र एते विशेषकर संवरके कारण हैं ।

आगें इनिको स्पष्ट करि कहैं हैं,—

गुत्ती जोगणिरोहो समिदीयपमायवज्जणं चेव ।
धम्मो दयापहाणो सुतच्चचिंता अणुप्पेहा ॥ ९७ ॥

भावार्थ—योगनिका निरोध सो तो गुप्ति है, प्रमादका वर्जना यत्नतैं प्रवर्त्तना सो समिति है. जामें दयाप्रधान होय सो धर्म है, भले तत्त्व कहिये जीवादिक तत्त्व तथा निज-स्वरूपका चिंतवन सो अनुप्रेक्षा है ।

सो वि परीसहविजओ छुहाइपीडाण अइरउद्दाणं ।
सवणाणं च मुणीणं उवसमभावेण जं सहणं ॥ ९८ ॥

भावार्थ— जो अति रौद्र भयानक क्षुधा आदि पीडा तिनका उपशमभाव कहिये वीतरागभाव करि सहना सो ज्ञानी जे महामुनि तिनिके परीसहनिका जीतना कहिये है ।

अप्पसरूवं वत्थुं चत्तं रायादिएहिं दोसेहिं ।
सज्झाणम्मि णिलीणं तं जाणसु उत्तमं चरणं ॥९९ ॥

भावार्थ—जो आत्मस्वरूप वस्तु है ताका रागादि दोष-निकरि रहित धर्म्य शुक्ल ध्याननिषै लीन होना ताहि भो भव्य ! तू उत्तम चारित्र जाणि ।

आगें कहै हैं जो ऐसे संवरको आचरै नाहीं है सो संसारमें भ्रमै है,—

एदे संवरहेदुं वियारमाणो वि जो ण आयरइ ।

सो भमइ चिरं कालं संसारे दुक्खसंतत्तो ॥ १०० ॥

भाषार्थ—जो पुरुष पूर्वोक्तप्रकार संवरके कारणनिकूं विचारतासंता भी आचरै नाही है सो दुःखनिकरि तप्ताय-मान हूवा संता घणों काल संसारमें भ्रमण करै है।

आगें कहै हैं जो कैसे पुरुषके संवर हो है—

जो पुण विसयविरत्तो अप्पाणं सव्वदा वि संवरई।
मणहरविसयेहिंतो (?)तस्स फुडं संवरो होदि ॥१०१॥

भाषार्थ—जो मुनि इन्द्रियनके विषयनितैं विरक्त हूवा संता मनकूं प्यारे जे विषय, तिनितैं आत्माको सदाकाल नि-श्चयतैं संवररूप करै है ताके प्रगटपणैं संवर होय है. भावार्थ इन्द्रिय मनकूं विषयनितैं रोकै अपने शुद्ध स्वरूपविषैं रमावै ताके संवर होय।

दोहा.

गुप्ति समिति वृष भावना, जयन परीसहकार।
चारित धारै संग तजि; सो मुनि संवरधार ॥ ८ ॥

इति संवरानुप्रेक्षा समाप्ता ॥ ८ ॥

अथ निर्जरानुप्रेक्षा लिख्यते।

बारसविहेण तवसा णियाणरहियस्स णिज्जरा होदि।
वेरग्गभावणादो णिरहंकारस्स णाणिस्स ॥ १०२ ॥

भावार्थ—जो ज्ञानी होय ताकै बारह प्रकार तपकरि कर्मनिकी निर्जरा होय है कैसे ज्ञानीकै होय ? जो निदान कहिये इन्द्रियविषयनिकी इच्छा ताकरि रहित होय. बहुरि अहंकार अभिमानकरि रहित होय. बहुरि काहेतैं निर्जरा होय ? वैराग्यभावना जो संसार देहभोगतैं विरक्त परिणाम तातैं होय. भावार्थ—तपकरि निर्जरा होय सो ज्ञानसहित तप करे ताकै होय. अज्ञानसहित विपर्यय तप करै तामें हिंसादिक होय, ऐसे तपतैं उलटा कर्मका बंध होय है. बहुरि तपकरि मदकरै परकूं न्यून गिणै, कोई पूजादिक न करै, तासूं क्रोध करै ऐसे तपतैं बंध ही होय. गर्वरहित तपतैं निर्जरा होय. बहुरि तपकरि या लोक परलोकविषै ख्याति लाभ पूजा इन्द्रियनिके विषय भोग चाहै, ताकै बंध ही होय. निदानरहित तपतैं निर्जरा होय. बहुरि संसार देहभोगविषै आसक्त होइ तप करै, ताका आशय शुद्ध होय नाही, ताकै निर्जरा न होय. वैराग्यभावनाहीतैं निर्जरा होय है ऐसा जानना।

आगैं निर्जरा कहा कहिये सो कहै हैं,—

सव्वेसिं कम्माणं सत्तिविवाओ हवेइ अणुभाओ ।
तदणंतरं तु सडणं कम्माणं णिज्जरा जाण ॥ १०२ ॥

भाषार्थ—समस्त जे ज्ञानावरणादिक अष्टकर्म तिनकी शक्ति कहिये फल देनेकी सामर्थ्य, ताका विपाक कहिये पकना, उदय होना, ताकूं अनुभाग कहिये, सो उदय आयकें अनंतर ही ताका सटन कहिये झडना क्षरना होय ताकूं

कर्मकी निर्जरा हे भव्य तू जाणि. भावार्थ—कर्म उदय होय खिर जाय ताकूं निर्जरा कहिये, सो यह निर्जरा दो प्रकार है सो ही कहै हैं—

सा पुण दुविहा णेया सकालपत्ता तवेण कयमाणा ।
चादुगदीणं पढमा वयजुत्ताणं हवे विदिया ॥१०४॥

भाषार्थ—सो पूर्वोक्त निर्जरा दोय प्रकार है. एक तो स्वकालप्राप्त, एक तपकरि, करी हुई होय. तामें पहिली स्वकालप्राप्त निर्जरा तो चारही गतिके जीवनिकै होय है. बहुरि व्रतकरि युक्त हैं तिनकै दूसरी तपकरि करी हुई होय है. भावार्थ—निर्जरा दोय प्रकार है. तहां जो कर्मस्थिति पूरी करि उदय होय रस देकरि खिरै सो तो सविपाक कहिये. यह निर्जरा तो सर्व ही जीवनिकै होय है. बहुरि तपकरि कर्म विना स्थिति पूरी भये ही पकै, क्षरि जाय, ताकूं अविपाक ऐसा भी नाम कहिये है, सो यह व्रतधारीनिकै होय है ।

आगें निर्जरा बधती काहेतैं होय सो कहै हैं—

उवसमभावतवाणं जह जह वड्ढी हवेइ साहूणं ।
तह तह णिज्जर वड्ढी विसेसदो धम्मसुक्कादो १०५

भाषार्थ—मुनिनिकै जैसें २ उपशमभाव तथा तपकी बधवारी होय तैसें २ निर्जराकी बधवारी होय है. बहुरि धर्मध्यान शुक्लध्यानके विशेषतैं बधवारी होय है ।

आगें इस वृद्धिके स्थान कहते हैं—

मिच्छादो सद्दिट्ठी असंखगुणिकम्मणिज्जरा होदि।
तत्तो अणुवयधारी तत्तो य महव्वई णाणी ॥ १०६॥
पढमकसायचउण्हं विजोजओ तह य खवयसीलो य
दंसणमोहतियस्स य तत्तो उपसमगचत्तारि ॥१०७॥
खवगो य खीणमोहो सजोइणाहो तहा अजोईया।
एदे उवरिं उवरिं असंखगुणकम्मणिज्जरया ॥१०८॥

भावार्थ—प्रथमोपशम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिविषैं करणत्रयवर्ती विशुद्ध परिणामयुक्त मिथ्यादृष्टिकै जो निर्जरा होय है तातैं असंयत सम्यग्दृष्टिकै असंख्यातगुणी निर्जरा होय है. यातैं देशव्रती श्रावककै असंख्यात गुणी होय है. यातैं महाव्रती मुनिनिकै असंख्यात गुणी होय है. यातैं अनंतानुबंधी कषायका विसंयोजन कहिये अप्रत्याख्यानादिकरूप परिणमावना ताकै असंख्यात गुणी होय है. यातैं दर्शनमोहका क्षय करनेवालेकै असंख्यातगुणी होय है. यातैं उपशम श्रेणीवाले तीन गुणस्थानविषैं असंख्यात गुणी होय है. यातैं उपशांत मोह ग्यारहमां गुणस्थानवालेके असंख्यातगुणी होय है. यातैं क्षपकश्रेणीवाले तीन गुणस्थानविषै असंख्यात गुणी होय है. यातैं क्षीणमोह बारहमां गुणस्थानविषै असंख्यातगुणी होय है. यातैं सयोग केवलीकै असंख्यातगुणी होय है. यातैं अयोगकेवलीकै असंख्यातगुणी होय है. ऊपरि ऊपरि

असंख्यात गुणकार है. याहीतैं याकूं गुणश्रेणी निर्जरा कहिये है।

आगैं गुणकाररहित अधिकरूप निर्जरा जातैं होय सो कहै हैं—

जो वि सहदि दुव्वयणं साहम्मियहीलणं च उवसग्गं
जिणऊण कसायरिउं तस्स हवे णिज्जरा विउला १०९

भाषार्थ—जो मुनि दुर्वचन सहै तथा साधर्मी जे अन्य-मुनि आदिक तिनकरि कीया अनादर सहै तथा देवादिक-निकरि कीया उपसर्ग सहै कषायरूप वैरीनिकूं जीतकरि ऐसै करै. ताकै विपुल कहिये विस्ताररूप वडी निर्जरा होय. भावार्थ—कोई कुवचन कहै तौ तासूं कषाय न करै तथा आ-पकूं अतीचारादिक लागै तब आचार्यादि कठोर वचन कहि प्रायश्चित्त दें निरादर करैं ताकूं निकषायपणै सहै. तथा कोई उपसर्ग करै तासूं कषाय न करै ताकैं वडी निर्जरा होय है।

रिणमोयणुव्व मण्णइ जो उवसग्गं परीसहं तिव्वं।
पावफलं मे एदे मया वि यं संचिदं पुव्वं ॥ ११० ॥

भाषार्थ—जो मुनि उपसर्ग तथा तीव्र परिषहकूं ऐसा मानै जो मैं पूर्वजन्ममैं पापका संचै कियाथा ताका यह फल है सो भोगना. यामैं व्याकुल न होना. जैसे काहूका करज काढ्या होय सो पैलो मांगै, तब देना. यामैं व्याकुलता कहा? ऐसै मानै ताकै निर्जरा वहुत होय है।

जो चिंतेइ सरीरं ममत्तजणयं विणस्सरं असुइं ।
दंसणणाणचरित्तं सुहजणयं णिम्मलं णिच्चं ॥ १११ ॥

भाषार्थ—जो मुनि या शरीरकूं ममत्व मोहका उपजावनहारा तथा विनाशीक तथा अपवित्र मानैं, ताकै निर्जरा बहुत होय. भावार्थ—शरीरकूं मोहका कारन अथिर अशुचि मानैं तब याका सोच न रहै. अपना स्वरूपमैं लागै, तब निर्जरा होय ही होय ।

अप्पाणं जो णिंदइ गुणवंताणं करेदि बहुमाणं ।
मणइंदियाण विजई स सरूवपरायणो होदि ११२

भाषार्थ—जो साधु अपने स्वरूपविषै तत्पर होय करि अपने किये दुष्कृतकी निंदा करै. बहुरि गुणवान पुरुषनिका प्रत्यक्ष परोक्ष बडा आदर करै. बहुरि अपना मन इंद्रियनिका जीतनहारा वश करनहारा होय ताकै निर्जरा बहुत होय. भावार्थ—मिथ्यात्वादि दोषनिका निरादर करै तब वे काहेकूं रहैं. झडिही पडैं ॥

तस्स य सहलो जम्मो तस्स वि पावस्स णिज्जरा होदि
तस्स वि पुण्णं वड्ढइ तस्स य सोक्खं परो होदि ११३

भाषार्थ—जो साधु ऐसैं पूर्वोक्त प्रकार निर्जराके कारणनिविषै प्रवर्तैं हैं, ताहीका जन्म सफल है. बहुरि तिसहीकै पाप कर्मकी निर्जरा होय है, पुण्यकर्मका अनुभाग बधै है. भावार्थ—जो निर्जराका कारणनिविषै प्रवर्त्तै, ताकै पाप

नाश होय, पुण्यकी वृद्धि होय- स्वर्गादिकके सुख भोग मोक्ष कूं प्राप्त होय ।

आगें उत्कृष्ट निर्जरा कहकरि निर्जराका कथनकूं पूरण करै हैं—

जो समसुक्खणिलीणो वारं वारं सरेइ अप्पाणं ।
इंदियकसायविजई तस्स हवे णिज्जरा परमा ॥ ११४॥

भाषार्थ-जो मुनि, वीतराग भावरूप सुख, याहीका नाम परम चारित्र है सो याविषैं तौ लीन कहिये तन्मय होय बारवार आतमाकूं सुमिरै ध्यावै. बहुरि इन्द्रियनिका जीतन हारा होय, ताकै उत्कृष्ट निर्जरा होय है. भावार्थ—इन्द्रियनिका कषायनिका निग्रहकरि परम वीतराग भावरूप आत्मध्यानविषैं लीन होय ताकैं उत्कृष्ट निर्जरा होय ।

दोहा

पूरव बांधे कर्म जे, क्षरैं तपोबल पाय ।
सो निर्जरा कहाय है, धारैं ते शिव जांय ॥ ९ ॥

इति निर्जरानुप्रेक्षा समाप्ता ॥ ९ ॥

अथ लोकानुप्रेक्षा लिख्यते.

आगें लोकानुप्रेक्षाका वर्णन करिये है. तामें प्रथमही लोकका आकारादिक कहैंगे. तहां किछू गणित प्रयोजनकारी जाणि संक्षेपताकरि कहिये है । भावार्थ—गणितकौं अन्य ग्रंथनिके अनुसार लिखिये है. तहां प्रथम तौ परिकर्माष्टक है

तामें संकलन कहिये जोड देना जैसे आठ वा सातका जोड दिया पंधरा होय. बहुरि व्यवकलन कहिये बाकी काढना जैसे आठमें तीन घटाये पांच रहैं. बहुरि गुणाकार जैसै आठकों सातकरि गुणे छप्पन होय. बहुरि आठकूं दोयका भाग दिये च्यारि पाये. बहुरि वर्ग कहिये दोयराशि बराबरकी गुणिये जेते होय तेते ताके वर्ग कहिये. जैसैं आठका वर्ग चौसठि. बहुरि वर्गमूल जैसैं चौसठिका वर्गमूल आठ बहुरि घन कहिये तीन राशि बराबरकी गुणे जो होय सो. जैसैं, आठका घन पांचसैबारा । बहुरि घनमूल जैसैं पाचसौ बाराका घनमूल आठ. ऐसैं परिकर्माष्टक जानना.

बहुरि त्रैराशिक है. जहां एक प्रमाणराशि, एक फलराशि ,एक इच्छा राशि. जैसैं दोय रुपयोंकी जिनस सोलह सेर आवै तो आठरुपयोंकी केती आवै. ऐसैं प्रमाणराशि दोय, फलराशि सोलह, इच्छाराशि आठ. तहां फलराशिकूं इच्छाकरि गुणैं एकसौ अठाईस होय. ताकूं प्रमाणराशि दोयका भाग दिये चौसठि सेर आवै. ऐसैं जानना. बहुरि क्षेत्रफलविषै जहां बरोबरिके खंड करिये ताकूं क्षेत्रफल कहिये. जैसैं खेतमें डोरी मापिये तब कचवांसी विसवांसी वीघा करियें ताकूं क्षेत्रफल संज्ञा है. जैसैं असीहाथकी डोरी होय ताकै वीस गट्टा कहिये च्यारि हाथका एक गट्टा, ऐसैं खेतमैं एक डोरी लांबा चौडा खेत होय ताकै च्यारि हाथके लांबे चौडे खंड कीजिये, तब वीसकं वीस गुणा किये च्यारिसै भये.

सोई कचवांसी भई. याकै वीस विसवे भये. ताका एक वीघा भया. ऐसैं ही जहां चौखूंटा तिखूंटा गोल आदि खेत होय, ताका वरावरिका खंडकरि मापि क्षेत्रफल ल्याइये है. तैसैं ही लोकका क्षेत्रकूं योजनादिककी संख्याकरि जैसा क्षेत्र होय तैसा विधानकरि क्षेत्रफल ल्यावनेका विधान गणित शास्त्रतैं जानना. इहां लोकके क्षेत्रविषै तथा द्रव्यनिकी गणनाविषै अलौकिक गणित इकईस हैं. तथा उपमागणित आठ हैं. तहां संख्यातके तीन भेद—जघन्य मध्यम उत्कृष्ट. असंख्यातके नव भेद, तामैं परीतासंख्यात जघन्य मध्य, उत्कृष्ट, युक्तासंख्यात—जघन्य मध्य उत्कृष्ट. असंख्यातासंख्यात जघन्य, मध्य, उत्कृष्ट ऐसैं नौ भये. बहुरि अनन्तके नवभेद, परीतानन्त, युक्तानंत, अनंतानंत, ताके जघन्य मध्य उत्कृष्ट करि नव ऐसें इकईस। तहां जघन्य परीत असंख्यात ल्यावनेके अर्थ लाख लाख योजनके जंबूद्वीपप्रमाण व्यासवाले हजार हजार योजन ऊंडे च्यारि कुंड करिये. एकका नाम अनवस्था, दूजा शलाका, तीजा प्रतिशलाका, चौथा महाशलाका. तिनमैंसूं अनवस्था कुंडकूं सिरस्यूंतैं सिघाऊं भरिये. तिसमैं छियालीस अंक प्रमाण सिरस्यूं मावै. तिनकूं संकल्प मात्र ले चालिये. एक द्वीपमैं एक समुद्रमैं ऐसैं गेरते जाइये. तहां वे सिरस्यूं वीतैं तिस द्वीप वा समुद्रकी सूची प्रमाण अनवस्थाकुंड कीजे. तामैं सिरस्यूं भरिये बहुरि शलाका कुंडमैं एक सिरस्यूं अन्य ल्याय गेरिये बहुरि

तैसैं ही तिस दूजे अनवस्था कुण्डकी एक सिरस्यूं एक द्वीपमें एक समुद्रमें गेरते जाइये. ऐसैं करतैं तिस अनवस्था कुण्डकी सिरस्यूं जहां बीतै, तहां तिस द्वीप वा समुद्रकी सूची प्रमाण फेर अनवस्था कुंडकरि तैसैं ही सिरस्यूं भरिये. बहुरि एक सिरस्यूं शलाका कुण्डमें अन्य ल्याय गेरिये ऐसैं करतैं छियालीस अंक प्रमाण अनवस्था कुण्ड हो चुकैं, तब एक शलाका कुण्ड भरै, तब एक सिरस्यूं प्रतिशलाका कुण्डमें गेरिये. तैसैंही अनवस्था होता जाय, शलाका होता जाय. ऐसैं करतैं छियालीस अंक प्रमाण शलाका कुंडभरि चुकै, तब एक प्रतिशलाका भरै. ऐसैं ही अनवस्था कुंड होता जाय शलाका भरते जांय प्रति शलाका भरते जांय, तब छिआलीस अंक प्रमाण प्रतिशलाका कुंड भरि चुकैं तब एक महाशलाका कुंड भरै. ऐसैं करतै छिआलीस अंकनिके घन प्रमाण अनवस्था कुण्ड भये. तिनिमैं अंतका अनवस्था जिस द्वीप तथा समुद्रकी सूची प्रमाण बण्या तामें जेती सिरस्यूं मावै तेता प्रमाण जघन्य परीतासंख्यातका है. यामें एक सिरस्यूं घटाये उत्कृष्टसंख्यात कहिये. दोय सिरस्यूं प्रमाण जघन्य संख्यात कहिये, बीचके सर्व मध्य संख्यातके भेद हैं. बहुरि तिस जघन्य परीतासंख्यातकी सिरस्यूंकी राशिकूं एक एक बखेरि एक एक पर तिसही राशिकूं थापि परस्पर गुणतां अंतमें जो राशि निपजै, ताकूं जघन्य युक्तासंख्यात कहिये. यामें एक रूप घटाये उत्कृष्टपरीतासंख्यात कहिये, मध्यके

नाना भेद जानने. बहुरि जघन्य युक्तासंख्यातकूं जघन्य-युक्तासंख्यातकरि एकबार परस्पर गुणनेतैं जो परिमाण आवै, सो जघन्य असंख्यातासंख्यात जानने. यामैं एक घटाये उत्कृष्ट युक्तासंख्यात होय है. मध्य युक्त असंख्यात बीचके नाना भेद जानने।

अब इस जघन्य असंख्यातासंख्यातप्रमाण तीन राशि करनी. एक शलाका एक विरलन एक देय. तहां विरलन राशिकूं बखेरि एक एक जुदा जुदा करना, एक एककै ऊपरि एक एक देय राशि धरना तिनकूं परस्पर गुणिये जब सर्व गुणकार होय चुकै तब एक रूप शलाका राशिमैंसूं घटावना. बहुरि जो राशि भया तिस प्रमाण विरलन देय राशि करना, तहां विरलनकूं बखेरि एक एककूं जुदा करि एक एक परि देय राशि देना, तिनकूं परस्पर गुणन करना जो राशि निपजै तब एक शलाकाराशिमैंसूं फेरि घटावना. बहुरि जो राशि निपज्या ताकै परिमाण विरलन देय राशि करना। विरलनकूं बखेरि देयकूं एक एक पर स्थापि परस्पर गुणन करना, एकरूप शलाकामैंसूं घटावना. ऐसैं विरलन देय राशिकरि गुणाकार करता जाना, शलाकामैंसूं घटाता जाना. जब शलाका राशि निःशेष हो जाय तब जो किछू परिमाण आया सो मध्य असंख्यातासंख्यातका भेद है. बहुरि तितने तितने परिमाण शलाका, विरलन, देय, तीन राशि फेरि करना। तिनकूं पूर्ववत् करतैं शलाका राशि निःशेष होय जाय, तब

जो महाराशि परिमाण आया सो भी मध्य असंख्यातासंख्या-तका भेद है. बहुरि तिस राशि परिमाणके फेरि शलाका विरलन देय राशि करना तिनकूं पूर्वोक्त विधानकरि गुणा-नेतैं जो महाराशि भया सो यह भी मध्य असंख्यातासंख्या-तका भेद भया. अर शलाकात्रयनिष्ठापन एक वार भया. बहुरि इस राशिमैं असंख्यातासंख्यात प्रमाण छह राशि और मिलावणी। लोकप्रमाण धर्म्म द्रव्यके प्रदेश, अधर्म्म द्र-व्यके प्रदेश, एक जीवके प्रदेश, लोकाकाशके प्रदेश बहुरि तिस लोकतैं असंख्यातगुणे अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति जीवनिका परिमाण, बहुरि तिसतैं असंख्यातगुणे सप्रति-ष्ठित प्रत्येकवनस्पति जीवोंका परिमाण ये छह राशि मि-लाय पूर्वोक्त प्रकार शलाका विरलन देयराशिके विधानकरि शलाकात्रयनिष्ठापन करना, तब जो महाराशि निपज्या सो भी मध्य असंख्यातासंख्यातका भेद है. तामैं च्यारि राशि और मिलावने—कल्प काल वीस कोड़ाकोडी सागरके समय बहुरि स्थितिबंधकूं कारण कषायनिके स्थान, अनुभाग बं-धकूं कारण कषायनिके स्थान, योगनिके अविभाग प्रति-च्छेद, ऐसी च्यारि राशि मिलाय अर पूर्वोक्त विधानकरि शलाकात्रय निष्ठापन करना ऐसैं करतैं जो परिमाण होय सो जघन्यपरीतानन्तराशि भया. यामैसूं एक रूप घटाये उ-त्कृष्ट असंख्यातासंख्यात होय है. बीचिमैं मध्यके नाना भेद हैं. बहुरि जघन्य परीतानन्त राशि विरलनकरि एक एक

थापि एक एक जघन्य परीतानन्त स्थापनकरि परस्पर गुणें जो परिमाण होय सो जघन्ययुक्तानन्त जानना. तामैं एक घटाये उत्कृष्ट परीतानन्त है. मध्य परीतानन्तके बीचिमैं नाना भेद हैं. बहुरि जघन्य युक्तानंतकूं जघन्य युक्तानन्तकरि एकवार परस्पर गुणे जघन्य अनंतानंत है. यामैंसूं एक घटाये उत्कृष्ट युक्तानंत होय है. मध्य युक्तानन्तके बीचमैं नाना भेद हैं. अब उत्कृष्ट अनन्तानंतकूं ल्यावनेका उपाय कहै हैं. तहां जघन्य अनंतानंत परिमाण शलाका विरलन देय. इन तीन राशिकरि अनुक्रमतैं पहलैं कह्या तैसैं शलाकात्रयनिष्ठापन करै. तब मध्य अनंतानंतका भेद रूप राशि सो निपजै है. तामैं छह राशि मिलावै सिद्धराशि, निगोदराशि, प्रत्येक वनस्पतिसहित निगोदराशि, पुद्गलराशि, कालके समय, आकाशके प्रदेश ये छह राशि मध्य अनन्तानंतके भेदरूप मिलाय शलाकात्रयनिष्ठापन पूर्ववत् विधानकरि करना तब मध्य अनन्तानन्तका भेद रूप राशि निपजै, तामैं फेरि धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्यके अगुरुलघु गुणके अविभागप्रतिच्छेद मिलाय जो महापरिमाण राशि भया. ताकूं फेरि पूर्वोक्त विधानकरि शलाकात्रय निष्ठापन करिये तब जो कोई मध्य अनन्तानंतका भेदरूप राशि भया, ताकूं केवलज्ञानके अविभागप्रतिच्छेदनिका समूह परिमाणविषै घटाय फेरि मिलाइये तब केवल ज्ञानके अविभागप्रतिच्छेद रूप उत्कृष्ट अनंतानंत परिमाण राशि होय है। बहुरि उपमा

प्रमाण आठ प्रकार करि कह्या है. पल्य, सागर, सूच्यंगुल, प्रतरांगुल, घनांगुल, जगत्श्रेणी, जगतप्रतर, जगतघन. तहां पल्य तीन प्रकार है—व्यवहारपल्य, उद्धारपल्य, अद्धापल्य. तहां व्यवहारपल्य तौ रोमनिकी संख्या मात्रही है. बहुरि उद्धारपल्यकरि द्वीपसमुद्रनिकी संख्या गणिये हैं. बहुरि अद्धापल्यकरि कर्मनिकी स्थिति देवादिककी आयुस्थिति गणिये हैं. अब इनका परिमाण जाननेकूं परिभाषा कहै हैं. तहां अनन्त पुद्गलके परमाणूनिका स्कन्ध सो एक अवसन्नासन्न नाम है. तातें आठ आठ गुणो क्रमकरि बारह स्थानक जानने. सन्नासन्न, तृटरेणु, त्रसरेणु, रथरेणु, उत्तमभोगभूमिका वालका अग्रभाग, मध्यम भोगभूमिका, जघन्य भोगभूमिका, कर्मभूमिका, लीख, सरसूं, यव, अंगुल ए बारह हैं. सो ऐसैं अंगुल भया सो उत्सेध अंगुल है. सो याकरि नारकी तिर्यंच देव मनुष्यनिके शरीरका प्रमाण वर्णन कीजिये है, अर देवनिके नगर मंदिर वर्णन कीजिये है. बहुरि उत्सेध अंगुलतैं पांचसै गुणा प्रमाणांगुल है. यातैं द्वीप समुद्र पर्वत आदिकनिका परिमाण वर्णन है. बहुरि आत्मांगुल जहां जैसा मनुष्यनिका होय तिस परिमाण जानना. बहुरि छह अंगुलका पाद होय, दोय पादका एक बिलस्त होय, दोय बिलस्तका एक हाथ होय, दोय हाथका एक भीष होय, दोय भीषका एक धनुष होय, दोय हजार धनुषका एक कोश होय, च्यारि कोशका एक योजन होय, सो यहां प्रमाणांगुलकरि निपज्या ऐसा एक योजन प्रमाण

उंडा चौडा एक खाडा करना, ताकूं उत्तम भोगभूमिविषै उ-
पज्या जो जनमतैं लगाय सात दिन ताईंका मींढाका बालका
अग्रभाग तिनिकरि भूमि समान अत्यन्त गाढा भरना, तामैं
रोम पैंतालीस अंकनि परिमाण मावै, तिनकूं एक एक रोम
खंडकूं सौ सौ वरस गये काढै. जित्ते वरस होंय सो व्यव-
हार पल्य है. तिनि वर्षनिके असंख्यात समय होय हैं. ब-
हुरि तिनि रोमके एक एकके असंख्यात कोडि वर्षके समय
होंय, तेते तेते खंड कीजिये सो उद्धार पल्यके रोम खंड होंय,
तेते समय उद्धार पल्यके हैं।

बहुरि इन उद्धार पल्यके एक एक रोम खंडके असंख्यात
वर्षके जेते समय होंय तितने खंड कीये अद्धापल्यके रोमखण्ड हो
हैं ताके समय भी इतने ही हैं. बहुरि दश कोडाकोडी पल्यका
एक सागर होय है. बहुरि एक प्रमाणांगुल प्रमाण लंबा ए-
कप्रदेश प्रमाण चौडा उंचा क्षेत्रकूं सूच्यंगुल कहिये है. याके
प्रदेश अद्धापल्यके अर्द्ध छेदनिकूं विरलनकरि एक एक अ-
द्धापल्य तिनपरि स्थापि परस्पर गुणाये जो परिमाण आवै
तेते याके प्रदेश हैं. बहुरि याका वर्गकूं प्रतरांगुल कहिये.
बहुरि सूच्यंगुलके घनकूं घनांगुल कहिये. एक अंगुल चौडा
तेताही लांबा अर ऊंचा ताकूं घन अंगुल कहिये. बहुरि
सात राजू लांबा एक प्रदेश प्रमाण चौडा ऊंचा क्षेत्रकूं ज-
गतश्रेणी कहिये. याकी उत्पत्ति ऐसैं जो अद्धापल्यके अर्द्ध
छेदनिका असंख्यातवां भागका प्रमाणकूं विरलनकरि एक
एक परि घनांगुल देय परस्पर गुणें जो राशि निपजै सो

जगतश्रेणी है. बहुरि जगतश्रेणीका वर्ग सो जगतप्रतर कहिये बहुरि जगतश्रेणीका घन सो जगतघन कहिये. सात राजु चौडा लांबा ऊंचाकूं जगतघन कहिये. यह लोकके प्रदेशनिका प्रमाण है. सो भी मध्य असंख्यातका भेद है. ऐसें ए गणित संक्षेप करि कही. बहुरि गणितका कथन विशेषकरि गोम्मटसार त्रिलोकसारतैं जानना. द्रव्यमें तो सूक्ष्म पुद्गल परमाणु, क्षेत्रमें आकाशके प्रदेश; कालमें समय, भावमें अविभागप्रतिच्छेद, इन च्यारूहीकूं परस्पर प्रमाण संज्ञा है. सो घाटिसूं घाटि तौ ये हैं अर बाधिसूं बाधि द्रव्यमें तौ महास्कन्ध, क्षेत्रमें आकाश, कालमें तीनू काल, भावमें केवलज्ञान, ऐसा जानना. बहुरि कालमें एक आवलीके जघन्य युक्तासंख्यात समय हैं. अर असंख्यात आवलीका मुहूर्त है. तीस मुहूर्त्तका दिनराति है. तीस दिन रातिका एक मास है. बारह मासका एक वर्ष है. इत्यादि जानना ।

आगें प्रथम ही लोकाकाशका स्वरूप कहे हैं—

सव्वायासमणंतं तस्स य बहुमज्झिसंठियो लोओ ।
सो केण वि णेय कओ ण य धरिओ हरिहरादीहिं ॥

भाषार्थ—आकाश द्रव्य है ताका क्षेत्र प्रदेश अनन्त है. ताका बहुमध्यदेश कहिये बीचही बीचका क्षेत्र, ताविषै तिष्ठै ऐसा लोक है. सो काहू करि कीया नाहीं है तथा कोई हरिहरादिकरि धार्या, वा राख्या नाहीं है. भावार्थ—केई अन्यमतमें कहै हैं जो लोककी रचना ब्रह्मा करै है. नारायण रक्षा

करै है. शिव संहार करै है. तथा काछिवा तथा शेष नाग धारया है. तथा प्रलय होय है, तब सर्वशून्य होय जाय है. ब्रह्मकी सत्ता मात्र रह जाय है. बहुरि ब्रह्मकी सत्तामेंसू सृष्टिकी रचना होय है. इत्यादि अनेक कल्पित कहै हैं. ताका निषेध इस सूत्रतैं जानना. लोक काहू करि कीया नाहीं. काहू करि धारया नाहीं. काहू करि विनसै नाहीं. जैसा है तैसा ही सर्वज्ञने देखा है सो वस्तु स्वरूप है।

आगें इस लोकविषै कहा है सो कहैं हैं—

अण्णोण्णपवेसेण य दव्वाणं अत्थणं भवे लोओ।
दव्वाणं णिच्चत्तो लोयस्स वि मुणह णिच्चत्तं ११६

भाषार्थ—जीवादिक द्रव्यनिका परस्पर एक क्षेत्रावगाहरूप प्रवेश कहिये मिलापरूप अवस्थान सो लोक है, जे द्रव्य हैं ते नित्य हैं. याहीतैं लोक भी नित्य है ऐसा जानहु. भावार्थ—षड्द्रव्यनिका समुदाय सो लोक है. ते द्रव्य नित्य हैं, तातैं लोक भी नित्य ही है।

आगें कोई तर्क करै जो नित्य है तो उपजै विनसै कौन है, ताका समाधानका सूत्र कहैं हैं—

परिणामसहावादो पडिसमयं परिणमंति दव्वाणि।
तेसिं परिणामादो लोयस्स वि मुणह परिणामं॥

भाषार्थ—या लोकमें छह द्रव्य हैं ते परिणामस्वभाव हैं तैं समय समय परिणमै हैं तिनके परिणामतैं लोककै भी

परिणाम जानहु. भावार्थ—द्रव्य हैं. ते परिणामी हैं. लोक है सो द्रव्यनिका समुदाय है यातैं द्रव्यनिकै परिणाम हैं सो लोककै भी परिणाम आया. कोई पूछै परिणाम कहा? ताका उत्तर—परिणाम नाम पर्यायका है. जो एक अवस्था रूप द्रव्य था सो पलटि दूजी अवस्थारूप होना. जैसैं माटी पिंडअवस्थारूप थी सो पलटि करि घट बराया. ऐसैं परिणामका स्वरूप जानना. सो लोकका आकार तौ नित्य है. अर द्रव्यनिकी पर्याय पलटै है या अपेक्षा परिणाम कहिये है।

आगें या लोकका आकार तौ नित्य है. ऐसा धारि व्यासादि कहै हैं—

सत्तेक्कु पंच इक्का मूले मज्झे तहेव बंभंते।
लोयंते रज्जुओ पुव्वावरदो य वित्थारो ॥ ११८ ॥

भावार्थ—लोकका पूर्व पश्चिम दिशाविषै मूल कहिये नीचैं तौ सात राजू विस्तार है. बहुरि मध्य कहिये बीचि एक राजूका विस्तार है. बहुरि ऊपरि ब्रह्म स्वर्गके अंत पांच राजूका विस्तार है. बहुरि लोकका अन्तविषै एक राजूका विस्तार है. भावार्थ—लोक नीचले भागविषै पूर्व पश्चिमदिशाविषै सात राजू चौडा है. तहांतैं अनुक्रमतैं घटता घटता मध्य लोक एक राजू रह्या. पीछै ऊपरि अनुक्रमतैं बधता २ ब्रह्मस्वर्गताई पांच राजू चौडा भया. पीछैं घटतै घटतै अंतमें एक राजू रह्या. ऐसैं होतैं डयोढ मृदंग ऊभी धरिये तैसा आकार भया।

आगें दक्षिण उत्तर विस्तार वा ऊँचाईकूं कहै हैं—

दक्खिणउत्तरदो पुण सत्त वि रज्जू हवेदि सव्वत्थ ।
उड्ढो चउदसरज्जू सत्त वि रज्जूघणो लोओ ११९

भाषार्थ—लोक है सो दक्षिण उत्तर दिशाकूं सर्व ऊंचाई पर्यंत सात राजू विस्तार है. ऊंचा चौदह राजू है । वहुरि सात राजूका घनप्रमाण है. भावार्थ—दक्षिण उत्तरकूं सर्वत्र सात राजू चौडा है. ऊंचा चौधै राजू है. ऐसा लोकका घनफल करिये तब तीनसै तियालिस (३४३) राजू होय है. समान क्षेत्रखंडकरि एक राजू चौडा लांवा ऊंचा खंड करिये ताकूं घनफल कहिये ।

आगें ऊंचाईके भेद कहै हैं,—

मेरुस्स हिट्ठभाये सत्त वि रज्जू हवे अहोलोओ ।
उड्ढम्हि उड्ढलोओ मेरुसमो मज्झिमो लोओ ॥१२०॥

भाषार्थ—मेरुके नीचे भागविषै सात राजू अधोलोक है. ऊपरि सात राजू ऊर्ध्वलोक है. मेरुसमान मध्य लोक है. भावार्थ—मेरुके नीचें सात राजू अधोलोक. ऊपर सात राजू ऊर्ध्व लोक, बीचमें मेरुसमान लाख योजनका मध्यलोक है. ऐसें तीन लोकका विभाग जानना ।

आगें लोक शब्दका अर्थ कहै हैं,—

दीसंति जत्थ अत्था जीवादीया स भण्णदे लोओ ।
तस्स सिहरम्मि सिद्धा अंतविहीणा विरायंति ॥१२१

भाषार्थ—जहाँ जीव आदिक पदार्थ देखिये हैं सो लोक कहिये। ताके शिखर ऊपरि अनन्ते सिद्ध विराजै हैं. भावार्थ—'लोक' दर्शने नामा व्याकरणमें धातु है. ताकै आश्रयार्थविषै अकार प्रत्ययतैं लोक शब्द निपजै है. तातैं जामें जीवादिक द्रव्य देखिये. ताकूं लोक कहिये. बहुरि ताके ऊपरि अन्तविषै कर्म रहित शुद्धजीव अनन्त गुणनिकरि सहित अविनाशी अनंत विराजै हैं।

आगें या लोकविषै जीव आदि छह द्रव्य हैं तिनका वर्णन करै हैं, तहां प्रथम ही जीव द्रव्यकूं कहै हैं।

एइंदियेहिं भरिदो पंचपयारेहिं सव्वदो लोओ।
तसनाडीए वि तसा ण वाहिरा होंति सव्वत्थ १२२

भाषार्थ—यह लोक पृथ्वी अप् तेज वायु वनस्पति ऐसैं पंचप्रकार कायके धारक जे एकेंद्रिय जीव तिनकरि सर्वत्र भर्या है. बहुरि त्रस जीव त्रस नाडीविषै ही हैं. बाहिर नाहीं हैं। भावार्थ—जीव द्रव्य उपयोग लक्षणवाला समान परिणामकी अपेक्षा सामान्य करि एक है. तथापि वस्तु भिन्नप्रदेशकरि अपने २ स्वरूपकूं लीये न्यारे न्यारे अनन्ते हैं. तिनमें जे एकेंद्रिय हैं. ते तौ सर्व लोकमें है बहुरि वेन्द्रिय तेन्द्रिय चतुरिंद्रिय पंचेंद्रिय ऐसे त्रस हैं ते त्रस नाडी विषैही हैं।

आगें वादर सूक्ष्मादि भेद कहै हैं,—

पुण्णा वि वि जीवा हवंति साहारा

छविहा सुहमा जीवा लोयायासे वि सव्वत्थ १२३॥

भावार्थ—जे जीव आधारसहित हैं, ते तौ स्थूल कहिये वादर हैं. ते पर्याप्त हैं. बहुरि अपर्याप्त भी हैं। बहुरि जे लोकाकाशविषै सर्वत्र अन्य आधाररहित हैं ते जीव सूक्ष्म हैं ते छह प्रकार हैं।

आगें वादर सूक्ष्म कूंन कूंन हैं सो कहै हैं,—

पुढवीजलग्गिवाऊ चत्तारि वि होंति वायरा सुहमा।
साहारणपत्तेया वणप्फदी पंचमा दुविहा ॥ १२४॥

भावार्थ—पृथ्वी जल अग्नि वायु ये च्यारि तौ वादर भी हैं तथा सूक्ष्म भी हैं बहुरि पांचई वनस्पति है सो प्रत्येक साधारण भेद करि दोय प्रकार है।

आगें साधारण प्रत्येककैं सूक्ष्मपणाकूं कहै हैं,—

साहारणा वि दुविहा अणाइकाला य साइकाला य।
ते वि य वादरसुहमा सेसा पुण वायरा सव्वे १२५॥

भावार्थ—साधारण जीव दोय प्रकार हैं. अनादिकाला कहिये नित्य निगोद सादिकाला कहिये इतर निगोद ते दोऊं हू वादर भी हैं सूक्ष्म भी हैं बहुरि शेष कहिये प्रत्येक वनस्पती वा त्रस ते सर्व वादर ही हैं। भावार्थ—पूर्वैं कह्या जो सूक्ष्म छह प्रकार हैं ते पृथ्वी जल तेज वायु तौ पहली गाथा में कहे. बहुरि नित्य निगोद इतर निगोद ए दोय ऐसैं छह

प्रकार तौ सूक्ष्म जानने. बहुरि छह प्रकार तौ ए रहे अर अवशेष ते सर्व बादर जानने।

आगें साधारणका स्वरूप कहै हैं,—

साहारणाणि जेसिं आहारुस्सासकायआऊणि ।
ते साहारणजीवा णंताणंतप्पमाणाणं ॥ १२६ ॥

भावार्थ—जिन अनन्तानन्त प्रमाण जीवनकै आहार उच्छ्वास काय आयु साधारण कहिये समान हैं. ते साधारण जीव हैं । उक्तं च गोमट्टसारे—

"जत्थेक्कु मरइ जीवो तत्थ दु मरणं हवे अणंताणं
चंकमइ जत्थ एक्को चंकमणं तत्थ णंताणं"

भावार्थ—जहां एक साधारण जीव निगोदिया उपजै तहां ताकी साथ ही अनन्तानन्त उपजैं अर एक निगोद जीव मरै तांके साथ ही अनंतानन्तसमान आयुवाला मरै है. भावार्थ—एक जीव आहार करै तेई अनन्तानन्त जीवनिका आहार, एक जीव स्वासोस्वास ले सो ही अनन्तानन्त जीवनिका स्वासोस्वास, एक जीवका शरीर सोई अनन्तानन्तका शरीर, एक जीवका आयु सोही अनन्तानन्तका आयु ऐसैं समान है तातैं साधारण नाम जानना ।

आगें सूक्ष्म बादरका स्वरूप कहै हैं,—

ण य जेसिं पडिखलणं पुढवीतोएहिं अग्गिवाएहिं ।
ते जाण सुहुमकाया इयरा पुण थूलकाया य १२७

भाषार्थ—जिन जीवनिका पृथ्वी जल अग्नि पवन इन करि रुकना न होय ते जीव सूक्ष्म जानहु. बहुरि जे इन करि रुकैं ते बादर जानहु ।

आगें प्रत्येककूं वा त्रसकूं कहै हैं,—

पत्तेया वि य दुविहा णिगोदसहिदा तहेव रहिया य ।
दुविहा होंति तसा वि य वितिचउरक्खा तहेव पंचक्खा ।

भाषार्थ—प्रत्येक वनस्पती भी दोय प्रकार है. ते निगोदसहित हैं तैसैं ही निगोदरहित हैं. बहुरि त्रस भी दोय प्रकार हैं. वेन्द्रिय तेन्द्रिय चतुरिन्द्रिय ऐसैं तो विकलत्रय बहुरि तैसैं ही पंचेन्द्रिय हैं. भावार्थ—जिस वनस्पतीके आश्रय निगोद पाइये सो तो साधारण है, याकूं सप्रतिष्ठित भी कहिये. बहुरि जिसकै आश्रय निगोद नाहीं ताकूं प्रत्येक ही कहिये. याहीको अप्रतिष्ठित भी कहिये है. बहुरि वेन्द्रिय आदिककूं त्रस कहिये है. *

---

* मूलग्गपोरबीजा कंदा तह खंदबीज बीजरुहा ।
सम्मुच्छिमा य भणिया पत्तेयाणंतकाया य ॥ १ ॥

जो वनस्पति मूल अग्र पर्व कंद स्कंध बीजसे पैदा होती हैं तथा जो सम्मूर्च्छन हैं वे वनस्पतियां सप्रतिष्ठित हैं तथा अप्रतिष्ठित भी हैं । भावार्थ—बहुत सी वनस्पतियां मूलसे पैदा होती हैं जैसे अदरक, हलदी आदि । कई वनस्पति अग्र भागसे उत्पन्न होती हैं जैसे गुलाब ।

आगे पंचेंद्रियनिके भेद कहैं हैं।

पंचक्खा विय तिविहा जलथलआयासगामिणो तिरिय पत्तेयं ते दुविहा मणेण जुत्ता अजुत्ता य ॥ १२९ ॥

किसी वनस्पतिकी उत्पत्ति पर्व (पंगोली) से होती है जैसे ईख बेंत आदि। कोई वनस्पति कन्दसे उपजतीं हैं जैसे सूरण आदि। कई वनस्पति स्कन्धसे होती हैं जैसे ढाक। बहुत सी वनस्पति बीज से होती हैं जैसे चना गेहूं आदि। कई वनस्पति पृथ्वी जल आदिके सम्बन्धसे पैदा हो जाती हैं वे सम्मूर्च्छन हैं जैसे घास आदि। ये सभी वनस्पति सप्रतिष्ठित तथा अप्रतिष्ठित दोनों प्रकारकी हैं ॥ १ ॥

गूढसिरसंधिपव्वं समभंगमहीरुहं च छिण्णरुहं।
साहारणं सरीरं तव्विवरीयं च पत्तेयं ॥ २ ॥

जिन वनस्पतियोंके शिरा (तोरई आदि में) संधि (खापोंके चिन्ह खरबूजे आदि में) पर्व (पंगोली गन्ने आदि में) प्रगट न हों और जिनमें तन्तु पैदा न हुआ हो (भिंडी आदिमें) तथा जो काटने पर फिर बढ जांय वे सप्रतिष्ठित वनस्पति हैं इनसे उलटी अप्रतिष्ठित समझनी चाहिये ॥ २ ॥

मूले कंदे छल्ली पवालसालदलकुसुमफलबीजे।
समभंगे सदि णंता असमे सदि होंति पत्तेया ॥ ३ ॥

जिन १ अदरक आदि)

भाषार्थ–पञ्चेन्द्रिय तिर्यंच हैं ते जलचर थलचर नभचर ऐसैं तीन प्रकार हैं. बहुरि प्रत्येक मनकरि युक्त सैनी भी हैं तथा मनरहित असैनी भी हैं।

बहुरि इनके भेद कहे हैं,—

ते वि पुणो वि य दुविहा गब्भजजम्मा तहेव सम्मत्था
भोगभुवा गब्भभुवा थलयरणहगामिणो सण्णी १३०

भाषार्थ—ते छह प्रकार कहे जे तिर्यंच ते गर्भज भी हैं बहुरि सम्मूर्च्छन भी हैं बहुरि इनविषै जे भोगभूमिके तिर्यंच हैं ते थलचर नभचर ही हैं. जलचर नाहीं हैं बहुरि ते सैनी ही हैं असैनी नाही हैं।

आगें अठयाणवै जीव समासनिकूं तथा तिर्यंचके पिच्यासी भेदनिकूं कहै हैं—

कन्द (सूरण आदि) छाल, नई कोंपल, टहनी, फूल, फल, तथा बीज तोडने पर बराबर टूट जांय वे सप्रतिष्ठित प्रत्येक हैं तथा जो बराबर न टूटें वे अप्रतिष्ठित प्रत्येक हैं ॥ ३ ॥

कंदस्स व मूलस्स व सालाखंधस्स वा वि बहुलतरी।
छल्ली सा णंतजिया पत्तेयजिया तु तणुकदरी ॥ ४ ॥

जिन वनस्पतियोंके कन्द, मूल, टहनी, स्कंधकी छाल मोटी है उन्हें सप्रतिष्ठित प्रत्येक (अनंत जीवोंका स्थान) जानना चाहिये और जिनकी छाल पतली हो उन्हें अप्रतिष्ठित प्रत्येक मानना चाहिये ॥ ४ ॥

अट्ठ वि गब्भज दुविहा तिविहा सम्मुच्छिणो वि तेवीसा

इंदि पणसीदी भेया सव्वेसिं होंति तिरियाणं १३१

भावार्थ—सर्व ही तिर्यंचनिके पिच्यासी भेद हैं. तहां गर्भजके आठ ते तौ पर्य्याप्त अपर्य्याप्तकरि सोलह भये. बहुरि सम्मूर्च्छनके तेईस भेद, ते पर्य्याप्त अपर्य्याप्त लब्ध्यपर्याप्तकरि गुणहत्तरि भये ऐसें पिच्यासी हैं. भावार्थ—पूर्वै कहे जे कर्मभूमिके गर्भज जलचर थलचर नभचर ते सैनी असैनी करि छह भेद, बहुरि भोगभूमिके थलचर नभचर सैनी थे आठही पर्य्याप्त अपर्याप्त भेदकरि सोलह, बहुरि सम्मूर्च्छेनके पृथ्वी अप् तेज वायु नित्य निगोदके सूक्ष्म वादरकरि बारह बहुरि वनस्पती सप्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित ऐसें चौदह तौ एकेन्द्रिय भेद बहुरि विकलत्रय तीन, बहुरि पंचेन्द्रिय कर्मभूमिके जलचर थलचर नभचर सैनी असैनी करि छह भेद, ऐसें सब मिलि तेईस. ताके पर्य्याप्त अपर्य्याप्त लब्ध्यपर्य्याप्तकरि गुणहत्तरि ऐसें पच्यासी होय हैं ॥ १३१ ॥

आगें मनुष्यनिके भेद कहै हैं—

अज्जव मिलेच्छखंडे भोगभूमीसु वि कुभोगभूमीसु

मणुआ हवंति दुविहा णिव्विअपुण्णगा पुण्णा ॥

भावार्थ—मनुष्य. आर्यखंडविषै म्लेच्छखंड विषैं तथा भोगभूमिविषैं तथा कुभोगभूमिविषै हैं ते च्यारि ही पर्याप्त निर्वृत्ति अपर्याप्तकरि आठ भेद भये ॥ १३२ ॥

सम्मुच्छणा मणुस्सा अज्जवखंडेसु होंति णियमेण
ते पुण लद्धिअपुण्णा णारय देवा वि ते दुविहा १३३

भाषार्थ—सम्मूर्च्छन मनुष्य आर्यखंडविषै ही नियम करि होय हैं. ते लब्ध्यपर्याप्तक ही हैं. वहुरि नारक तथा देव ते पर्याप्त तथा निर्वृत्यपर्याप्तके भेद करि च्यारि भेद हैं. ऐसैं तिर्यंचके भेद पिच्यासी, मनुष्यके नव नारक देवके च्यारि, सर्व मिलि अठयाणवैं भेद भये. वहुतनिको समानता करि भेले करि कहिये संक्षेप करि संग्रह करि कहिये ताकूं समास कहिये है. सो यहां वहुत जीवनिका संक्षेप करि कहना सो जीवसमास जानना. ऐसैं जीव समास कहे।

आगें पर्याप्तिका वर्णन करै हैं,—

आहारसरीरिंदियणिस्सासुस्सासहासमणसाण।
परिणइ वावारेसु य जाओ छच्चेव सत्तीओ ॥ १३४ ॥

भाषार्थ—जो आहार शरीर इन्द्रिय स्वासोस्वास भाषा मन इनका परिणमनकी प्रवृत्तिविषैं सामर्थ्य सो छह प्रकार है. भावार्थ—आत्माकै यथायोग्य कर्मका उदय होतैं आहारादिक ग्रहणकी शक्तिका होना सो शक्तिरूप पर्याप्ति कहिये सो छह प्रकार है।

आगें शक्तिका कार्य कहै हैं।

तस्सेव कारणाणं पुग्गलखंधाण जा हु णिप्पत्ति।
सा पज्जत्ती भण्णदि छब्भेया जिणवरिंदेहिं॥ १३५ ॥

भाषार्थ—तिस शक्ति प्रवृत्तिकी पूर्णताकूं कारण जे पुद्गलके स्कंध तिनकी प्रगटपणें निष्पत्ति कहिये पूर्णता होना ताकूं पर्याप्ति ऐसा जिनेन्द्रदेवने कह्या है।

आगें पर्याप्त निर्वृत्यपर्याप्तके कालकूं कहै हैं,—

पंज्जत्तिं गिह्णंतो मणुपज्जत्तिं ण जाव समणोदि।
ता णिव्वतिअपुण्णो मणुपुण्णो भण्णदे पुण्णो ॥१३६॥

भाषार्थ—यह जीव पर्याप्तिकूं ग्रहण करता संता जेतैं मनःपर्याप्तिकूं पूर्ण न करै तेतैं निर्वृत्यपर्याप्त कहिये. बहुरि जब मनःपर्याप्ति पूर्ण होय तब पर्याप्त कहिये. भावार्थ—इहां सैनी पंचेन्द्रिय जीवकी अपेक्षा मनमें धारि ऐसैं कथन किया है. अन्य ग्रन्थनिमें जेतैं शरीर पर्याप्ति पूर्ण न होय तेतैं निर्वृत्यपर्याप्त है. ऐसैं कथन सर्व जीवनिका कह्या है।

आगें लब्ध्यपर्याप्तका स्वरूप कहै हैं,—

उस्सासट्ठारसमे भागे जो मरदि ण य समाणेदि।
एका वि य पज्जत्ती लद्धिअपुण्णो हवे सो दु ॥१३७॥

भाषार्थ—जो जीव स्वासके अठारवें भागमें मरै एक भी पर्याप्ति पूर्ण न करै सो जीव लब्ध्यपर्याप्तिक कहिये।

---

१ पज्जत्तस्स य उदये णिय णिय पज्जत्ति णिट्ठिदो होदि।
जाव सरीरमपुण्णं णिव्वत्तियपुण्णगो ताव ॥ १ ॥
तिण्णसया छत्तीसा छावट्ठीसहस्सगाणि मरणानि।
अंतोमुहुत्तकाले तावदिया चेव खुद्दभवा ॥ २ ॥
सीदीसट्ठी तालं वियले ... । होंति पंचक्खे।

आगें एकेन्द्रियादि जीवनिकै पर्याप्तिनिकी संख्या कहै हैं,

लद्धिअपुण्णो पुण्णं पज्जत्ती एयक्खवियलसण्णीणं।
चदु पण छक्कं कमसो पज्जत्तीए वियाणेह॥ १३८॥

भाषार्थ—एकेन्द्रियकै च्यारि विकलत्रयकै पांच, सैनी पंचेन्द्रियकै छह ऐसैं क्रमतैं पर्याप्ति जाणूं बहुरि लब्ध्यपर्याप्तक है सो अपर्याप्तक है. याकै पर्याप्ति नाहीं. भावार्थ—एकेन्द्रियादिककै क्रमतैं पर्याप्ति कहे. इहां असैनीका नाम लीया नहीं तहां तौ सैनीकै छह असैनीकै पांच जानने. बहुरि निर्वृत्यपर्याप्त अवस्था कीये ही हैं पूर्ण होसी ही तातैं जो संख्या कही है सो ही है. बहुरि लब्ध्यपर्याप्त यद्यपि ग्रहण कीया है तथापि पूर्ण होय शक्या नाहीं, तातैं ताकूं अपूर्ण ही कहया ऐसा सूचै है. ऐसैं पर्याप्तिका वर्णन कीया।

आगें प्राणनिका वर्णन करै हैं तहां प्रथमही प्राणनिका स्वरूप वा संख्या कहै हैं—

मणवयणकायइंदियणिस्सासुस्सासआउउदयाणं।
जोसिं जोए जम्मदि मरदि विओगम्मि ते वि दह पाणा

छावट्ठि च सहस्सा सयं च बत्तीसमेयक्खे॥ ३॥
पुढविदगागणि मारुदसाहारणथूलसुहुमपत्तेया।
एदेसु अपुण्णेसु य एक्केक्के बारखं छक्कं॥ ४॥

पर्याप्तिनामा नामकर्मके उदयसे अपनी अपनी पर्याप्ति बनाता है। जब तक शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं होती तब तक

भाषार्थ- जो मन वचन काय इन्द्रिय स्वासोस्वास
यु है तिनके संयोगतैं तो उपजै जीवै, बहुरि इनिके वि-
गतैं मरै ते प्राण कहिये- ते दश हैं. भावार्थ—जीव ऐसा

सको निर्वृत्त्यपर्याप्तक कहते हैं । भावार्थ—जो पर्याप्ति क-
का उदय होनेसे लब्धि (शक्ति) की अपेक्षासे पर्याप्त है
कतु निर्वृत्ति (शरीरपर्याप्ति बनने) की अपेक्षा पूर्ण नहीं
; वह निर्वृत्त्यपर्याप्तक कहलाता है ॥ १ ॥

लब्ध्यपर्याप्तक जीवके एक अंतर्मुहूर्तमें ६६३३६ क्षुद्र-
जन्म होते हैं और उतने ही क्षुद्रमरण होते हैं ॥ २ ॥

अंतर्मुहूर्तकालमें द्वीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक ८०, त्रीन्द्रिय
लब्ध्यपर्याप्तक ६०, चतुरिंद्रिय लब्ध्यपर्याप्तक ४०, और पंचें-
द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक २४ मरण करते हैं तथा जन्म लेते हैं।
एकेंद्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीव उतने ही समयमें ६६१३२ जन्म
मरण करते हैं (इसप्रकार एकेंद्रिय, विकलेंद्रिय तथा पंचेंद्रियके
समस्त भवोंको मिलानेसे ६६३३६ क्षुद्रभव होते हैं) ॥३॥

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, ये चारों ही बादर और
सूक्ष्म इस प्रकार आठ भेद हुए तथा बादरसाधारण, सूक्ष्म-
साधारण और प्रत्येक इस प्रकार तीन भेद वनस्पतीके हुये।
इन ग्यारह प्रकारके एकेंद्रिय जीवोंमें हर एक जीवके एक अंत-
र्मुहूर्तमें ६०१२ जन्म मरण होते हैं इसप्रकार सबोंका योग
करनेसे एकेंद्रिय जीवोंके ६६१३२ भव होते हैं ॥ ४ ॥

प्राणवारस अर्थ है सो व्यवहार नयकरि दश प्राण हैं. तिनमें यथायोग्य प्राणसहित जीवै ताकूं जीवसंज्ञा है।

आगें एकेन्द्रियादि जीवनिकै प्राणनिकी संख्या कहै हैं,

एयक्खे चदुपाणा बितिचउरिंदिय असण्णिसण्णीणं।
छह सत्त अट्ठ णवयं दह पुण्णाणं कसे पाणा॥ १४०॥

भावार्थ—एकेन्द्रियकै च्यारि प्राण हैं बेन्द्रिय, तेन्द्रिय चतुरिन्द्रिय, असैनी पंचेन्द्रिय, सैनी पंचेन्द्रियनिकै, पर्याप्तिनिकै अनुक्रमतैं छह सात आठ नव दश प्राण हैं ए प्राण पर्याप्त अवस्थाविषैं कहे ॥ १४० ॥

आगें इनिही जीवनिकै अपर्याप्त अवस्थाविषै कहै हैं—

दुविहाणमपुण्णाणं इगिबितिचउरक्ख अंतिमदुगाणं
तिय चउ पण छह सत्त य कमेण पाणा मुणेयव्वा

भावार्थ—दोय प्रकारके अपर्याप्त जे एकेंद्रिय, द्वींद्रिय त्रींन्द्रिय चतुरिन्द्रिय असैनी तथा सैनी पंचेंद्रियनिकै तीन च्यारि पांच छह सात ऐसैं अनुक्रमतैं प्राण जानने. भावार्थ—निर्वृत्त्यपर्याप्त लब्ध्यपर्याप्त एकेंद्रियकै तीन, वेइन्द्रियकै च्यारि तेइन्द्रियकै पांच, चतुरिन्द्रियकै छह, असैनी सैनी पंचेंद्रियकै सात ऐसैं प्राण जानने।

आगें विकलत्रय जीवनिका ठिकाणा कहै हैं—

बितिचउरक्खा जीवा हवंति णियमेण कम्मभूमीसु।

चरमे दीवे अद्धे चरमसमुद्दे वि सव्वेसु ॥ १४२ ॥

भाषार्थ—द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, जे विकलत्रय कहावैं ते जीव नियमकरि कर्मभूमिविषै ही होय हैं तथा अंतका आधा द्वीप तथा अंतका सारा समुद्रविषै होय हैं. भोगभूमिविषै न होय हैं. भावार्थ—पंच भरत पंच ऐरावत पंच विदेह ए कर्मभूमिके क्षेत्र हैं तथा अंतका स्वयंप्रभ द्वीपके बीचि स्वयंप्रभ पर्वत है तातैं परै आधा द्वीप तथा अंतका स्वयंभूरमण सारा समुद्र एती जायगा विकलत्रय हैं और जायगा नाहीं ॥ १४२ ॥

आगैं अढाई द्वीपतैं बाह्य तिर्यंच हैं तिनकी व्यवस्था हैमवत पर्वत सारिखी है ऐसैं कहै हैं—

माणुसखित्तस्स बहिं चरमे दीवस्स अद्धयं जाव ।
सव्वत्थे वि तिरिच्छा हिमवदतिरिएहिं सारित्था ॥

भावार्थ—मनुष्य क्षेत्रतैं बारै मानुषोत्तर पर्वततैं परैं अंतका द्वीप जो स्वयंप्रभ ताका आधाके उरैं बीचिके सर्व द्वीप समुद्रके तिर्यंच हैं ते हैमवत क्षेत्रके तिर्यंचनि सारिखे हैं,

भावार्थ—हैमवतक्षेत्रमें जघन्य भोगभूमि है. सो मानुषोत्तर पर्वततैं परैं असंख्यात द्वीप समुद्र आधा स्वयंप्रभ नामा अंतका द्वीपताईं समस्तमें जघन्य भोगभूमिकी रचना है वहांके तिर्यंचनिकी आयु काय हैमवत क्षेत्रके तिर्यंचनिसारिखी है ।

आगैं जलचर जीवनिका ठिकाणा कहै हैं—

लवणोए कालोए अंतिमजलहिम्मि जलयरा संति।
सेससमुद्देसु पुणो ण जलयरा संति णियमेण॥१४४॥

भाषार्थ—लवणोद समुद्रविषै वहुरि कालोद समुद्रविषै तथा अंतका स्वयंभूरमण समुद्रविषै जलचर जीव हैं. वहुरि अवशेष वीचिके समुद्रनिविषै नियमकरि जलचर जीव नाहीं हैं।

आगें देवनिके ठिकाणे कहै हैं. तहां प्रथम भवनवासी व्यंतरनिके कहै हैं—

खरभायपंकभाए भावणदेवाण होंति भवणाणि ।
विंतरदेवाण तहा दुह्नं पि य तिरियलोए वि ॥ १४५॥

भाषार्थ—खरभाग पंकभागविषै भवनवासीनिके भवन हैं तथा व्यन्तर देवनिके निवास हैं. वहुरि इन दोउनिके तिर्यग्लोकविषै भी निवास हैं. भावार्थ—पहली पृथ्वी रत्नप्रभा एक लाख अस्सी हजार योजनकी मोटी, ताके तीन भाग तामें खरभाग सोलह हजार योजनका, ताविषै असुरकुमार विना नवकुमार भवनवासीनिके भवन हैं. तथा राक्षसकुल विना सात कुल व्यंतरनिके निवास हैं. वहुरि दूसरा पंकभाग चौरासी हजार योजनका तामें असुरकुमार भवनवासी तथा राक्षसकुल व्यंतर वसै हैं. वहुरि तिर्यग्लोक जो मध्यलोक असंख्याते द्वीप समुद्र तिनिमें भवनवासीनिके भी भवन हैं. वहुरि व्यन्तरनिके भी निवास हैं ।

आगें ज्योतिषी तथा कल्पवासी तथा नारकीनिकी वसती कहै हैं—

जोइसियाण विमाणा रज्जूमित्ते वि तिरियलोए वि ।
कप्पसुरा उड्ढह्मि य अहलोए होंति णेरइया ॥१४६॥

भावार्थ—ज्योतिषी देवनिके विमान एक राजू प्रमाण तिर्यग्लोकविषै असंख्यात द्वीप समुद्र हैं, तिनके ऊपरि तिष्ठै हैं. बहुरि कल्पवासी ऊर्ध्वलोकविषै हैं. बहुरि नारकी अधोलोकविषै हैं ।

आगें जीवनिकी संख्या कहै हैं, तहां तेजवातकायके जीवनिकी संख्या कहै हैं—

बादरपज्जत्तिजुदा घणआवलिया असंखभागो दु ।
किंचूणलोयमित्ता तेऊ वाऊ जहाकमसो ॥ १४७ ॥

भावार्थ—अग्निकाय वातकायके बादरपर्याप्तसहित जीव हैं ते घन आवलीके असंख्यातवें भाग तथा कुछ घाटि लोकके प्रदेशप्रमाण यथा अनुक्रम जानने. भावार्थ—अग्निकायके घनआवलीके असंख्यातवें भाग, वातकायके कुछ एक घाटि लोकप्रदेशप्रमाण हैं ।

आगें पृथ्वी आदिकी संख्या कहै हैं—

पुढवीतोयसरीरा पत्तेया वि य पइट्ठिया इयरा ।
होंति असंखा सेढी पुण्णापुण्णा य तह य तसा १४८

भावार्थ—पृथ्वीकायिक अप्कायिक प्रत्येकवनस्पतिकायिक सप्रतिष्ठित वा अप्रतिष्ठित तथा त्रस ये सारे पर्याप्त अपर्याप्त जीव हैं ते जुदे जुदे असंख्यात जगतश्रेणीप्रमाण हैं ।

बादरलद्धिअपुण्णा असंखलोया हवंति पत्तेया।
तह य अपुण्णा सुहुमा पुण्णा वि य संखगुणगुणिया

भावार्थ—प्रत्येक वनस्पति तथा बादर लब्ध्यपर्याप्तक जीव हैं ते असंख्यात लोकप्रमाण हैं. ऐसें ही सूक्ष्मअपर्याप्तक असंख्यात लोकप्रमाण हैं बहुरि सूक्ष्मपर्याप्तक जीव हैं ते संख्यातगुणे हैं।

सिद्धा संति अणंता सिद्धाहिंतो अणंतगुणगुणिया।
होंति णिगोदा जीवा भाग अणंता अभव्वा य १५०

भावार्थ—सिद्धजीव अनन्ते हैं बहुरि सिद्धनितैं अनन्त गुणें निगोद जीव हैं बहुरि सिद्धनिके अनन्तवे भाग अभव्य जीव हैं।

सम्मुच्छिया हु मणुया सेढियसंखिज्ज भागमित्ता हु
गब्भजमणुया सव्वे संखिज्जा होंति णियमेण १५१

भावार्थ—सम्मूर्छन मनुष्य हैं ते जगतश्रेणीके असंख्यातवें भागमात्र हैं बहुरि गर्भज मनुष्य हैं ते नियमकरि संख्यात ही हैं।

आगें सान्तर निरन्तरकूं कहै हैं—

देवा वि णारया वि य लद्धियपुण्णा हु संतरा होंति
सम्मुच्छिया वि मणुया सेसा सव्वे णिरंतरया ॥१५२॥

भावार्थ—देव तथा नारकी बहुरि लब्ध्यपर्याप्तक बहुरि सम्मू-

र्छन मनुष्य एते तौ सान्तर कहिये अन्तरसहित हैं. अवशेष सर्व जीव निरन्तर हैं. भावार्थ—पर्यायसूं अन्य पर्याय पावै फेरि वाही पर्याय पावै जेते वीचमें अन्तर रहै ताकूं सांतर कहिये सो इहां नाना जीव अपेक्षा अन्तर कह्या है जो देव तथा नारकी तथा मनुष्य तथा लब्ध्यपर्याप्तक जीवकी उत्पत्ति कोई कालमें न होय सो तौ अन्तर कहिये. बहुरि अंतर न पड़े सो निरन्तर कहिये. सो वैक्रियकमिश्रकाययोगी जे देव नारकी तिनिका तौ बारह मुहूर्त्तका कह्या है. कोई ही न उपजै तो बारह मुहूर्त्त तांई न उपजै. बहुरि सम्मूर्छन मनुष्य कोई ही न होय तौ पल्यके असंख्यातवें भाग कालतांई न होय. ऐसैं अन्य ग्रन्थनिमें कह्या है अवशेष सर्व जीव निरन्तर उपजै हैं।

आगें जीवनिकूं संख्याकरि अल्प बहुत कहै हैं—

मणुयादो णेरइया णेरइयादो असंखगुणगुणिया।
सव्वे हवंति देवा पत्तेयवणप्फदी तत्तो॥ १५२॥

भावार्थ—मनुष्यनितैं नारकी असंख्यात गुणे हैं. नारकीनितैं सर्व देव असंख्यात गुणे हैं, देवनितैं प्रत्येक वनस्पति जीव असंख्यात गुणे हैं।

पंचक्खा चउरक्खा लद्धियपुण्णा तहेव तेयक्खा।
वेयक्खा वि य कमसो विसेससहिदा हु सव्व संखाए

भावार्थ—पंचेन्द्रिय चौइन्द्रिय तेइन्द्रिय बेइंद्रिय ये लब्ध्य

पर्याप्तक जीव संख्या करि विशेषाधिक हैं. किछू अधिककूं विशेषाधिक कहिये सो ए अनुक्रमतैं वधते २ हैं।

चउरक्खा पंचक्खा वेयक्खा तह य जाण तेयक्खा।
एदे पज्जत्तिजुदा अहिया अहिया कमेणेव ॥ १५५॥

भाषार्थ—चौइन्द्रिय पंचेन्द्रिय वेइन्द्रिय तैसैं ही तेइन्द्रिय ये पर्याप्तिसहित जीव अनुक्रमतैं अधिक अधिक जानहु।

परिवाज्जिय सुहुमाणं सेसातिरिक्खाण पुण्णदेहाणं।
इक्को भागो होदि हु संखातीदा अपुण्णाणं ॥१५६॥

भाषार्थ—सूक्ष्म जीवनिकूं छोडि अवशेष पर्याप्ततिर्यंच हैं तिनके एक भाग तौ पर्याप्त हैं. वहुरि वहुभाग असंख्याते अपर्याप्त हैं. भावार्थ—वादर जीवनिविषैं पर्याप्त थोरे हैं, अपर्याप्त वहुत हैं।

सुहुमापज्जत्ताणं एगो भागो हवेइ णियमेण।
संखिज्जा खलु भागा तेसिं पज्जत्तिदेहाणं ॥१५७॥

भाषार्थ—सूक्ष्मपर्याप्त जीव संख्यात भाग हैं इनिमें अपर्याप्तक एक भाग हैं. भावार्थ—सूक्ष्म जीवनिमें पर्याप्त बहुत हैं अपर्याप्त थोरे हैं।

संखिज्जगुणा देवा अंतिमपटला हु आणदं जाव।
तत्तो असंखगुणिदा सोहम्मं जाव पडिपडलं ॥१५८॥

भाषार्थ—देव हैं ते अंतिम पटल जो अनुत्तर विमान

र्छन मनुष्य एते तो सान्तर कहिये अन्तरसहित हैं. अवशेष सर्व जीव निरन्तर हैं. भावार्थ–पर्यायसूं अन्य पर्याय पावै फेरि वाही पर्याय पावै जेते वीचमें अन्तर रहै ताकूं सांतर कहिये सो इहां नाना जीव अपेक्षा अन्तर कह्या है जो देव तथा नारकी तथा मनुष्य तथा लब्ध्यपर्याप्तक जीवकी उत्पत्ति कोई कालमें न होय सो तो अन्तर कहिये. बहुरि अंतर न पड़ै सो निरन्तर कहिये. सो वैक्रियकमिश्रकाययोगी जे देव नारकी तिनिका तो वारह मुहूर्त्तका कह्या है. कोई ही न उपजै तो वारह मुहूर्त्त तांई न उपजै. बहुरि सम्मूर्छन मनुष्य कोई ही न होय तो पल्यके असंख्यातवें भाग कालतांई न होय. ऐसें अन्य ग्रन्थनिमें कह्या है अवशेष सर्व जीव निरन्तर उपजै हैं।

आगें जीवनिकूं संख्याकरि अल्प वहुत कहै हैं—

मणुयादो णेरइया णेरइयादो असंखगुणगुणिया।
सव्वे हवंति देवा पत्तेयवणप्फदी तत्तो॥ १५२॥

भावार्थ–मनुष्यनितैं नारकी असंख्यात गुणे हैं. नारकीनितैं सर्व देव असंख्यात गुणे हैं, देवनितैं प्रत्येक वनस्पति जीव असंख्यात गुणे हैं।

पंचक्खा चउरक्खा लद्धियपुण्णा तहेव तेयक्खा
वेयक्खा वि य कमसो विसेससहिदा हु सव्व संखा॥ १

भावार्थ–पंचेन्द्रिय चौइन्द्रिय तेइन्द्रिय वेइंद्रिय ये ल

भाषार्थ-पृथ्वीकायिक जीवनिकी उत्कृष्ट आयु बाईस हजार वर्षकी है. अप्कायिक जीवनिकी उत्कृष्ट आयु सात हजार वर्षकी है. अग्निकायिक जीवनिकी उत्कृष्ट आयु तीन दिनकी है. वायुकायिक जीवनिकी उत्कृष्ट आयु तीन हजार वर्षकी है ॥ १६२ ॥

आगें वेन्द्रिय आदिककी आयु कहै हैं,-

बारसवास वियक्खे एगुणवण्णा दिणाणि तेयक्खे ।
चउरक्खे छम्मासा पंचक्खे तिण्णि पल्लाणि ॥ १६३ ॥

भाषार्थ-वेइन्द्रिय जीवनिकी उत्कृष्ट आयु बारह वर्षकी है. तेइन्द्रिय जीवनिकी उत्कृष्ट आयु गुणचास दिनकी है. चौइन्द्रिय जीवनिकी उत्कृष्ट आयु छह महीनाकी है. पंचेन्द्रिय जीवनिकी उत्कृष्ट आयु भोगभूमिकी अपेक्षा तीन पल्यकी है ॥

आगें सर्व ही तिर्यंच अर मनुष्यनिकी जघन्य आयु कहै हैं-

सव्वजहण्णं आऊ लद्धियपुण्णाण सव्वजीवाणं ।
मज्झिमहीणमुहुत्तं पज्जत्तिजुदाण णिक्किट्ठं ॥१६४॥

भाषार्थ-लब्ध्यपर्याप्तक सर्व जीवनिकी जघन्य आयु मध्यमहीनमुहूर्त्त है. सो यह क्षुद्रभवमात्र जाननी. एक उस्वासके अठारहवें भाग मात्र है. बहुरि जिनकै लब्ध्यपर्याप्ति होय, ऐसे कर्मभूमिके तिर्यंच मनुष्य तिन सर्व ही पर्याप्त जीवनिकी जघन्य आयु भी मध्यहीनमुहूर्त्त है. सो यह पहलेतैं बड़ा मध्यअन्तर्मुहूर्त्त है ।

...तक शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं होती तब तक

अब देवनारकीनिकी आयु कहै हैं,—

देवाण णारयाणं सायरसंखा हवंति तेतीसा ।
उक्किट्ठं च जहण्णं वासाणं दस सहस्साणि ॥१६५॥

भाषार्थ—देवनिकी तथा नारकी जीवनिकी उत्कृष्ट आयु तेतीस सागरकी है. बहुरि जघन्य आयु दस हजार वर्षकी है. भावार्थ—यह सामान्य देवनिकी अपेक्षा कही है विशेष त्रैलोक्यसार आदि ग्रंथनितैं जाननी ॥ १६५ ॥

आगें एकेन्द्रिय आदि जीवनिकी शरीरकी अवगाहना उत्कृष्ट जघन्य दश गाथानिमें कहै हैं,—

अंगुलअसंखभागो एयक्खचउक्कदेहपरिमाणं ।
जोयणसहस्समहियं पउमं उक्कस्सयं जाण ॥१६६॥

भाषार्थ—एकेन्द्रिय चतुष्क कहिये पृथ्वी अप तेज वायु कायके जीवनिकी अवगाहना जघन्य तथा उत्कृष्ट घन अंगुलके असंख्यातवें भाग है. इहां सूक्ष्म तथा बादर पर्याप्तक अपर्याप्तकका शरीर छोटा वडा है. तोऊ घनांगुलके असंख्यातवें भाग ही सामान्यकरि कह्या. विशेष गोम्मटसारतैं जानना. बहुरि अंगुल उत्सेधअंगुल आठ यव प्रमाण लेणा, प्रमाणांगुल न लेणा, बहुरि प्रत्येक वनस्पती कायविषैं उत्कृष्ट अवगाहनायुक्त कमल है ताकी अवगाहना किछू अधिक हजार योजन है ॥ १६६ ॥

बायसजोयण संखो कोसतियं गुब्भिया समुद्दिट्ठा

अमरो जोयणमेगं सहस्स सम्मुच्छिदो मच्छो ॥१६७॥

भावार्थ—वेइन्द्रियविषै शंख वडा है ताकी उत्कृष्ट अवगाहना बारह योजन लांवी है. तेइंद्रियविषै गोभिका कहिये कानखिजूरा वडा है ताकी उत्कृष्ट अवगाहना तीन कोश लांवी है. बहुरि चौइंद्रियविषै वडा भ्रमर है ताकी उत्कृष्ट अवगाहना एक योजन लांवी है. बहुरि पंचेंद्रियविषै वडा मच्छ है ताकी उत्कृष्ट अवगाहना हजार योजन लांवी है. ए जीव अंतका स्वयंभूरमण द्वीप तथा समुद्रमें जानने ॥ १६७ ॥

अब नारकीनकी उत्कृष्ट अवगाहना कहै हैं,—

पंचसयाधणुछेहा सत्तमणरए हवंति णारइया ।
तत्तो उस्सेहेण य अद्धद्धा होंति उवरुवरिं ॥१६८॥

भावार्थ—सातवें नरकविषै नारकी जीवनिका देह पांचसै धनुष ऊंचा है. ताके ऊपरि देहकी ऊंचाई आधी आधी है. छट्ठामें दोसै पचास धनुष, पांचवामें एकसो पचीस धनुष, चौथेमें साढावासठि धनुष, तीसरामें सवाइकतीस धनुष, दूसरामें पनरा धनुष आना दश, पहलेमें सात धनुष तेरह आना, ऐसें जानना. इनमें पटल गुणचास हैं तिनविषैं न्यारी न्यारी विशेष अवगाहना त्रैलोक्यसारतैं जाननी ॥ १६८ ॥

अब देवनिकी अवगाहना कहै हैं,—

असुराणं पणवीसं सेसं णवभावणा य दहदंडं ।
वितरदेवाण तहा जोइसिया सत्तधणुदेहा ॥ १६९॥

[illegible] उदयसे अपना अपना पर्याप्ति
[illegible] तक शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं होती तब तक

भाषार्थ—भवनवासीनिविषैं असुरकुमार हैं तिनकी देहकी ऊंचाई पचीस धनुष, बाकी नवनिकी दश धनुष, अर व्यंतरनिकी देहकी ऊंचाई दश धनुष है, अर ज्योतिषी देवनिकी देहकी ऊंचाई सात धनुष है॥ १६९ ॥

अब स्वर्गके देवनिकी कहै हैं,—

दुगदुगचदुचदुदुगदुगकप्पसुराणं सरीरपरिमाणं।
सत्तछहपंचहत्था चउरा अद्धद्ध हीणा य ॥ १७० ॥
हिट्ठिममज्झिमउवरिमगेवज्जे तह विमाणचउदसए।
अद्धजुदा वे हत्था हीणं अद्धद्धयं उवरिं ॥ १७१ ॥

भाषार्थ—सौधर्म ईशान जुगलके देवनिका देह सात हाथ ऊंचा है. सानत्कुमार माहेन्द्र युगलके देवनिका देह छह हाथ ऊंचा है. ब्रह्म ब्रह्मोत्तर लान्तव कापिष्ठ इनि च्यारि स्वर्गके देवनिका देह पांच हाथ ऊंचा है. शुक्र महाशुक्र सतार सहस्रार इनि च्यारि स्वर्गके देवनिका देह च्यारि हाथ ऊंचा है आनत प्राणत युगलके देवनिका देह साढा तीन हाथ ऊंचा है आरण अच्युतनिविषैं देवनिका देह तीन हाथ ऊंचा है। अधोग्रैवेयकविषैं देवनिका देह अढाई हाथ ऊंचा है. मध्यमग्रैवेयकविषै देवनिका देह दोय हाथ ऊंचा है। ऊपरिके ग्रैवेयकविषै देवनिका देह ड्योढ हाथ ऊंचा है. नव अनुदिस पंच अनुत्तरनिवै देवनिका देह एक हाथ ऊंचा है ॥१७०-१७१॥

तातैं जैसी देह पावै तैसाही प्रमाण रहै है. अर समुद्घात करै तब देहतैं भी प्रदेश नीसरै हैं ॥ १७६ ॥

आगें कोई अन्यमती जीवकूं सर्वथा सर्वगत ही कहै हैं तिनिका निषेध करै हैं,—

सव्वगओ जदि जीवो सव्वत्थ वि दुक्खसुक्खसंपत्ती
जाइज्ज ण सा दिट्ठी णियतणुमाणो तदो जीवो ॥

भाषार्थ—जो जीव सर्वगत ही होय तौ सर्व क्षेत्रसंबंधी सुखदुःखकी प्राप्ति याकैं भई सो तौ नाहीं देखिये है. अपने शरीरमें ही सुखदुःखकी प्राप्ति देखिये है. तातैं अपने शरीरप्रमाण ही जीव है ॥ १७७ ॥

जीवो णाणसहावो जह अग्गी उह्णओ सहावेण।
अत्थंतरभूदेण हि णाणेण ण सो हवे णाणी ॥१७८॥

भाषार्थ—जैसैं अग्नि स्वभावकरि ही उष्ण है तैसैं जीव है सो ज्ञानस्वभाव है तातैं अर्थान्तरभूत कहिये आपतैं प्रदेशरूप जुदा ज्ञानकरि ज्ञानी नाहीं है. भावार्थ—नैयायिक आदि हैं ते जीवकै अर ज्ञानकै प्रदेशभेद मानिकरि कहै हैं जो आत्मातैं ज्ञान भिन्न है सो समवायतैं तथा संसर्गतैं एक भया है तातैं ज्ञानी कहिये है. जैसैं धनतैं धनी कहिये तैसैं. सो यह मानना असत्य है. आत्माकै अर ज्ञानकै अग्नि अर उष्णताकै जैसैं अभेदभाव है तैसैं तादात्म्यभाव है ॥ १७८ ॥

आगें भिन्नमाननेमें दूषण दिखावै हैं,—

जब तक शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं होती तब तक

जदि जीवादो भिण्णं सव्वपयारेण हवदि तं णाणं।
गुणगुणिभावो य तदा दूरेण प्पणस्सदे दुह्णं ॥१७९॥

भाषार्थ— जो जीवतैं ज्ञान सर्वथा भिन्न ही मानिये तौ तिन दोऊनिकैं गुणगुणिभाव दूरतैं ही नष्ट होय. भावार्थ—यह जीव द्रव्य है यह याका ज्ञान गुण है. ऐसा भाव न ठहरै।

आगें कोई पूछै जो गुण अर गुणीका भेद विना दोय नाम कैसैं कहिये ताका समाधान करै हैं—

जीवस्स वि णाणस्स वि गुणगुणिभावेण कीरए भेओ।
जं जाणदि तं णाणं एवं भेओ कहं होदि ॥ १८० ॥

भाषार्थ—जीवकै अर ज्ञानकै गुणगुणीभावकरि भेद कथंचित् कीजिये है. वहुरि जो जाणै सो ही आत्माका ज्ञान है ऐसैं भेद कैसैं होय. भावार्थ-सर्वथा भेद होय तौ जाणै सो ज्ञान है ऐसा अभेद कैसैं कहिये तातैं कथंचित् गुणगुणीभाव करि भेद कहिये है, प्रदेशभेद नाहीं।

ऐसैं केई अन्यमती गुणगुणीमें सर्वथा भेद मानि जीवकै अर ज्ञानकै सर्वथा अर्थान्तरभेद मानैं हैं तिनिका मत निषेध्या ॥

आगें चार्वाकमती ज्ञानकूं पृथ्वी आदिका विकार मानै है ताकूं निषेधै हैं—

णाणं भूयवियारं जो मण्णदि सो वि भूदगहिदव्वो।

जीवेण विणा णाणं किं केणावि दीसए कत्थ ॥ १८१ ॥

भावार्थ—जो चार्वाकमती ज्ञानकूं पृथ्वी आदि जे पंच भूत तिनिका विकार मानै है सो चार्वाक, भूत कहिये पिशाच ताकरि गृह्या है गहिला है. जातैं विना ज्ञानके जीव कहां कोईकरि कहूं देखिये है ? कहूं भी नाहीं देखिये है ।

आगें याकूं दूषण बतावैं हैं ॥ १८१ ॥

सच्चेयणपच्चक्खं जो जीवं णेय मण्णदे मूढो ।
सो जीवं ण मुणंतो जीवाभावं कहं कुणदि ॥१८२॥

भावार्थ—यह जीव सत्रूप अर चैतन्यरूप स्वसंवेदन प्रत्यक्ष प्रमाणकरि प्रसिद्ध है. ताहि चार्वाक नाहीं मानै है. सो मूर्ख है. जो जीवकूं नाहीं जाणै है नाहीं मानै है तो जीवका अभाव कैसैं करै है. भावार्थ—जो जीवकूं जानै ही नाहीं सो अभाव भी न कहि सकै. अभावका कहनेवाला भी तो जीव ही है. जातैं सद्भावविना अभाव कह्या न जाय १८२

आगैं याहीकूं युक्तिकरि जीवका सद्भाव दिखावै हैं—

जदि ण य हवेदि जीओ तो को वेदेदि सुक्खदुक्खाणि
इंदियविसया सव्वे को वा जाणदि विसेसेण ॥१८३॥

भावार्थ—जो जीव नाहीं होय तो अपने सुखदुःखकूं कौन जानै तथा इन्द्रियनिके स्पर्श आदि विषय हैं तिनि सवैनिकूं विशेषकरि कौन जानै. भावार्थ—चार्वाक प्रत्यक्ष प्र-

——————————————————————

तक शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं होती तब तक

माण मानै है. सो अपने सुखदुःखकूं तथा इंद्रियनिके विषयनिकूं जानै सो प्रत्यक्ष, सो जीव विना प्रत्यक्षप्रमाण कौनकै होय ? तातैं जीवका सद्भाव अवश्य सिद्ध होय है ॥१८३॥

आगें आत्माका सद्भाव जैसैं बणै तैसैं कहै हैं—

संकप्पमओ जीवो सुहदुक्खमयं हवेइ संकप्पो ।
तं च्चिय वेयदि जीवो देहे मिलिदो वि सव्वत्थ ॥

भाषार्थ—जीव है सो संकल्पमयी है. बहुरि संकल्प है सो दुःखसुखमय है. तिस सुखदुःखमयी संकल्पकूं जाणैं सो जीव है जो देहविषै सर्वत्र मिलि रह्या है तोऊ जाननेवाला जीव है ॥ १८४ ॥

आगें जीव देहसूं मिल्या हूवा सर्व कार्यनिकूं करै है यह कहै हैं—

देहमिलिदो वि जीवो सव्वकम्माणि कुव्वदे जह्मा ।
तह्मा पयट्टमाणो एयत्तं बुज्झदे दोह्णं ॥ १८५ ॥

भाषार्थ—जातैं जीव है सो देहतैं मिल्या हूवा ही सर्व कर्म नोकर्मरूप सर्व कार्यनिकूं करै है तातैं तिनि कार्यनिविषैं प्रवर्त्तता संता जो लोक ताकूं देहकै अर जीवकै एकपणा भासै है. भावार्थ—लोककूं देह अर जीव न्यारे तौ दीखै नाहीं दोऊ मिलेहुये दीखै हैं संयोगतैं ही कार्यनिकी प्रवृत्ति दीखै है तातैं दोऊनिको एक ही मानै है ॥ १८५ ॥

आगें जीवकूं देहतें भिन्न जाननेकूं लक्षण दिखावे हैं—

देहमिलिदो वि पिच्छदि देहमिलिदो वि णिसुण्णदे सद्दं।
देहमिलिदो वि भुंजदि देहमिलिदो वि गच्छेई ॥

भावार्थ—जीव है सो देहसूं मिल्या ही नेत्रनिकरि पदार्थनिकूं देखै है. बहुरि देहसूं मिल्या ही काननिकरि शब्दनिकों सुणै है. बहुरि देहसूं मिल्या ही मुखतैं खाय है, जीभतैं स्वाद ले है बहुरि देहतैं मिल्या ही पगनिकरी गमन करै है. भावार्थ—देहमें जीव न होय तो जडरूप केवल देहहीकै देखना स्वाद लेना सुनना गमन करना ए क्रिया न होय. तातैं जानिये है देहमें न्यारा जीव है. सो ही ये क्रिया करै है ॥ १८६ ॥

आगें ऐसैं जीवकूं मिले ही मानता लोक भेदकूं न जानै है,—

राओ हं भिच्चो हं सिट्ठी हं चेव दुब्बलो बलिओ।
इदि एयत्ताविट्ठो दोह्णं भेयं ण बुज्झेदि ॥ १८७ ॥

भावार्थ—देहकै अर जीवकै एकपणाकी मानिकरि सहित जो लोक है सो ऐसैं मानै है जो मैं राजा हूं मैं चाकर हूं मैं श्रेष्ठी हूं मैं दुर्बल हूं मैं दरिद्र हूं निबल हू बलवान हूं. ऐसैं मानता संता देह जीव दोऊनिकै भेद नाहीं जानै है १८७

आगें जीवकै कर्त्तापणा आदिकूं च्यारि गाथानिकरि कहै हैं—

· अपर्याप्त अपना अपना पर्याप्ति
तक शरीरपर्याप्ति पूर्ण नाहीं होती तब तक

जीवो हवेइ कत्ता सव्वं कम्माणि कुव्वदे जह्मा ।
कालाइलद्धिजुत्तो संसारं कुणदि मोक्खं च ॥१८८॥

भाषार्थ—जातैं यह जीव सर्व जे कर्म नोकर्म तिनिकूं करता संता आपका कर्त्तव्ये मानै है तातैं कर्त्ता भी है सो आपकै संसारकूं करै है. वहुरि काल आदि लब्धिकरि युक्त हूवा संता आपकै मोक्षकूं भी आप ही करै है. भावार्थ—कोई जानैगा कि या जीवकै सुखदुःख आदि कार्यनिकूं ईश्वर आदि अन्य करै हैं सो ऐसैं नाहीं है आप ही कर्त्ता है. सर्व कार्यनिकूं आप ही करै है. संसार भी आपही करै है. काल लब्धि आवै तब मोक्ष भी आप ही करै है सर्वकार्यनिप्रति द्रव्य क्षेत्र-काल भावरूप सामग्री निमित्त है ही ॥ १८८ ॥

जीवो वि हवइ भुत्ता कम्मफलं सो वि भुंजदे जह्मा
कम्मविवायं विविहं सो च्चिय भुंजेदि संसारे १८९॥

भाषार्थ—जातैं जीव है सो कर्मका फल या संसारमें भोगवै है तातैं भोक्ता भी यह ही है. वहुरि सो कर्मका विपाक संसारविषै सुखदुःखरूप अनेक प्रकार है, तिनकूं भी भोगै है ॥ १८९ ॥

जीवो वि हवइ पावं अइतिव्वकसायपरिणदो णिच्चं ।
जीवो हवेइ पुण्णं उवसमभावेण संजुत्तो ॥ १९० ॥

भाषार्थ—यह जीव अति तीव्र कषायकरि संयुक्त होय

तव यह ही जीव पापरूप होय है. बहुरि उपशम भाव जो मन्द कषाय ताकरि संयुक्त होय तव यह ही जीव पुण्यरूप होय है. भावार्थ—क्रोध मान माया लोभका अतितीव्रपणातैं तो पाप परिणाम होय है. अर इनिका मंदपणातैं पुण्यपरिणाम होय है तिनि परिणामनिसहित पुण्यजीव पापजीव कहिये है एक ही जीव दोऊं परिणामयुक्त हुवा के पुण्यजीव पापजीव कहिये है. सो सिद्धान्तकी अपेक्षा ऐसैं ही हैं. जातैं सम्यक्त्व सहित जीव होय ताकै तो तीव्र कषायनिकी जड़ कटनेतैं पुण्य जीव कहिये. बहुरि मिथ्यादृष्टि जीवकै भेदज्ञानविना कषायनिकी जड़ कटै नाहीं तातैं बाह्यतैं कदाचित् उपशम परिणाम भी दीखै तौ ताकूं पापजीव ही कहिये ऐसा जानना॥

रयणत्तयसंजुत्तो जीवो वि हवेइ उत्तमं तित्थं ।
संसारं तरइ जदो रयणत्तयदिव्वणावाए ॥ १९१॥

भावार्थ—जातैं यह जीव रत्नत्रयरूप सुंदर नावकरि संसारतैं तिरै है पार होय है. तातैं यह ही जीव रत्नत्रयकरि संयुक्त भया संता उत्तम तीर्थ है, भावार्थ—तीर्थ नाम जो तिरै तथा जाकरि तिरिये सो है. सो यह जीव सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तेई भये रत्नत्रय, सोई भई नाव, ताकरि तरै है तथा अन्यकूं तिरनेंको निमित्त होय है तातैं यह जीव ही तीर्थ है ॥

आगै अन्यप्रकार जीवका भेद कहै हैं—

जीवा हवंति तिविहा बहिरप्पा तह य अंतरप्पा य ।

निर्वृत्यपर्याप्त उदयसे अपना अपना पर्याप्ति
तक शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं होती तब तक

परमप्पा वि य दुविहा अरहंता तह य सिद्धा य ॥

भाषार्थ—जीव बहिरात्मा अन्तरात्मा परमात्मा ऐसैं तीन प्रकार हैं बहुरि परमात्मा भी अरहन्त तथा सिद्ध ऐसैं दोय प्रकार हैं ॥ १९२ ॥

अब इनिका स्वरूप कहै हैं तहां बहिरात्मा कैसा है सो कहै हैं—

मिच्छत्तपरिणदप्पा तिव्वकसाएण सुट्ठु आविट्ठो ।
जीवं देहं एक्कं मण्णंतो होदि बहिरप्पा ॥ १९३ ॥

भाषार्थ—जो जीव मिथ्यात्व कर्मका उदयरूप परिणम्या होय बहुरि तीव्र कषाय अनन्तानुबन्धीकरि सुष्ठु कहिये अतिशयकरि युक्त होय इस निमित्ततैं जीवकूं अर देहकूं एक मानता होय सो जीव बहिरात्मा कहिये. भावार्थ—बाह्य पर द्रव्यको आत्मा मानै सो बहिरात्मा है. सो यह मानना मिथ्यात्व अनन्तानुबंधी कषायके उदयकरि होय है तातैं भेदज्ञानकरि रहित हूवा संता देहकं आदिदेकरि समस्त परद्रव्यविषै अहंकार ममकारकरि युक्त हूवा सन्ता बहिरात्मा कहावै है ॥ १९३ ॥

आगैं अंतरात्माका स्वरूप तीन गाथानिकरि कहै हैं—

जे जिणवयणे कुसला भेदं जाणंति जीवदेहाणं ।
णिज्जियदुट्ठट्ठमया अंतरअप्पा य ते तिविहा ॥

भावार्थ—जे जीव जिनवचनविषै प्रवीण हैं बहुरि जीवकै अर देहकै भेद जाणैं हैं, बहुरि जीते हैं आठ मद जिनने ते अंतरात्मा हैं. ते उत्कृष्ट मध्यम जघन्य भेदकरि तीन प्रकार हैं। भावार्थ—जो जीव जिनवानीका भले प्रकार अभ्यासकरि जीव अर देहका स्वरूप भिन्न भिन्न जानै ते अंतरात्मा हैं. तिनिकै जाति लाभ कुल रूप तप बल विद्या, ऐश्वर्य ये आठ मदके कारण हैं तिनिविषैं अहंकार ममकार नाहीं उपजै है जातैं ये परद्रव्यके संयोगजनित हैं तातैं इनिविषैं गर्व नाहीं करै हैं ते तीन प्रकार हैं ॥ १९४ ॥

अब इनि तीन प्रकारविषैं उत्कृष्टकूं कहै हैं—

पंचमहव्वयजुत्ता धम्मे सुक्के वि संठिया णिच्चं ।
णिज्जियसयलपमाया उक्किट्ठा अंतरा होंति ॥१९५॥

भावार्थ—जे जीव पांच महाव्रतकरि संयुक्त होंय बहुरि धर्म्यध्यान शुक्लध्यानविषैं नित्य ही तिष्ठे होंय बहुरि जीते हैं सकल निद्रा आदि प्रमाद जिनिनें ते उत्कृष्ट अन्तरात्मा हैं।

अब मध्यम अन्तरात्माकूं कहै हैं—

सावयगुणेहिं जुत्ता पमत्तविरदा य मज्झिमा होंति।
जिणवयणे अणुरत्ता उवसमसीला महासत्ता ॥

भावार्थ—जे जीव श्रावकके व्रतनिकरि संयुक्त होंय बहुरि प्रमत्त गुणस्थानवर्त्ती जे मुनि होंय ते मध्यम अन्तरा-

[illegible] नामकर्मके उदयसे अपनी अपनी पर्याप्ति
जहं तक शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं होती तब तक

त्मा हैं. कैसे हैं ते, जिनवरवचनविषै अनुरक्त हैं लीन हैं. आज्ञा सिवाय प्रवर्त्तन न करैं. बहुरि उपशमभाव कहिये मन्द कषाय तिसरूप है स्वभाव जिनिका, बहुरि महापराक्रमी हैं परीषहादिकके सहनेमें दृढ हैं उपसर्ग आये प्रतिज्ञातैं टलैं नाहीं ऐसे हैं ॥ १९६ ॥

अब जघन्य अंतरात्माकूं कहै हैं—

अविरयसम्माहिट्ठी होंति जहण्णा जिणंदपयभत्ता ।
अप्पाणं णिंदंता गुणगहणे सुट्ठुअणुरत्ता ॥१९७॥

भापार्थ—जे जीव अविरत सम्यग्दृष्टी हैं अर्थात् सम्यग्दर्शन तौ जिनके पाइये है अर चारित्रमोहके उदयकरि व्रत धारि सकैं नाहीं ऐसे जघन्य अंतरात्मा हैं. ते कैसे हैं ? जिनेन्द्रके चरननिके भक्त हैं, जिनेन्द्र, तिनकी वाणी, तथा तिनिके अनुसार निर्ग्रन्थ गुरु तिनिकी भक्तिविषै तत्पर हैं. बहुरि अपने आत्माकूं निरन्तर निंदते रहै हैं जातैं चारित्रमोहके उदयतैं व्रत धारे जांय नाहीं, अर तिनकी भावना निरन्तर रहै तातैं अपने विभाव परिणामनिकी निन्दा करते ही रहै हैं. बहुरि गुणनिके ग्रहणविषै भले प्रकार अनुरागी हैं जातैं जिनिमें सम्यग्दर्शन आदि गुण देखैं तिनितैं अत्यन्त अनुरागरूप प्रवर्त्तै हैं गुणनितैं अपना अर परका हित जान्या है, तातैं गुणनितैं अनुराग ही होय है. ऐसैं तीन प्रकार अन्तरात्मा कह्या सो गुणस्थाननिकी अपेक्षातैं जानना । भावार्थ—चौथा गुणस्थानवर्ती तौ जघन्य अंतरात्मा, पांचवां

छठा गुणस्थानवर्ती मध्यम अंतरात्मा अर सातवां गुणस्थानतैं लगाय बारहमां गुणस्थानताईं उत्कृष्ट अंतरात्मा जानना ॥ १९७ ॥

अब परमात्माका स्वरूप कहै हैं,—

ससरीरा अरहंता केवलणाणेण मुणियसयलत्था।
णाणसरीरा सिद्धा सव्वुत्तम सुक्खसंपत्ता ॥ १९८ ॥

भाषार्थ—जे शरीरसहित ते अरहंत हैं। कैसे हैं? केवलज्ञानकरि जाने हैं सकलपदार्थ जिनूनैं ते परमात्मा हैं. बहुरि शरीरकरि रहित हैं ज्ञान ही है शरीर जिनकैं, ते सिद्ध हैं. कैसे हैं? सर्व उत्तम सुखकूं प्राप्त भये हैं ते शरीररहित परमात्मा हैं. भावार्थ—तेरहमां चौदहमां गुणस्थानवर्त्ती अरहंत शरीरसहित परमात्मा हैं. अर सिद्ध परमेष्ठी शरीररहित परमात्मा हैं।

अब परा शब्दका अर्थकूं कहै हैं,—

णिस्सेसकम्मणासे अप्पसहावेण जा समुप्पत्ती।
कम्मजभावखए वि य सा वि य पत्ती परा होदि ॥१९९॥

भाषार्थ—जो समस्त कर्मका नाश होतेसंतैं अपने स्वभावकरि उपजै सो परा कहिये. बहुरि कर्मतैं उपजे जे औदयिक आदि भाव तिनका नाश होतैं उपजै सो भी परा कहिये. भावार्थ—परमात्मा शब्दका अर्थ ऐसा है जो परा कहिये उत्कृष्ट मा कहिये लक्ष्मी जाकैं होय ऐसा आत्माकूं प-

॥ नामकर्मके उदयसे अपनी अपनी पर्याप्ति
र्ष तक शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं होती तब तक

रमात्मा कहिये है. सो समस्त कर्म्मनिका नाशकरि स्वभाव-रूप लक्ष्मीकूं प्राप्त भये ऐसे सिद्ध, ते परमात्मा हैं. बहुरि घातिकर्म्मनिका नाशकरि अनन्तचतुष्टयरूप लक्ष्मीकूं प्राप्त भये ऐसे अरहंत ते भी परमात्मा हैं. बहुरि ते ही औदयिक आदि भावनिका नाश करि भी परमात्मा भये कहिये।

आगें कोई जीवनिकूं सर्वथा शुद्ध ही कहै हैं तिनके मतकूं निषेधै हैं,-

जइ पुण सुद्धसहावा सव्वे जीवा अणाइकाले वि ।
तो तवचरणविहाणं सव्वेसिं णिप्फलं होदि ॥ २०० ॥

भाषार्थ-जो सर्व जीव अनादि कालविषै भी शुद्ध स्वभाव हैं तो सर्वहीके तपश्चरण विधान है सो निष्फल होय है।

ता किह गिह्णदि देहं णाणाकम्माणि ता कहं कुणइ ।
सुहिदा वि य दुहिदा वि य णाणारूवा कहं होंति २०१

भाषार्थ-जो जीव सर्वथा शुद्ध है तो देहकूं कैसैं ग्रहण करै है ? बहुरि नाना प्रकारके कर्मनिकूं कैसैं करै है ? बहुरि कोई सुखी है कोई दुःखी है ऐसैं नानारूप कैस होय है ? तातैं सर्वथा शुद्ध नाहीं है।

आगें अशुद्धता शुद्धताका कारण कहै हैं,-

सव्वे कम्मणिबद्धा संसरमाणा अणाइकालह्मि ।
पच्छा तोडिय बंधं सुद्धा सिद्धा धुवा होंति ॥ २०२ ॥

भावार्थ—जीव हैं ते सर्व ही अनादिकालतैं कर्मकरि बंधे हुये हैं तातैं संसारविषै भ्रमण करै हैं. पीछैं कर्मनिके बंधनिकूं तोडि सिद्ध होय हैं, तब शुद्ध हैं अर निश्चल होय हैं।

आगे जिस बंधकरि जीव बंधे हैं तिस बंधका स्वरूप कहै हैं,—

जो अण्णोण्णपवेसो जीवपएसाण कम्मखंधाणं ।
सव्वबंधाण विलओ सो बंधो होदि जीवस्स ॥२०३॥

भावार्थ—जो जीवनिके प्रदेशनिका अर कर्मनिके बंधनिका परस्पर प्रवेश होना एक क्षेत्ररूप सम्बन्ध होना सो जीवकै प्रदेशबन्ध है. सो यह ही प्रकृति स्थिति अनुभागरूप जे सर्व बंध तिनिका भी लय कहिये एकरूप होना है।

आगे सर्व द्रव्यनिविषैं जीव द्रव्य ही उत्तम परम तत्त्व है ऐसा कहै हैं,—

उत्तमगुणाण धामं सव्वदव्वाण उत्तमं दव्वं ।
तच्चाण परमतच्चं जीवं जाणेहि णिच्छयदो ॥२०४॥

भावार्थ—जीव द्रव्य है सो उत्तम गुणनिका धाम है. ज्ञान आदि उत्तम गुण याहीमें हैं. बहुरि सर्व द्रव्यनिमें यह ही द्रव्य प्रधान है. सर्व द्रव्यनिकं जीव ही प्रकासै है. बहुरि सर्व तत्त्वनिमें परम तत्त्व जीव ही है, अनन्तज्ञान सुख आदिका भोक्ता यह ही है ऐसें हे भव्य ! तू निश्चयतैं जाणि।

[illegible] नामकर्मके उदयसे अपनी अपनी पर्याप्ति
[illegible] तक शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं होती तब तक

आगें जीवहीकै उत्तम तत्त्वपणा कैसैं है सो कहै हैं,–

अंतरतच्चं जीवो बाहिरतच्चं हवंति सेसाणि ।
णाणविहीणं दव्वं हियाहियं णेय जाणादि ॥२०५॥

भाषार्थ–जीव है सो तो अन्तरतत्त्व है. बहुरि बाकीके सर्व द्रव्य हैं ते बाह्यतत्त्व हैं. ते ज्ञानकरि रहित हैं सो जो ज्ञानकरि रहित है सो द्रव्य हेय उपादेय वस्तुकूं कैसैं जानै ? भावार्थ–जीवतत्त्वविना सर्व शून्य है तातैं सर्वका जाननेवाला तथा हेय उपादेयका जाननेवाला जीव ही परम तत्त्व है ॥ २०५ ॥

आगें जीव द्रव्यका स्वरूप कहकेंरि अब पुद्गल द्रव्यका स्वरूप कहै हैं,–

सव्वो लोयायासो पुग्गलदव्वेहिं सव्वदो भरिदो ।
सुहमेहिं वायरेहिं य णाणाविहसत्तिजुत्तेहिं ॥२०६॥

भाषार्थ–सर्व लोकाकाश है सो सूक्ष्म वादर जे पुद्गल द्रव्य तिनकरि सर्व प्रदेशनिविषै भरया है. कैसे हैं पुद्गल द्रव्य ? नाना शक्तिकरि सहित हैं. भावार्थ–शरीर आदि अनेकप्रकार परिणमन शक्तिकरि युक्त जे सूक्ष्म वादर पुद्गल तिनिकरि सर्वलोकाकाश भरया है ॥ २०६ ॥

जे इंदिएहिं गिज्झं रूवरसगंधफासपरिणामं ।
तं चिय पुग्गलदव्वं अणंतगुणं जीवरासीदो ॥

भावार्थ—जो रूप रस गन्ध स्पर्श परिणाम स्वरूपकरि इन्द्रियनिके ग्रहण करने योग्य हैं ते सर्व पुद्गल द्रव्य हैं. ते संख्याकरि जीवराशितैं अनन्तगुणे द्रव्य हैं ॥ २०७ ॥

अब पुद्गल द्रव्यकै जीवका उपकारीपणाकूं कहै हैं,—

जीवस्स बहुपयारं उवयारं कुणदि पुग्गलं दव्वं ।
देहं च इंदियाणि य वाणी उस्सासणिस्सासं ।२०८।

भावार्थ—पुद्गल द्रव्य है सो जीवकै बहुत प्रकार उपकार करै है. देह करै है, इन्द्रिय करै है, बहुरि वचन करै है, उस्वास निस्वास करै है. भावार्थ—संसारी जीवकै देहादिक पुद्गल द्रव्यकरि रचित हैं. इनकरि जीवका जीवतव्य है यह उपकार है ॥ २०८ ॥

अण्णं पि एवमाई उवयारं कुणदि जाव संसारं ।
मोहं अणाणमयं पि य परिणामं कुणइ जीवस्स ॥

भावार्थ—पुद्गल द्रव्य है सो जीवकै पूर्वोक्तकूं आदिकरि अन्य भी उपकार करै है. जेतै या जीवकै संसार है तेतैं घणे ही परिणाम करै है. मोहपरिणाम, पर द्रव्यनितैं ममत्व परिणाम, तथा अज्ञानमयी परिणाम, ऐसैं सुख दुःख जीवित मरण आदि अनेक प्रकार करै है. यहां उपकार शब्दका अर्थ किछू परिणाम विशेष करै सो सर्व ही लेणा ॥ २०९ ॥

आगें जीव भी जीवकूं उपकार करै है, ऐसा कहै हैं ।

नाम नामकर्मके उदयसे अपनी अपनी पर्याप्ति ... तक शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं होती तब तक

जीवा वि दु जीवाणं उवयारं कुणइ सव्वपच्चक्खं ।
तत्थ वि पहाणहेओ पुण्णं पावं च णियमेण ॥२१०॥

भावार्थ—जीव हैं ते भी जीवनिके परस्पर उपकार करैं हैं सो यह सर्वके प्रत्यक्ष ही है. सिरदार चाकरके, चाकर सिरदारके, आचार्य शिष्यके, शिष्य आचार्यके, पितामाता पुत्रके, पुत्र पितामाताके, मित्र मित्रके, स्त्री भरतारके इत्यादि प्रत्यक्ष देखिये है. सो तहां परस्परे उपकारकेविषै पुण्यपापकर्म्म नियमकरि प्रधान कारण है ॥ २१० ॥

आगें पुद्गलकैं बडी शक्ति है ऐसा कहै हैं,—

का वि अपुव्वा दीसदि पुग्गलदव्वस्स एरिसी सत्ती ।
केवलणाणसहाओ विणासिदो जाइ जीवस्स ॥२११॥

भावार्थ—पुद्गल द्रव्यकी कोई ऐसी अपूर्व शक्ति देखिये है जो जीवका केवलज्ञानस्वभाव है सो भी जिस शक्तिकरि विनश्या जाय है । भावार्थ—अनन्त शक्ति जीवकी है तामें केवलज्ञानशक्ति ऐसी है कि जाकी व्यक्ति (प्रकाश) होय तब सर्व पदार्थनिकूं एकै काल जानै । ऐसी व्यक्तिकूं पुद्गल नष्ट करै है, न होने दे है, सो यह अपूर्व शक्ति है । ऐसैं पुद्गलद्रव्यका निरूपण किया ।

अब धर्मद्रव्य अर अधर्मद्रव्यका स्वरूप कहै हैं,—

धम्ममधम्मं दव्वं गमणट्ठाणाण कारणं कमसो ।

जीवाण पुग्गलाणं विण्ण वि लोगप्पमाणाणि २१२

भाषार्थ—जीव अर पुद्गल इनि दोऊ द्रव्यनिकूं गमन अवस्थानका सहकारी अनुक्रमतैं कारण हैं, ते धर्म अर अधर्म्म द्रव्य हैं। ते दोऊ ही लोकाकाश परिमाणप्रदेशकूं धरैं हैं। भावार्थ—जीव पुद्गलकूं गमनसहकारी कारण तौ धर्मद्रव्य है अर स्थितिसहकारी कारण अधर्मद्रव्य है। ए दोऊ लोकाकाशप्रमाण हैं।

आगैं आकाशद्रव्यका स्वरूप कहैं हैं,—

सयलाणं दव्वाणं जं दादुं सक्कदे हि अवगासं।
तं आयासं दुविहं लोयालोयाण भेयेण ॥ २१३ ॥

भाषार्थ—जो समस्त द्रव्यनिकौं अवकाश देनेकूं समर्थ है सो आकाश द्रव्य है। सो लोक अलोकके भेदकरि दोय प्रकार है। भावार्थ—जामैं सर्व द्रव्य वसैं ऐसे अवगाहनगुणकूं धरैं है सो यह आकाश द्रव्य है। सो जामैं पांच द्रव्य वसै हैं सो तौ लोकाकाश है अर जामैं अन्य द्रव्य नाहीं सो अलोकाकाश है, ऐसैं दोय भेद हैं।

आगैं आकाशविषै सर्व द्रव्यनिकूं अवगाहन देनेकी शक्ति है तैसी अवकाश देनेकी शक्ति सर्व ही द्रव्यनिमैं है ऐसैं कहैं हैं,—

सव्वाणं दव्वाणं अवगाहणसत्ति अत्थि परमत्थं।
जह भसमपाणियाणं जीवपएसाण जाण बहुआणं ॥

---

१ जो नामकर्मके उदयसे अपनी अपनी पर्याप्ति
२ जब शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं होती तब तक

भाषार्थ—सर्व ही द्रव्यनिकै परस्पर अवगाहना देनेकी शक्ति है। यह निश्चयतैं जाणहु। जैसैं भस्मकैं अर जलकैं अवगाहन शक्ति है तैसैं जीवके असंख्यात प्रदेशनिकै जानू। भावार्थ—जैसैं जलकूं पात्रविषै भरि तामें भस्म डारिये सो समावै। बहुरि तामें मिश्री डारिये सो भी समावै। बहुरि तामें सुई चोपिये सो भी समावै तैसैं अवगाहनशक्ति जाननी। इहां कोई पूछै कि सर्व ही द्रव्यनिमें अवगाहन शक्ति है तो आकाशका असाधारण गुण कैसैं है ? ताका समाधान—जो परस्पर तो अवगाह सर्व ही देहैं तथापि आकाशद्रव्य सर्वतैं बडा है। तातैं यामें सर्व ही समावै यह असाधारणता है।

जदि ण हवदि सा सत्ती सहावभूदा हि सव्वदव्वाणं
एक्केकास पएसे कह ता सव्वाणि वट्टंति ॥ २१५ ॥

भाषार्थ—जो सर्व द्रव्यनिकै स्वभावभूत अवगाहनशक्ति न होय तो एक एक आकाशके प्रदेशविषै सर्व द्रव्य कैसैं वर्त्तैं। भावार्थ—एक आकाश प्रदेशविषैं अनन्त पुद्गलके परमाणु द्रव्य तिष्ठै हैं। एक जीवका प्रदेश एक धर्मद्रव्यका प्रदेश एक अधर्मद्रव्यका प्रदेश एक कालाणुद्रव्य ऐसैं सर्व तिष्ठै हैं सो वह आकाशका प्रदेश एक पुद्गलके परमाणुकी बराबर है सो अवगाहनशक्ति न होय तो कैसैं तिष्ठै ?

आगें कालद्रव्यका स्वरूप कहै हैं,—

सव्वाणं दव्वाणं परिणामं जो करेदि सो कालो।
एक्केकासपएसे सो वट्टदि एक्किको चेव ॥ २१६ ॥

भाषार्थ—जो सर्व द्रव्यनिकै परिणाम करै है सो काल द्रव्य है। सो एक एक आकाशके प्रदेशविषै एक एक कालाणुद्रव्य वर्त्तै है। भावार्थ—सर्व द्रव्यनिके समय समय पर्याय उपजै हैं अर विनसैं हैं सो ऐसे परिणामनकूं निमित्त कालद्रव्य है। सो लोकाकाशके एक एक प्रदेशविषै एक २ कालाणु तिष्ठै है। सो यह निश्चय काल है॥ २१६॥

आगें कहै हैं कि परिणमनेकी शक्ति स्वभावभूत सर्व द्रव्यनिमें है, अन्य द्रव्य निमित्तमात्र हैं—

णियणियपरिणामाणं णियणियदव्वं पि कारणं होदि।
अण्णं बाहिरदव्वं णिमित्तमत्तं वियाणेह॥ २१७॥

भाषार्थ—सर्व द्रव्य अपने अपने परिणामनिके उपादान कारण हैं। अन्य बाह्य द्रव्य हैं सो अन्यके निमित्तमात्र जाणूं। भावार्थ—जैसैं घट आदिकूं माटी उपादान कारण है अर चाक दंडादि निमित्त कारण हैं। तैसैं सर्व द्रव्य अपने पर्यायनिकूं उपादान कारण हैं। कालद्रव्य निमित्त कारण है॥

आगें कहै हैं कि सर्वही द्रव्यनिकै परस्पर उपकार है सो सहकारीकारणभावकरि है—

सव्वाणं दव्वाणं जो उवयारो हवेइ अण्णोणं।
सो च्चिय कारणभावो हवदि हु सहयारिभावेण॥

भाषार्थ—सर्व ही द्रव्यनिकै जो परस्पर उपकार है सो सहकारीभावकरि कारणभाव हो है यह प्रगट है॥ २१८॥

—मैंके उदयसे अपनी अपनी पर्याप्ति
शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं होती तब तक

आगें द्रव्यनिके स्वभावभूत नाना शक्ति हैं ताकौं कौन निषेधि सके है ऐसैं कहै हैं,—

कालाइलद्धिजुत्ता णाणासत्तीहिं संजुदा अत्था ।
परिणममाणा हि सयं ण सक्कदे को वि वारेदुं ॥

भाषार्थ—सर्व ही पदार्थ काल आदि लब्धिकरि सहित भये नाना शक्तिसंयुक्त हैं तैसैं ही स्वयं परिणमै हैं तिनकूं परिणमतै कोई निवारनेकूं समर्थ नाहीं। भावार्थ—सर्व द्रव्य अपने अपने परिणामरूप द्रव्य क्षेत्र काल सामग्रीकूं पाय आप ही भावरूप परिणमै हैं। तिनकूं कोई निवारि न सकै है ॥ २१९ ॥

आगें व्यवहारकालका निरूपण करै हैं,—

जीवाण पुग्गलाणं ते सुहुमा वादरा य पज्जाया ।
तीदाणागदभूदा सो ववहारो हवे कालो ॥ २२० ॥

भाषार्थ—जीव द्रव्य अर पुद्गल द्रव्यके सूक्ष्म तथा बादर पर्याय हैं ते अतीत भये अनागत-आगामी होंयगे, भूत कहिये वर्तमान हैं सो ऐसा व्यवहार काल होय है. भावार्थ—जो जीव पुद्गलके स्थूल सूक्ष्म पर्याय हैं ते अतीतभये तिनिकूं अतीत नाम कह्या. बहुरि जो आगामी होंयगे तिनिकूं अनागत नाम कह्या. बहुरि जो वर्तै हैं तिनिकूं वर्तमान नाम कह्या. इनिकूं जेतीवार लगै है तिसहीकूं व्यवहार काल नाम करि कहिये है. सो जघन्य तौ पर्यायकी स्थिति एक समय

मात्र है बहुरि मध्य उत्कृष्ट अनेक प्रकार है. तहां आकाशके एक प्रदेशतैं दूजे प्रदेशपर्यंत पुद्‌गलका परमाणु मन्दगतिकरि जाय तेता कालकूं समय कहिये. ऐसे जघन्ययुक्ताऽसंख्यात समयकी एक आवली कहिये, संख्यात आवलीके समूहको एक उस्वास कहिये, सात उच्छ्वासका एक स्तोक कहिये, सात स्तोकका एक लव कहिये, साढा अडतीस लवकी एक घटी कहिये, दोय घटीका मुहूर्त कहिये। तीस मूहूर्तका रात दिन कहिए, पनरै अहोरात्रिका पक्ष कहिये, दोय पक्षका मास कहिये, दोय मासका ऋतु कहिये, तीन ऋतुका अयन कहिये, दोय अयनका वर्ष कहिये, इत्यादि पल्यसागर कल्प आदि व्यवहार काल अनेक प्रकार है ॥ २२० ॥

आगे अतीत अनागत वर्तमान पर्यायनिकी संख्या कहै हैं,—

तेसु अतीदा णंता अणंतगुणिदा य भाविपज्जाया।
एक्को वि वट्टमाणो एत्तियमित्तो वि सो कालो ॥२२१॥

भाषार्थ—तिनि द्रव्यनिके पर्यायनिविषै अतीतपर्याय अनन्त हैं. बहुरि अनागत पर्याय तिनितैं अनन्तगुणा हैं वर्त्तमान पर्याय एक ही है. सो जेता पर्याय है, तेता ही सो व्यवहार काल है. ऐसैं द्रव्यनिका निरूपण कीया—

अब द्रव्यनिकै कार्यकारणभावका निरूपण करै हैं,—

पुव्वपरिणामजुत्तं कारणभावेण वट्टदे दव्वं ।

[म]कर्मके उदयसे अपनी अपनी पर्याप्ति
शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं होती तब तक

उत्तरपरिणामजुदं तं चिय कज्जं हवे णियमा ॥२२२॥

भाषार्थ—पूर्व परिणाम सहित द्रव्य है सो कारणरूप है बहुरि उत्तर परिणामयुक्त द्रव्य है सो कार्यरूप नियमकरि है ॥ २२२ ॥

आगें वस्तुकै तीनं कालविषै ही कार्यकारणभावका निश्चय करै हैं,—

कारणकज्जविसेसा तिस्सु वि कालेसु होंति वत्थूणं ।
एक्केक्कम्मि य समये पुव्वुत्तरभावमासिज्ज ॥२२३॥

भाषार्थ—वस्तुनिकै पूर्व अर उत्तर परिणामकौं पायकरि तीनूं ही कालविषै एक एक समयविषै कारण कार्यके विशेष होय हैं. भावार्थ—वर्त्तमान समयमें जो पर्याय है सो पूर्वसमय सहित वस्तुका कार्य है. तैसें ही सर्व पर्याय जाननी. ऐसें समय २ कार्यकारणभावरूप है ॥ २२३ ॥

आगें वस्तु है सो अनंतधर्मस्वरूप है ऐसा निर्णय करै हैं—

संति अणंताणंता तीसु वि कालेसु सव्वदव्वाणि ।
सव्वं पि अणेयंतं तत्तो भणिदं जिणिंदेहिं ॥२२४॥

भाषार्थ—सर्व द्रव्य हैं ते तीनूं ही कालमें अनंतानंत हैं अनन्त पर्यायनिसहित हैं तातैं जिनेन्द्र देवने सर्व ही वस्तु अनेकांत कहिये अनंतधर्मस्वरूप कहा है ॥ २२४ ॥

आगैं कहै हैं जो अनेकांतात्मक वस्तु है सो अर्थक्रियाकारी है,—

जं वत्थु अणेयंतं तं चिय कज्जं करेइ णियमेण।
बहुधम्मजुदं अत्थं कज्जकरं दीसए लोए ॥२२५॥

भाषार्थ—जो वस्तु अनेकांत है अनेक धर्मस्वरूप है सो ही नियमकरि कार्य करै है. लोकविषैं बहुतधर्मकरियुक्त पदार्थ है सो ही कार्य करनेवाला देखिये है. भावार्थ—लोकविषैं नित्य अनित्य एक अनेक भेद इत्यादि अनेक धर्मयुक्त वस्तु हैं सो कार्यकारी दीखै हैं जैसे माटीके घट आदि अनेक कार्य बणै हैं सो सर्वथा मांटो एक रूप तथा नित्यरूप तथा अनेक अनित्य रूप ही होय तौ घट आदि कार्य बणै नाहीं, तैसैं ही सर्व वस्तु जानना ॥ २२५ ॥

आगें सर्वथा एकान्त वस्तुकै कार्यकारीपणा नाहीं है ऐसैं कहै हैं,—

एयंतं पुणु दव्वं कज्जं ण करेदि लेसमित्तं पि।
जं पुणु ण करेदि कज्जं तं वुच्चदि केरिसं दव्वं ॥२२६॥

भाषार्थ—वहुरि एकांत स्वरूप द्रव्य है सो लेशमात्र भी कार्यकूं नाहीं करै है, वहुरि जो कार्य ही न करै सो कैसा द्रव्य है. वह तो—शून्यरूपसा है. भावार्थ—जो अर्थक्रियास्वरूप होय सो ही परमार्थरूप वस्तु कह्या है अर जो अर्थक्रियारूप नाहीं सो आकाशके फूलकी ज्यों शून्यरूप है ॥ २२६ ॥

आगें सर्वथा नित्य एकांतविषैं अर्थक्रियाकारीपणाका अभाव दिखावै हैं,—

नामकर्मके उदयसे अपनी अपनी पर्याप्ति तक शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं होती तब तक

परिणामेण विहीणं णिच्चं दव्वं विणस्सदे णेयं ।

णो उप्पज्जदि य सया एवं कज्जं कहं कुणइ ॥२२७॥

भाषार्थ—परिणामकरिहीण जो नित्य द्रव्य, सो विनसै नहीं, तब कार्य कैसैं करै ? अर जो उपजै विनशै तो नित्यपणा नाहीं ठहरै. ऐसैं कार्य न करै सो वस्तु नाहीं है २२७

आगें पुनः क्षणस्थायीकै कार्यका अभाव दिखावै हैं—

पज्जयमित्तं तच्चं विणस्सरं खणे खणे वि अण्णण्णं ।

अण्णइदव्वविहीणं ण य कज्जं किं पि साहेदि ॥२२८॥

भाषार्थ— जो क्षणस्थायी पर्यायमात्र तत्त्व क्षणक्षणमैं अन्य अन्य होय ऐसा विनश्वर मानिये तौ अन्वयीद्रव्यकरि रहित हूवा संता कार्य किछू भी नाहीं साधै है. क्षणस्थायी विनश्वरकै काहेका कार्य्य ॥ २२८ ॥

आगें अनेकान्तवस्तुकै कार्यकारणभाव बणै है सो दिखावै हैं,—

णवणवकज्जविसेसा तीसु वि कालेसु होंति वत्थूणं ।

एक्केक्कम्मि य समये पुव्वुत्तरभावमासिज्ज ॥२२९॥

भाषार्थ—जीवादिक वस्तुनिकै तीनूही कालविषैं एक एक समयविषै पूर्वउत्तरपरिणामका आश्रयकरि नवे नवे कार्यविशेष होय हैं नवे नवे पर्याय उपजै हैं ॥ २२९ ॥

आगैं पूर्वोत्तरभावकैं कारणकार्य्यभावकूं दृढ करै हैं—

पुव्वपरिणामजुत्तं कारणभावेण वट्टदे दव्वं ।

उत्तरपरिमाणजुदं तं चिय कज्जं हवे णियमा ॥ २३० ॥

भाषार्थ—पूर्वपरिणामकरियुक्त द्रव्य है सो तौ कारण-भावकरि वर्त्तै है बहुरि सो ही द्रव्य उत्तरपरिणामकरि युक्त होय तब कार्य होय है. यह नियमतैं जाणूं. भावार्थ— जैसैं मांटीका पिंड तौ कारण है अर ताका घट बण्या सो कार्य है. तैसैं पहले पर्यायका स्वरूप कहि अब जीव पिछले पर्याय सहित भया तब सो ही कार्यरूप भया. ऐसैं नियम है ऐसैं वस्तुका स्वरूप कहिये है ॥ २३० ॥

अब जीव द्रव्यकै भी तैसैं ही अनादिनिधन कार्यका-रणभाव साधै हैं—

जीवो अणाइणिहणो परिणयमाणो हु णवणवं भावं ।
सामग्गीसु पवट्टदि कज्जाणि समासदे पच्छा ॥२३१॥

भाषार्थ—जीव द्रव्य है सो अनादिनिधन है सो नवे नवे पर्यायनिरूप प्रगट परिणमै है. सो पहले द्रव्य क्षेत्र काल भावकी सामग्रीविषै वर्त्तै है. पीछैं कार्यनिकूं पर्यायनिकूं प्राप्त होयहै। भावार्थ—जैसैं कोई जीव पहले शुभ परिणामरूप प्रवर्त्तै पीछैं स्वर्ग पावै तथा पहलै अशुभ परिणामरूप प्रवर्त्तै पीछैं नरक आदि पर्याय पावे ऐसैं जानना ॥ २३१ ॥

आगैं जीवद्रव्य अपने द्रव्यक्षेत्रकालभावविषै तिष्ठ्या ही नवे पर्यायरूप कार्यकूं करै ऐसैं कहै हैं—

ससरूवत्थो जीवो कज्जं साहेदि वट्टमाणं पि ।

नामकर्मके उदयसे अपनी अपनी पर्याप्ति
तक शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं होती तब तक.

खित्ते एकम्मि ठिदो णियदव्वं संठिदो चेव ॥२३२॥

भावार्थ–जीव द्रव्य है सो अपने चैतन्यस्वरूपविषै तिष्ठ्या अपने ही क्षेत्रविषै तिष्ठ्या अपने ही द्रव्यमें तिष्ठता अपने परिणामनरूप समयविषै अपनी पर्यायस्वरूप कार्यकूं साधै है. भावार्थ–परमार्थतैं विचारिये तव अपने द्रव्य क्षेत्रकालभावस्वरूप होता संता जीव पर्यायस्वरूप कार्यरूप परिणमै है पर द्रव्यक्षेत्रकालभाव हैं सो निमित्तमात्र हैं ॥ २३२ ॥

आगें अन्यस्वरूप होय कार्य करे तौ तामें दूषण दिखावे हैं—

ससरूवत्थो जीवो अण्णसरूवम्मि गच्छए जदि हि ।
अण्णुण्णमेलणादो इक्कसरूवं हवे सव्वं ॥ २३३ ॥

भावार्थ–जो जीव अपने स्वरूपविषै तिष्ठता पर स्वरूपविषै जाय तौ परस्पर मिलनेतैं सर्व द्रव्य एकस्वरूप होय जाय, तहां वडा दोष आवे. सो एकस्वरूप कदाचित होय नाहीं यह प्रगट है ॥ २३३ ॥

आगें सर्वथा एकस्वरूप माननेमें दूषण दिखावे हैं—

अहवा बंभसरूवं एक्कं सव्वं पि मण्णदे जदि हि ।
चंडालबंभणाणं तो ण विसेसो हवे कोई ॥२३४॥

भावार्थ–जो सर्वथा एक ही वस्तु मानि ब्रह्मका स्वरूपरूप सर्व मानिये तौ ब्राह्मण अर चाण्डालका किछू भी भेद न ठहरे. भावार्थ–एक ब्रह्मस्वरूप सर्व जगतकूं मानिये

तौ नानारूप न ठहरे. वहुरि अविद्याकरि नाना दीखता माने तौ अविद्या उत्पन्न कोनतैं भई कहिये ! जो ब्रह्मतैं भई कहिये तौ ब्रह्मतैं भिन्न भई कि अभिन्न भई, अथवा सतरूप है कि असत्‌रूप है कि एकरूप है कि अनेक रूप है. ऐसैं विचार कीये कछू ठहरना नहीं तातैं वस्तुका स्वरूप अनेकांत ही सिद्ध होय है सो ही सत्यार्थ है ॥ २३४ ॥

आगें अणुमात्र तत्त्वकूं माननेमें दूषण दिखावैं हैं—

अणुपरिमाणं तच्चं अंसविहीणं च मण्णदे जदि हि ।
तो संबंधाभावो तत्तो वि ण कज्जसंसिद्धि ॥२३५॥

भाषार्थ—जो एक वस्तु सर्वगत व्यापक न मानिये अर अंशकरि रहित अणुपरिणाम तत्त्व मानिये तौ दोय अंशके तथा पूर्वोत्तर अंशके सम्बन्धका अभावतैं अणुमात्र वस्तुतैं कार्यकी सिद्धि नाहीं होय है. भावार्थ—निरंश क्षणिक निरन्वयी वस्तुके अर्थक्रिया होय नाहीं, तातैं सांश नित्य अन्वयी वस्तु कथंचित् मानना योग्य है ॥ २३५ ॥

आगें द्रव्यके एकत्वपणा निश्चय करैं हैं—

सव्वाणं दव्वाणं दव्वसरूवेण होदि एयत्तं ।
णियणियगुणभेएण हि सव्वाणि वि होंति भिण्णाणि

भावार्थ—सर्व ही द्रव्यनिके द्रव्यस्वरूपकरि तौ एकत्वपणा है वहुरि अपने अपने गुणके भेदकरि सर्व द्रव्य भिन्न भिन्न हैं. भावार्थ—द्रव्यका लक्षण उत्पाद व्यय ध्रौव्यस्वरूप

।।५२.मैंके उदयसे अपनी अपनी पर्याप्ति तक शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं होती तब तक

सत् है सो इस स्वरूपकरि तौ सर्वके एकपणा है. वहुरि अपने अपने गुण चेतनपणा जडपणा आदि भेदरूप हैं. तातैं गुणके भेदतैं सर्व द्रव्य न्यारे २ हैं. तथा एक द्रव्यके त्रिकालवर्ती अनन्तपर्याय हैं सो सर्व पर्यायनिविषै द्रव्य स्वरूपकरि तौ एकता ही है. जैसे चेतनके पर्याय सर्व ही चेतन स्वरूप हैं. वहुरि पर्याय अपने अपने स्वरूपकरि भिन्न भी हैं. भिन्न कालवर्त्ती भी हैं. तातैं भिन्न २ भी कहिये. तिनके प्रदेश भेद भी नाहीं तातै एक ही द्रव्यके अनेक पर्याय हो हैं यामैं विरोध नाहीं ॥ २३६ ॥

आगें द्रव्यकैं गुणपर्यायस्वभावपणा दिखावे हैं,—

जो अत्थो पडिसमयं उप्पादव्वयधुवत्तसब्भावो ।
गुणपज्जयपरिणामो सत्तो सो भण्णदे समये ॥२३७॥

भाषार्थ—जो अर्थ कहिये वस्तु है सो समय समय उत्पाद व्यय ध्रुवपणाके स्वभावरूप है सो गुणपर्यायपरिणामस्वरूप सत्त्व सिद्धांतविषै कहै हैं. भावार्थ—जे जीव आदि वस्तु हैं ते उपजना विनसना अर थिर रहना इन तीनूं भावमयी हैं. अर जो वस्तु गुणपर्याय परिणामस्वरूप है सो ही सत् हैं. जैसैं जीवद्रव्यका चेतनागुण है तिसका स्वभाव विभावरूप परिणमन है. तैसैं समय समय परिणामैं हैं ते पर्याय हैं. तैसैं ही पुद्गलका स्पर्श रस गन्धवर्ण गुण हैं ते स्वभावविभावरूप समय समय परिणमै हैं ते पर्याय हैं. ऐसैं सर्व द्रव्य गुणपर्यायपरिणामस्वरूप प्रगटैं हैं।

आगें द्रव्यनिके व्यय उत्पाद कहा है सो कहै हैं,—

पडिसमयं परिणामो पुव्वो णस्सेदि जायदे अण्णो ।
वत्थुविणासो पढमो उववादो भण्णदे विदिओ ॥२३८॥

भावार्थ—जो वस्तुका परिणाम समयसमयप्रति पहलै तो विनसै है अर अन्य उपजै है सो पहला परिणामरूप वस्तुका तौ नाश है, व्यय है. अर अन्य दूसरा परिणाम उपज्या ताकूं उत्पाद कहिये. ऐसैं व्यय उत्पाद होय हैं ।

आगें द्रव्यकै ध्रुवपणाका निश्चय कहै हैं,—

णो उप्पजदि जीवो दव्वसरूवेण णेयं णस्सेदि ।
तं चेव दव्वमित्तं णिच्चत्तं जाण जीवस्स ॥ २३९ ॥

भाषार्थ—जीव द्रव्य है सो द्रव्यस्वरूपकरि नाशकूं प्राप्त न होय है अर नाहीं उपजै है सो द्रव्यमात्रकरि जीवकै नित्यपणा जाणूं. भावार्थ—यह ही ध्रुवपणा है जो जीव सत्ता अर चेतनताकरि उपजै विनसै नाहीं, नवा जीव कोई नाहीं उपजै है विनसै भी नाहीं है ॥ २३९ ॥

आगें द्रव्यपर्यायका स्वरूप कहै हैं,—

अण्णइरूवं दव्वं विसेसरूवो हवेइ पज्जाओ ।
दव्वं पि विसेसेण हि उप्पज्जदि णस्सदे सतदं ॥२४०॥

भाषार्थ—जीवादिक वस्तु अन्वयरूपकरि द्रव्य है सो ही विशेषकरि पर्याय है. बहुरि विशेषरूपकरि द्रव्य भी निरंतर उपजै विनसै हैं. भावार्थ—अन्वयरूप पर्यायनिविषै सामान्य

१पद्धर्मके उदयसे अपनी अपनी पर्याप्ति क शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं होती तब तक

भावकौं द्रव्य कहिये. अर विशेष भाव हैं ते पर्याय हैं. सो विशेषरूपकरि द्रव्य भी उत्पादव्ययस्वरूप कहिये. ऐसा नाहीं कि पर्याय द्रव्यतैं जुदा ही उपजै विनसै है किंतु अभेद विवक्षातैं द्रव्य ही उपजै विनसै है. भेदविवक्षातैं जुदे भी कहिये.

आगैं गुणका स्वरूप कहै हैं,—

सरिसो जो परिमाणो अणाइणिहणो हवे गुणो सो हि ।
सो सामण्णसरूवो उप्पज्जदि णस्सदे णेय ॥ २४१ ॥

भाषार्थ—जो द्रव्यका परिणाम सदृश कहिये पूर्व उत्तर सर्व पर्यायनिविषै समान होय अनादिनिधन होय सो ही गुण है. सो सामान्यस्वरूपकरि उपजै विनसै नाहीं है. भावार्थ—जैसैं जीवद्रव्यका चैतन्य गुण सर्व पर्यायनिमें विद्यमान है अनादिनिधन है सो सामान्यस्वरूपकरि उपजै विनसै नाहीं है. विशेषरूपकरि पर्यायनिमें व्यक्तिरूप होय ही है, ऐसा गुण है. तैसैं ही अपना अपना साधारण असाधारण गुण सर्व द्रव्यनिमें जानना ।

आगैं कहै हैं गुणभास विशेषस्वरूपकरि उपजै विनसै है गुणपर्यायनिका एकपणा है सो ही द्रव्य है,—

सो वि विणस्सदि जायदि विसेसरूवेण सव्वदव्वेसु ।
दव्वगुणपज्जयाणं एयत्तं वत्थु परमत्थं ॥ २४२ ॥

भाषा—जो गुण है सो भी द्रव्यनिविषै विशेषरूपकरि

उपजै विनसै है ऐसैं द्रव्यगुणपर्यायनिका एकत्वपणा है सो ही परमार्थभूत वस्तु है. भावार्थ—गुणका स्वरूप ऐसा नाहीं जो वस्तुतैं न्यारा ही है. नित्यरूप सदा रहै है. गुण गुणीकै कथंचित् अभेदपणा है, तातैं जे पर्याय उपजै विनसै हैं ते गुणगुणीके विकार हैं तातैं गुण उपजते विनसते भी कहिये. ऐसा ही नित्यानित्यात्मक वस्तुका स्वरूप है. ऐसैं द्रव्यगुणपर्यायनिकी एकता सो ही परमार्थरूप वस्तु है २४२

आगैं आशंका उपजै है जो द्रव्यनिविषै पर्याय विद्यमान उपजै है कि अविद्यमान उपजै है ? ऐसी आशकाकूं दूरि करैहैं,—

जदि दव्वे पज्जाया वि विज्जमाणा तिरोहिदा संति।
ता उप्पत्ती विहला पडपिहिदे देवदत्तिव्व ॥२४३॥

भाषार्थ—जो द्रव्यविषै पर्याय हैं ते भी विद्यमान हैं अर तिरोहित कहिये ढके हैं ऐसा मानिये तौ उत्पत्ति कहना विफल है, जैसैं देवदत्त कपडासूं ढक्या था ताकौं उघाड्या तब कहैं कि यह उपज्या सो ऐसा उपजना कहना तो परमार्थ नाहीं विफल है, तैसैं द्रव्यपर्याय ढकीकौं उघडीकौं उपजती कहना परमार्थ नाहीं, तातैं अविद्यमानपर्यायकी ही उत्पत्ति कहिये ॥ २४३ ॥

सव्वाण पज्जयाणं अविज्जमाणाण होदि उप्पत्ती।
कालाईलद्धीए अणाइणिहणम्मि दव्वम्मि ॥२४४॥

कर्मके उदयसे अपनी अपनी पर्याप्ति शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं होती तब तक

भाषार्थ—अनादि निधन द्रव्यविषै काल आदि लब्धि-करि सर्व पर्यायनिकी अविद्यमानकी ही उत्पत्ति है. भावार्थ—अनादिनिधन द्रव्यविषै काल आदि लब्धिकरि पर्याय अविद्यमान कहिये अणछती उपजै हैं. ऐसैं नाहीं कि सर्व पर्याय एक ही समय विद्यमान हैं ते ढकते जाय हैं. समय समय क्रमतैं नवे नवे ही उपजै हैं. द्रव्य त्रिकालवर्ती सर्व पर्यायनिका समुदाय है, कालभेदकरि क्रमतैं पर्याय होय हैं ॥

आगैं द्रव्य पर्यायनिकै कथंचित् भेद कथंचित् अभेद दिखावै हैं,—

दव्वाणपज्जयाणं धम्मविवक्खाइ कीरए भेओ ।
वत्थुसरूवेण पुणो ण हि भेओ सक्कदे काउं ॥२४५॥

भाषार्थ—द्रव्यकै अर पर्यायकै धर्मधर्मीकी विवक्षाकरि भेद कीजिये है बहुरि वस्तुस्वरूपकरि भेद करनेकूं नाहीं समर्थ हूजिये है. भावार्थ—द्रव्यपर्यायकै धर्म धर्मीकी विवक्षाकरि भेद करिये है. द्रव्य धर्मी है पर्याय धर्म है बहुरि वस्तुकरि अभेद ही है. केई नैयायिकादिक धर्मधर्मीकै सर्वथा भेद मानै हैं तिनका मत प्रमाणबाधित है ॥ २४५ ॥

आगैं द्रव्यपर्यायकै सर्वथा भेद मानै हैं तिनकूं दूषण दिखावै हैं,—

जदि वत्थुदो विभेदो पज्जयदव्वाण मण्णसे मूढ ।
तो णिरवेक्खा सिद्धी दोह्णं पि य पावदे णियमा ॥२४६॥

भाषार्थ—द्रव्य पर्यायकै भेद मानै ताकूं कहै हैं कि—हे मूढ ! जो तू द्रव्यकै अर पर्यायकै वस्तुतैं भी भेद मानै है तो द्रव्य अर पर्याय दोऊकैं निरपेक्षासिद्धि नियमकरि प्राप्त होय है. भावार्थ—द्रव्यपर्याय न्यारे न्यारे वस्तु ठहरैं हैं. धर्मधर्मीपणा नाहीं ठहरै है ॥ २४६ ॥

आगें विज्ञानको ही अद्वैत कहै हैं अर बाह्य पदार्थ नाहीं मानैं है तिनकूं दूषण बतावै हैं,—

जदि सव्वमेव णाणं णाणारूवेहिं संठिदं एक्कं ।
तो ण वि किंपि वि णेयं णेयेण विणा कहं णाणं ॥२४७॥

भाषार्थ—जो सर्व वस्तु एक ज्ञान ही है सो ही नानारूपकरि स्थित है तिष्ठै है. तो ऐसैं मानै ज्ञेय किछू भी न ठहरया. बहुरि ज्ञेय विना ज्ञान कैसैं ठहरै. भावार्थ—विज्ञानाद्वैतवादी बौद्धमती कहै हैं जो ज्ञानमात्र ही तत्त्व है सो ही नानारूप तिष्ठै है. ताकूं कहिये जो ज्ञानमात्र ही है तो ज्ञेय किछू भी नाहीं. अर ज्ञेय नाहीं तब ज्ञान कैसैं कहिये ? ज्ञेयकूं जाणै सो ज्ञान कहावै. ज्ञेयविना ज्ञान नाही. ॥ २४७ ॥

घडपडजडदव्वाणि हि णेयसरूवाणि सुप्पसिद्धाणि ।
णाणं जाणेदि यदो अप्पादो भिण्णरूवाणि ॥२४८॥

भाषार्थ—घट पट आदि समस्त जडद्रव्य ज्ञेयस्वरूपकरि भलेप्रकार प्रसिद्ध हैं. तिनकूं ज्ञान जाणै है. तातैं ते आत्मातैं ज्ञानतैं भिन्नरूप न्यारे तिष्ठैं हैं । भावार्थ—ज्ञेयपदार्थ जडद्रव्य

---

१. कर्मके उदयसे अपनी अपनी पर्याप्ति
.. शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं होती तब तक

न्यारे न्यारे आत्मातैं भिन्नरूप प्रसिद्ध हैं, तिनकूं लोप कैसें करिये ? जो न मानिये तो ज्ञान भी न ठहरे. जाने विना ज्ञान काहेका ? ।। २४८ ।।

जं सव्वलोयसिद्धं देहं गेहादिवाहिरं अत्थं ।
जो तंपि णाण मण्णादि ण मुणादि सो णाणणामं पि ।।

भाषार्थ–जो देह गेह आदि बाह्य पदार्थ सर्व लोकप्रसिद्ध हैं तिनकूं भी जो ज्ञान ही माने तो वह वादी ज्ञानका नाम भी जाने नाहीं. भावार्थ–बाह्य पदार्थकूं भी ज्ञान ही माननेवाला ज्ञानका स्वरूप नाहीं जाणया सो तो दूरि ही रहो ज्ञानका नाम भी नाहीं जानै है ।। २४९ ।।

आगें नास्तित्ववादीके प्रति कहै हैं,—

अच्छीहिं पिच्छमाणो जीवाजीवादि बहुविहं अत्थं ।
जो भणदि णत्थि किंचि वि सो झुट्ठाणं महाझुट्ठो ।।

भाषार्थ–जो नास्तिक वादी जीव अजीव आदि बहुत प्रकारके अर्थनिकूं प्रत्यक्ष नेत्रनिकरि देखतो संतो भी कहै किछू भी नाहीं है सो असत्यवादीनिमें महा असत्यवादी है भावार्थ–दीखती वस्तुकूं भी नाहीं बतावै सो महाझूठा है ।

जं सव्वं पि य संतं तासो वि असंतउं कहं होदि ।
णत्थित्ति किंचि तत्तो अहवा सुण्णं कहं मुणदि ।।

भाषार्थ–जो सर्व वस्तु सत्‌रूप है विद्यमान है सो वस्तु

असत्यरूप अविद्यमान कैसैं होय अथवा किछू भी नाहीं है ऐसौ तो शून्य है ऐसा भी कैसैं जानैं. भावार्थ—छती वस्तु अणछती कैसैं होय तथा किछू भी नाहीं है तौ ऐसा कहनेवाला जाननेवाला भी नाहीं ठहरचा. तव शून्य है ऐसा कौन जाणैं ॥ २५१ ॥

आगें इस ही गाथाका पाठान्तर है सो इस प्रकार है,

जदि सव्वं पि असंतं तासो वि य संतउ कहं भणदि ।
णत्थिाचि किं पि तच्चं अहवा सुण्णं कहं मुणदि ॥

भाषार्थ—जो सर्व ही वस्तु असत् है तो वह ऐसैं कहनेवाला नास्तिकवादी भी असत्तरूप ठहरचा तव किछु भी तत्त्व नाही है ऐसैं कैसैं कहै है. अथवा कहैं भी नाही सो शून्य है ऐसैं कैसैं जानै है. भावार्थ—आप छता है और कहै कि कछू भी नाहीं सो यह कहना तो वडा अज्ञान है. तथा शून्यतत्त्व कहना तो प्रलाप ही है कहनेवाला ही नाही तव कहै कौन ? सो नास्तित्ववादी प्रलापी है ॥ २५१ ॥

किं बहुणा उत्तेण य जित्तियमेत्ताणि संति णामाणि ।
तित्तियमेत्ता अत्था संति हि णियमेण परमत्था २५२

भाषार्थ—बहुत कहनेकरि कहा ? जेता नाम है तेता ही नियमकरि पदार्थ परमार्थ रूप हैं. भावार्थ—जेते नाम हैं तेते सत्यार्थ पदार्थ हैं. बहुत कहनेकरि पूरी पडो. ऐसैं पदार्थका कहया ॥ २५२ ॥

र्मके उदयसे अपनी अपनी पर्याप्ति
र १५५ ।स पूर्ण नहीं होती तव तक

अब तिनि पदार्थनिका जाननेवाला ज्ञान है ताका स्वरूप कहै हैं,—

णाणाधम्मेहिं जुदं अप्पाणं तह परं पि णिच्छयदो ।
जं जाणेदि सजोगं तं णाणं भण्णए समये ॥ २५३ ॥

भाषार्थ—जो नाना धर्म्मनि सहित आत्मा तथा पर द्रव्यनिकूं अपने योग्यकूं जाणै सो निश्चयतैं सिद्धान्तविषै ज्ञान कहिये. भावार्थ—जो आपकूं तथा परकूं अपने आवरणके क्षयोपशम तथा क्षयके अनुसार जाननेयोग्य पदार्थकूं जानै सो ज्ञान है. यह सामान्य ज्ञानका स्वरूप कह्या ॥ २५३ ॥

अब सर्वप्रत्यक्ष जो केवलज्ञान ताका स्वरूप कहै हैं,—

जं सव्वं पि पयासदि दव्वपज्जायसंजुदं लोयं ।
तह य अलोयं सव्वं तं णाणं सव्वपच्चक्खं ॥ २५४ ॥

भाषार्थ—जो ज्ञान द्रव्यपर्यायसंयुक्त लोककूं तथा अलोककूं सर्वकूं प्रकाशकै जाणै सो सर्वप्रत्यक्ष केवलज्ञान है ॥

आगें ज्ञानकूं सर्वगत कहै हैं—

सव्वं जाणदि जह्मा सव्वगयं तं पि वुच्चदे तह्मा ।
ण य पुण विसरदि णाणं जीवं चइऊण अण्णत्थ २५५

भाषार्थ—जातैं ज्ञान सर्व लोकालोककूं जाणै है तातैं ज्ञानकूं सर्वगत भी कहिये है. बहुरि ज्ञान है सो जीवकूं छोडि करि अन्य जे ज्ञेय पदार्थ तिनिविषै न जाय है. भावार्थ—ज्ञान सर्व लोकालोककूं जानै है. यातैं सर्वगत तथा सर्वव्याप-

जो ज्ञान है सो तिनिकी प्रवृत्ति युगपत् नाहीं एककाल एक ही ज्ञानसूं उपयुक्त होय है. जब यह जीव घटकूं जानै तिस काल पटकूं नाहीं जानै, ऐसैं क्रमरूप ज्ञान है ॥ २५९ ॥

आगें इन्द्रियमनसम्बन्धी ज्ञानकी क्रमतैं प्रवृत्ति कही तहां आशंका उपजै है जो इन्द्रियनिका ज्ञान एककाल है कि नाहीं ? ताकी आशंका दूरि करनेकौं कहै हैं,—

एक्के काले एगं णाणं जीवस्स होदि उवजुत्तं ।
णाणाणाणाणि पुणो लद्धिसहावेण वुच्चंति ॥ २६० ॥

भावार्थ—जीवकै एक कालमें एक ही ज्ञान उपयुक्त कहिये उपयोगकी प्रवृत्ति होय है. बहुरि लब्धिस्वभावकरि एक काल नाना ज्ञान कहे हैं. भावार्थ—भाव इन्द्रिय दोय प्रकारकी कही है· लब्धिरूप, उपयोगरूप. तहां ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमतैं आत्माकै जाननेकी शक्ति होय सो लब्धि कहिये सो तो पांच इन्द्रिय अर मन द्वारा जाननेकी शक्ति एककालही तिष्ठै है. बहुरि तिनिकी व्यक्तिरूप उपयोगकी प्रवृत्ति है सो ज्ञेयसूं उपयुक्त होय है तब एक काल एकहीसूं होय है ऐसी ही क्षयोपशमकी योग्यता है ॥ २६० ॥

आगें वस्तुकै अनेकात्मपणा है तौऊ अपेक्षातैं एकात्मपणा भी है ऐसैं दिखावे हैं,—

जं वत्थु अणेयंतं एयंतं तं पि होदि सविपेक्खं ।
सुयणाणेण णयेहिं य णिरविक्खं दीसए णेव ॥ २६१ ॥

र्मके उदयसे अपनी अपनी पर्याप्ति
रीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं होती तब तक

भाषार्थ—जो वस्तु अनेकान्त है सो अपेक्षासहित एकान्त भी है तहां श्रुतज्ञान जो प्रमाण ताकरि साधिये तौ अनेकान्त ही है. वहुरि श्रुतज्ञान प्रमाणके अंश जे नय तिनिकरि साधिये तब एकान्त भी है. सो अपेक्षारहित नाहीं है जातैं निरपेक्ष नय मिथ्या हैं. निरपेक्षातैं वस्तुका रूप नाहीं देखिये है. भावार्थ—प्रमाण तौ वस्तुके सर्व धर्मकौं एक काल साधै है अर नय हैं ते एक एक धर्महीकौ ग्रहण करै हैं तातैं एकनयके दूसरी नयकी सापेक्षा होय तौ वस्तु सधै अर अपेक्षारहित नय वस्तुकौं साधै नाहीं, तातैं अपेक्षातैं वस्तु अनेकान्त भी है ऐसे जानना ही सम्यग्ज्ञान है ॥२६१॥

आगैं श्रुतज्ञान परोक्षपणै सर्वकूं प्रकाशै है यह कहै हैं,—

सव्वं पि अणेयंतं परोक्खरूवेण जं पयासेदि ।
तं सुयणाणं भण्णदि संसयपहुदीहिं परिचित्तं॥२६२॥

भाषार्थ—जो ज्ञान सर्व वस्तुकूं अनेकान्त परोक्षरूपकरि प्रकाशै जाणैं कहै सो श्रुतज्ञान है। सो कैसा है संशयविपर्यय अनध्यवसायकरि रहित है। ऐसा सिद्धांतमें कहै हैं। भावार्थ—जो सर्व वस्तुकूं परोक्षरूपकरि अनेकान्त प्रकाशै सो श्रुतज्ञान है। शास्त्रके वचन सुननेतैं अर्थको जाने सो परोक्ष ही जाने अर शास्त्रमें सर्व ही वस्तुका अनेकान्तात्मक स्वरूप कह्या है सो सर्व ही वस्तुकूं जाने। वहुरि गुरुनिके उपदेशपूर्वक जाने तव संशयादिक भी न रहै ॥ २६२ ॥

आगें श्रुतज्ञानके विकल्प जे भेद ते नय हैं तिनिका

स्वरूप कहै हैं,—

लोयाणं ववहारं धम्मविवक्खाइ जो पसाहेदि।
सुयणाणस्स वियप्पो सो वि णओ लिंगसंभूदो २६३

भाषार्थ—जो लोकनिका व्यवहारकूं वस्तुका एक धर्मकी विवक्षाकरि साधै सो नय है सो कैसा है श्रुतज्ञानका विकल्प कहिये भेद है बहुरि लिंगकरि उपज्या है। भावार्थ—वस्तुका एक धर्मकी विवक्षा ले लोकव्यवहारकूं साधै सो श्रुतज्ञानका अंश नय है. सो साध्य जो धर्म ताकूं हेतुकरि साधै है. जैसैं वस्तुका सत् धर्मकूं ग्रहणकरि याकूं हेतुकरि साधै जो अपनं द्रव्य क्षेत्र काल भावतैं वस्तु सत्रूप है ऐसैं नय हेतुतैं उपजै है।

आगैं एक धर्मकूं नय कैसैं ग्रहण करै है सो कहै हैं,—

णाणाधम्मजुदं पि य एयं धम्मं पि वुच्चदे अत्थं।
तस्सेयविवक्खादो णत्थि विवक्खा हु सेसाणं २६४

भाषार्थ—नाना धर्मकरि युक्त पदार्थ है तोऊ एक धर्मरूप पदार्थको कहै जातैं एक धर्मकी जहां विवक्षा करै तहां तिसही धर्मकूं कहै अवशेष सर्व धर्मकी विवक्षा नाहीं करै है. भावार्थ—जैसैं जीव वस्तुविषै अस्तित्व नास्तित्व नित्यत्व अनित्यत्व एकत्व अनेकत्व चेतनत्व अमूर्त्तत्व आदि अनेक धर्म हैं तिनिमैं एक धर्मकी विवक्षाकरि कहै जो जीव चेतनस्वरूप ही है इत्यादि, तहां अन्य धर्मकी विवक्षा नाहीं करै

नामकर्मके उदयसे अपनी अपनी पर्याप्ति तक शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं होती तब तक

तहां ऐसा न जानना जो अन्यधर्मनिका अभाव है किंतु प्रयोजनके आश्रय एक धर्मकूं मुख्यकरि कहै है, अन्यकी विवक्षा नाहीं है ।

आगें वस्तुका धर्मकूं अर तिसके वाचक शब्दकूं अर तिसके ज्ञानकूं नय कहै हैं,—

सो चिय इक्को धम्मो वाचयसद्दो वि तस्स धम्मस्स ।
तं जाणदि तं णाणं ते तिण्णि वि णयविसेसा य २६५

भावार्थ—जो वस्तुका एक धर्म बहुरि तिस धर्मका वाचक शब्द बहुरि तिस धर्मकूं जानने वाला ज्ञान ए तीनू ही नयके विशेष हैं. भावार्थ—वस्तुका ग्राहक ज्ञान अर ताका वाचक शब्द अर वस्तु इनकूं जैसें प्रमाणस्वरूप कहिये तैसें ही नय कहिये ।

आगें पूछै हैं कि वस्तुका एक धर्म ही ग्रहण करै ऐसा जो एक नय ताकूं मिथ्यात्व कैसैं कह्या है ताका उत्तर कहै हैं,—

ते साविक्खा सुणया णिराविक्खा ते वि दुण्णया होंति
सयलववहारसिद्धी सुणयादो होदि णियमेण २६६

भावार्थ—ते पहले कहे जे तीन प्रकार नय ते परस्पर अपेक्षासहित होंय तब तो सुनय हैं. बहुरि ते ही जब अपेक्षारहित सर्वथा एक एक ग्रहण कीजै तब दुर्नय हैं बहुरि सुनयनितैं सर्व व्यवहार वस्तुके स्वरूपकी सिद्धि होय है. भावा-

र्थ—नय हैं ते सर्व ही सापेक्ष तौ सुनय हैं. निरपेक्ष कुनय हैं. तहां सापेक्षतैं सर्व वस्तु व्यवहारकी सिद्धि है, सम्यग्ज्ञानस्वरूप है. अर कुनयनितैं सर्व लोकव्यवहारका लोप होय है, मिथ्याज्ञानरूप है।

आगें परोक्ष ज्ञानमैं अनुमान प्रमाणभी है ताका उदाहरणपूर्वक स्वरूप कहै हैं,—

जं जाणिज्जइ जीवो इंदियवावारकायचिट्ठाहिं।
तं अणुमाणं भण्णदि तं पि णयं बहुविहं जाण २६७

भावार्थ—जो इन्द्रियनिके व्यापार अर कायकी चेष्टानिकरि शरीरमैं जीवकूं जाणिये सो अनुमान प्रमाण कहिये है सो यह अनुमान ज्ञान भी नय है सो अनेक प्रकार है. भावार्थ—पहलैं श्रुतज्ञानके विकल्प नय कहे थे, इहां अनुमानका स्वरूप कह्या जो शरीरमें तिष्ठता जीव प्रत्यक्ष ग्रहणमैं नाहीं आवै यातैं इन्द्रियनिका व्यापार स्पर्शना स्वादलेना बोलना सूंघना सुनना देखना आदि चेष्टा गमन आदिक चिन्हनितैं जानिये कि शरीरमैं जीव है सो यह अनुमान है जातैं साधनतैं साध्यका ज्ञान होय सो अनुमान कहिये. सो यह भी नय ही है. परोक्ष प्रमाणके भेदनिमैं कह्या है सो परमार्थकरि नय ही है. सो स्वार्थ परमार्थके भेदतैं तथा हेतु चिन्हनिके भेदतैं अनेक प्रकार कह्या है ॥ २६७ ॥

आगें नयके भेदनिकूं कहै हैं,—

१५७.र्मके उदयसे अपनी अपनी पर्याप्ति
शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं होती तब तक

सो संगहेण इक्को दुविहो वि य दव्वपज्जएहिंतो ।
तेसिं च विसेसादो णइगमपहुदी हवे णाणं २६८

भाषार्थ—सो नय संग्रहकरि कहिये सामान्यकरि तौ एक है. द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक भेदकरि दोय प्रकार है. बहुरि विशेषकरि तिनि दोऊनिके विशेषतैं नैगमनयकूं आदि देकरि हैं सो नय हैं ते ज्ञान ही हैं ॥ २६८ ॥

आगें द्रव्यनयका स्वरूप कहै हैं,—

जो साहदि सामण्णं अविणाभूदं विसेसरूवेहिं ।
णाणाजुत्तिबलादो दव्वत्थो सो णओ होदि २६९

भाषार्थ—जो नय वस्तुकूं विशेषरूपनितैं अविनाभूत सामान्य स्वरूपकूं नाना प्रकार युक्तिके बलतैं साधै सो द्रव्यार्थिक नय है. भावार्थ—वस्तुका स्वरूप सामान्यविशेषात्मक है सो विशेषविना सामान्य नाहीं ऐसे सामान्यकूं युक्तिके बलतैं साधै सो द्रव्यार्थिक नय है ॥ २६९ ॥

आगें पर्यायार्थिक नयकूं कहै हैं,—

जो साहेदि विसेसे बहुविहसामण्ण संजुदे सव्वे ।
साहणलिंगवसादो पज्जयविसयो णयो होदि २७०

भाषार्थ—जो नय अनेक प्रकार सामान्यकरि सहित सर्व विशेष तिनिके साधनका जो लिंग ताके वशतैं साधै सो पर्यायार्थिक नय है. भावार्थ—सामान्य सहित विशेषनिकूं हेतुतैं साधै सो पर्यायार्थिक नय है. जैसैं सत् सामान्य करि स-

हित चेतन अचेतनपणा विशेष है, बहुरि चित् सामान्यकरि संसारी सिद्ध जीवपणा विशेष है, बहुरि संसारीपणा सामान्यकरिसहित त्रस थावर जीवपणा विशेष है इत्यादि. बहुरि अचेतन सामान्यकरिकै सहित पुद्गल आदि पांच द्रव्यविशेष हैं. बहुरि पुद्गलसामान्यकरिसहित अणु स्कन्ध घट पट आदि विशेष हैं इत्यादि पर्यायार्थिक नय हेतुतैं साधै है ॥ २७० ॥

आगें द्रव्यार्थिक नयका भेदनिकूं कहै हैं तहां प्रथमही नैगम नयकूं कहै हैं,--

जो साहेदि अदीदं वियप्परूवं भविस्समत्थं च ।
संपडिकालाविट्ठं सो हु णयो णेगमो णेयो ॥ २७१ ॥

भाषार्थ--जो नय अतीत तथा भविष्यत तथा वर्तमानकूं विकल्परूपकरि संकल्पमात्र साधै सो नैगम नय है. भावार्थ--द्रव्य है सो तीन कालके पर्यायनितैं अन्वयरूप है ताकूं अपना विषयकरि अतीतकाल पर्यायकूं भी वर्त्तमानवत् संकल्पमें ले आगामी पर्यायकूं भी वर्त्तमानवत् संकल्पमें ले वर्त्तमानमें निष्पन्नकूं तथा अनिष्पन्नकूं निष्पन्नरूप संकल्पमें ले ऐसे ज्ञानकूं तथा वचनकूं नैगम नय कहिये है. याके भेद अनेक हैं. सर्वनयके विषयकूं मुख्य गौणकरि अपना संकल्परूप विषय करै है. इहां उदाहरण ऐसा--जैसैं इस मनुष्य नामा जीव द्रव्यकै संसार पर्याय है अर सिद्धपर्याय है यह मनुष्य पर्याय है ऐसैं कहैं । तहां संसार अतीत अनागत वर्त्तमान तीन काल [illegible] भी है, सिद्धपणा अनागत ही है, मनुष्यपणा वर्त्त-

---

[illegible]र्मके उदयसे अपनी अपनी पर्याप्ति
शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं होती तब तक

मान ही है परन्तु इस नयके वचनकरि अभिप्रायमें विद्यमान संकल्पकरि परोक्ष अनुभवमें ले कहैं कि या द्रव्यमें मेरे ज्ञानमें अबार यह पर्याय भासै है ऐसे संकल्पकं नैगम नयका विषय कहिये. इनमेंसूं मुख्य गौण कोईकूं कहैं।

आगें संग्रहनयकूं कहै हैं,—

जो संगहेदि सव्वं देसं वा विविहदव्वपज्जायं।
अणुगमालिंगविसिट्ठं सो वि णयो संगहो होदि॥

भाषार्थ—जो नय सर्व वस्तुकूं तथा देश कहिये एक वस्तुके भेदकूं अनेक प्रकार द्रव्यपर्यायसहित अन्वय लिंगकरि विशिष्ट संग्रह करै, एकस्वरूप कहै, सो संग्रह नय है. भावार्थ—सर्व वस्तु उत्पादव्ययध्रौव्यलक्षण सत्करि द्रव्य पर्यायनिसूं अन्वयरूप एक सत्मात्र है ऐसैं कहै, तथा सामान्य सत्स्वरूप द्रव्य मात्र है, तथा विशेष सत्रूप पर्याय मात्र है तथा जीव वस्तु चित्सामान्यकरि एक है तथा सिद्धत्व सामान्यकरि सर्व सिद्ध एक है तथा संसारित्व सामान्यकरि सर्व संसारी जीव एक है इत्यादि तथा अजीव सामान्यकरि पुद्गलादि पांच द्रव्य एक अजीव द्रव्य है तथा पुद्गलत्व सामान्यकरि अणु स्कन्ध घटपटादि एक द्रव्य है इत्यादि संग्रहरूप कहै सो संग्रह नय है।

आगें व्यवहार नयकूं कहै हैं,—

जो संगहेण गहिदं विसेसरहिदं पि भेददे सददं।

परमाणूपज्जंतं ववहारणओ हवे सो वि ॥ २७३ ॥

भाषार्थ—जो नय संग्रह नयकरि विशेषरहित वस्तुकूं ग्रहण कीया था, ताकूं परमाणु पर्यन्त निरन्तर भेदै सो व्यवहार नय है. भावार्थ—संग्रह नय सर्व सत् सर्वकूं कह्या तहां व्यवहार भेद करै सो सत्द्रव्यपर्याय है. बहुरि संग्रह द्रव्य सामान्यकूं ग्रहै तहां व्यवहार नय भेद करै. द्रव्य जीव अजीव दोय भेदरूप है बहुरि संग्रह जीव सामान्यकूं ग्रहै तहां व्यवहार भेद करै। जीव संसारी सिद्ध दोय भेदरूप है इत्यादि। बहुरि पर्यायसामान्यकूं संग्रहण करै तहां व्यवहार भेद करै पर्याय अर्थपर्याय व्यंजनपर्याय भेदरूप है तैसे ही संग्रह अजीव सामान्यकूं ग्रहै तहां व्यवहारनय भेद करि अजीव पुद्गलादि पंच द्रव्य भेदरूप है, बहुरि संग्रह पुद्गल सामान्यकूं ग्रहण करै तहां व्यवहारनय अणु स्कंध घट पट आदि भेदरूप कहै ऐसैं जाकूं संग्रह ग्रहै तामैं भेद करता जाय तहां फेरि भेद न होय सकै तहां ताईं संग्रह व्यवहारका विषय है. ऐसैं तीन द्रव्यार्थिक नयके भेद कहे ॥ २७३ ॥

अब पर्यायार्थिकके भेद कहै हैं तहां प्रथम ही ऋजुसूत्र नयकूं कहै हैं,—

जो वट्टमाणकाले अत्थपज्जायपरिणदं अत्थं ।
संतं साहदि सव्वं तं वि णयं रिजुणयं जाण २७४

भाषार्थ—जो नय वर्तमान कालविषै अर्थ पर्यायरूप परि-

---

१ नाम कर्मके उदयसे अपनी अपनी पर्याप्ति
२ शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं होती तब तक

गाया जो अर्थ ताहि सर्वकूं सत्रूप साधै सो ऋजुसूत्र नय है. भावार्थ—वस्तु समय समय परिणमै है सो एक समय वर्त्तमान पर्यायकूं अर्थपर्याय कहिये है. सो या ऋजुसूत्र नयका विषय है. तिस मात्र ही वस्तुकौं कहै है. बहुरि घडी मुहूर्त्त आदि कालकौं भी व्यवहारमें वर्त्तमान कहिये है सो तिस वर्त्तमान कालस्थायी पर्यायकौं भी साधै तातैं स्थूल ऋजुसूत्र संज्ञा है. ऐसैं तीन तौ पूर्वोक्त द्रव्यार्थिक अर एक ऋजुसूत्र ए च्यारि नय तौ अर्थनय कहिये हैं ॥ २७४ ॥

आगें तीन शब्दनय हैं तिनिकौं कहै हैं तहां प्रथमही शब्दनयकौं कहै हैं,—

सव्वेसिं वत्थूणं संखालिंगादिबहुपयारेहिं ।
जो साहदि णाणत्तं सद्दणयं तं वियाणेह ॥ २७५ ॥

भाषार्थ—जो नय सर्व वस्तुनिकै संख्या लिंग आदि बहुत प्रकार करि नानापणाकौं साधै सो शब्द नय जाणू. भावार्थ—संख्या एक वचन द्विवचन बहुवचन, लिंग स्त्री पुरुष नपुंसकका वचन, आदि शब्दमें काल कारक पुरुष उपसर्ग लेणे. सो इनिकरि व्याकरणके प्रयोग पदार्थकौं भेदरूपकरि कहै सो शब्द नय है. जैसैं पुष्य तारका नक्षत्र एक ज्योतिषीके विमानके तीनूं लिंग कहै तहां व्यवहारमें विरोध दीखै जातैं सो ही पुरुष सो ही स्त्री नपुंसक कैसैं होय ! तथापि शब्द नयका यह ही विषय है जो जैसा शब्द कहै तैसा ही अर्थकूं भेदरूप मानना ॥ २७५ ॥

आगें समभिरूढ नयकौं कहै हैं,—

जो एगेगं अत्थं परिणादिभेएण साहए णाणं ।
मुक्खत्थं वा भासदि अहिरूढं तं णयं जाण २७६

भाषार्थ—जो नय वस्तुकौं परिणामके भेदकरि एक एक न्यारा न्यारा भेद रूप साधै अथवा तिनिमें मुख्य अर्थ ग्रहण करि साधै सो समभिरूढ नय जाणूं. भावार्थ—शब्द नय वस्तुके पर्याय नामकरि भेद नाहीं करै अर यह समभिरूढ नय है सो एक वस्तुके पर्याय नाम हैं तिनिके भेदरूप न्यारे न्यारे पदार्थ ग्रहण करै तहां जिसकौं मुख्यकरि पकडै तिसकौं सदा तैसा ही कहै. जैसैं गऊ शब्दके बहुत अर्थ थे तथा गऊ पदार्थके बहुत नाम हैं. तिनकौं यह नय न्यारे न्यारे पदार्थ मानै है. तिनिमेंसूं मुख्यकरि गऊ पकड्या ताकौं चालतां बैठतां सोवतां गऊ ही कह्वो करै. ऐसा समभिरूढ नय है ॥ २७६ ॥

आगें एवंभूत नयकौं कहै हैं,—

जेण सहावेण जदा परिणदरूवम्मि तम्मयत्तादो ।
तप्परिणामं साहदि जो वि णओ सो वि परमत्थो ॥

भाषार्थ—वस्तु जिस काल जिस स्वभावकरि परिणमनरूप होय तिस काल तिस परिणामतैं तन्मय होय है, तातैं तिस ही परिणामरूप साधै, कहै सो नय एवंभूत है. यह नय परमार्थरूप है. भावार्थ—वस्तुका जिस धर्मकी मुख्यता करि

कर्मके उदयसे अपनी अपनी पर्याप्ति
शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं होती तब तक

नाम होय तिस ही अर्थके परिणमनरूप जिस काल परिणमै ताकौं तिस नामकरि कहै सो एवंभूत नय है. याकौं निश्चय भी कहिये हैं. जैसैं गऊकौं चालै तिस काल गऊ कहै. अन्य काल कछु न कहै ॥ २७७ ॥

आगें नयनिके कथनकौं संकोचै हैं,—

एवं विविहणएहिं जो वत्थू ववहरेदि लोयाम्मि ।
दंसणणाणचरित्तं सो साहदि सग्गमोक्खं च २७८

भावार्थ—जो पुरुष या प्रकार नयनिकरि वस्तुकौं व्यवहाररूप कहै है, साधे है अर प्रवर्त्तावै है सो पुरुष दर्शन ज्ञान चारित्रकौं साधै है. बहुरि स्वर्ग मोक्षकौं साधै है. भावार्थ—प्रमाण नयनिकरि वस्तुका स्वरूप यथार्थ सधै है. जो पुरुष प्रमाण नयनिका स्वरूप जाणि वस्तुकौं यथार्थ व्यवहाररूप प्रवर्त्तावै है तिसके सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकी अर ताका फल स्वर्ग मोक्षकी सिद्धि होय है ॥ २७८ ॥

आगें कहै हैं जो तत्त्वार्थका सुनना जानना धारणा भावना करनेवाले विरले हैं,—

विरला णिसुणहि तच्चं विरला जाणंति तच्चदो तच्चं ।
विरला भावहिं तच्चं विरलाणं धारणा होदि ॥२७९॥

भावार्थ—जगतविषै तत्त्वकौं विरले पुरुष सुणै हैं. बहुरि सुनि करि भी तत्त्वकौं यथार्थ विरले ही जाणै हैं. बहुरि जानि करि भी विरले ही तत्त्वकी भावना कहिये वारवार अ-

भ्यास करै हैं. बहुरि अभ्यास कीये भी तत्त्वकी धारणा विरलेनिकै होय है. भावार्थ—तत्त्वार्थका यथार्थ स्वरूप सुनना जानना भावना धारणा उत्तरोत्तर दुर्लभ हैं इस पांचमां कालमें तत्त्वके यथार्थ कहनेवाले दुर्लभ हैं अर धारनेवाले भी दुर्लभ हैं ॥ २७९ ॥

आगें कहै हैं जो कहे तत्त्वकौं सुनिकर निश्चल भावतैं भावै सो तत्त्वकौं जाणै,—

तच्चं कहिज्जमाणं णिच्चलभावेण गिह्लदे जो हि ।
तं चिय भावेइ सया सो वि य तच्चं वियाणेई २८०

भाषार्थ—जो पुरुष गुरुनिकरि कह्या जो तत्त्वका स्वरूप ताकौं निश्चल भाव करि ग्रहण करै है, बहुरि तिसकौं अन्य भावना छोडि निरंतर भावै है, सो पुरुष तत्त्वकौं जाणै है।

आगें कहै हैं तत्त्वकी भावना नाहीं करै है, सो स्त्री आदिके वश कौन नाही है ? सर्व लोक है,—

को ण वसो इत्थिजणे कस्स ण मयणेण खंडियं माणं
को इंदिएहिं ण जिओ को ण कसाएहिं संतत्तो ॥

भाषार्थ—या लोकविषै स्त्रीजनके वश कौन नाहीं है ? बहुरि कामकरि जाका मन खण्डन न भया ऐसा कौन है ? बहुरि इन्द्रियनिकरि न जीत्या ऐसा कौन है ? बहुरि कषायनिकरि तप्तायमान नाहीं ऐसा कौन है ? भावार्थ—विषय

र्मके उदयसे अपनी अपनी पर्याप्ति
शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं होती तब तक

कषायनिके वशमें सर्व लोक हैं अर तत्त्वकी भावना करने-वाले विरले हैं ॥ २८१ ॥

आगें कहै हैं जो तत्त्वज्ञानी सर्व परिग्रहका त्यागी हो है सो स्त्रीआदिके वश नाहीं होय है,–

सो ण वसो इत्थिजणे सो ण जिओ इंदिएहिं मोहेण
जो ण य गिह्लदि गंथं अब्भंतर बाहिरं सव्वं २८२

भाषार्थ–जो पुरुष तत्त्वका स्वरूप जाणि बाह्य अभ्य-न्तर सर्व परिग्रहकौं नाहीं ग्रहण करै है, सो पुरुष स्त्रीजनके वश नाहीं होय है. बहुरि सो ही पुरुष इंद्रियनिकरि जीत्या न होय है. बहुरि सो ही पुरुष मोह कर्म जे मिथ्यात्व कर्म तिसकरि जीत्या न होय है. भावार्थ–संसारका बन्धन परिग्रह है सो सर्व परिग्रहकौं छोडै सो ही स्त्री इंद्रिय कषायादिकके व-शीभूत नाहीं होय है. सर्वत्यागी होय शरीरका ममत्व न राखै, तब निजस्वरूपमें ही लीन होय है ॥ २८२ ॥

आगें लोकानुप्रेक्षाका चिंतवनका माहात्म्य प्रगट करै हैं,

एवं लोयसहावं जो झायदि उवसमेक्कसब्भाओ ।
सो खविय कम्मपुंजं तस्सेव सिहामणी होदि ॥२८३॥

भाषार्थ– जो पुरुष इस प्रकार लोकस्वरूपकौं उपशमक-रि एक स्वभावरूप हुवा संता ध्यावै है, चिंतवन करै है, सो पुरुष क्षेपे हैं नाश किये हैं कर्मके पुंज जानै ऐसा तिस लो

कहीका शिखामणि होय है. भावार्थ—ऐसैं साम्यभाव करि लोकानुप्रेक्षाका चिंतवन करै सो पुरुष कर्मका नाशकरि लोकके शिखर जाय तिष्ठै है. तहां अनन्त अनौपम्य बाधारहित स्वाधीन ज्ञानानन्दस्वरूप सुखकौं भोगवै है । इहां लोक भावनाका कथन विस्तारकरि करनेका आशय ऐसा है जो अन्यमती लोकका स्वरूप तथा जीवका स्वरूप तथा हिताहितका स्वरूप अनेक प्रकार अन्यथा असत्यार्थ प्रमाणविरुद्ध कहै हैं सो कोई जीव तौ सुनिकरि विपरीत श्रद्धा करै हैं, केई संशयरूप होय हैं, केई अनध्यवसायरूप होय हैं, तिनिकै विपरीतश्रद्धातैं चित्त थिरताकौं न पावै है। अर चित्त थिर निश्चित हुवा विना यथार्थ ध्यानकी सिद्धि नाहीं । ध्यान विना कर्मनिका नाश होय नाहीं, तातैं विपरीत श्रद्धान दूरि होनेके अर्थ यथार्थ लोकका तथा जीवादि पदार्थनिका स्वरूप जाननेके अर्थ विस्तारकरि कथन किया है, ताकूं जानि जीवादिका स्वरूप पहिचानि अपने स्वरूपविषै निश्चल चित्त ठानि कर्म्म कलंक भानि भव्य जीव मोक्षकूं प्राप्त होहु, ऐसा श्रीगुरुनिका उपदेश है ॥ २८३ ॥

कुंडलिया.

लोकाकार विचारिकैं, सिद्धस्वरूपचितारि ।
रागविरोध विडारिकैं, आतमरूपसंवारि ॥
आतमरूपसंवारि मोक्षपुर वसो सदा ही ।
आधिव्याधिजरमरन आदि दुख है न कदा ही ॥

...र्मके उदयसे अपनी अपनी पर्याप्ति
तक शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं होती तब तक

श्रीगुरु शिक्षा धारि टारि अभिमान कुशोका ।
मनथिरकारन यह विचारि निजरूप सुलोका ॥ १० ॥

इति लोकानुप्रेक्षा समाप्ता ॥ १० ॥

अथ बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा लिख्यते ।

जीवो अणंतकालं बसइ णिगोएसु आइपरिहीणो ।
तत्तो णीसरिऊणं पुढवीकायादियो होदि ॥ २८४ ॥

भाषार्थ—ये जीव अनादि कालतैं लेकरि संसारविषै अनन्त काल तौ निगोदविषै वसै है. बहुरि तहांतैं नीसरिकरि पृथ्वीकायादिक पर्यायकूं धारै है. अनादितैं अनन्तकालपर्यन्त नित्य निगोदमें जीवका वास है. तहां एक शरीरमें अनन्तानन्त जीवनिका आहार स्वासोच्छ्वास जीवन मरन समान है. स्वासके अठारहवें भाग आयु है तहांतैं नीसरि कदाचित् पृथिवी अप तेज वायुकाय पर्याय पावै है सो यह पावना दुर्लभ है ॥ २८४ ॥

आगे कहै हैं यातैं नीसरि त्रसपर्याय पावना दुर्लभ है,

तत्थ वि असंखकालं वायरसुहमेसु कुणइ परियत्तं ।
चिंतामणिव्व दुलहं तसत्तणं लहदि कट्ठेण २८५

भाषार्थ—तहां पृथिवीकाय आदिविषै सूक्ष्म यता बादरनिविषै असंख्यात काल भ्रमण करै है. तहांतैं नीसरि त्रसपणा पावना बहुत कष्टकर दुर्लभ है. जैसैं चिंतामणिरत्नका

पावना दुर्लभ होय तैसैं । भावार्थ—पृथिवीआदि थावरकायतैं नीसरि चिन्तामणि रत्नकी ज्यौं त्रस पर्याय पावना दुर्लभ है

आगैं कहै हैं त्रसपणा भी पावै तहां पंचेन्द्रियपणा पावना दुर्लभ है,—

वियलिंदिएसु जायदि तत्थ वि अत्थेइ पुव्वकोडीओ।
तत्तो णीसरिऊणं कहमवि पंचिंदिओ होदि ॥२८६॥

भाषार्थ—थावरतैं नीसरि त्रस होय तहां भी विकलत्रय वेइन्द्रिय तेइंद्रिय चौइंद्रियपणा पावै तहां कोटिपूर्व तिष्ठै तहांतैं भी नीसरि करि पंचेंद्रियपणा पावना महा कष्टकर दुर्लभ है. भावार्थ—विकलत्रयतैं पंचेंद्रियपणा पावना दुर्लभ है जो विकलत्रयतैं फेरि थावर कायमें जाय उपजै तौ फेरि बहुत काल भ्रुगतैं. तातैं पंचेंद्रियपणा पावना अतिशय दुर्लभ है।

सो वि मणेण विहीणो ण य अप्पाणं परं पि जाणेदि ।
अह मणसाहिओ होदि हु तह वि तिरक्खो हवे रुद्दो ॥

भाषार्थ—विकलत्रयतैं नीसरि पंचेन्द्रिय भी होय तौ असैनी मनरहित होय है. आप अर परका भेद जाणै नाहीं. बहुरि कदाचित् मनसहित सैंनी भी होय तौ तिर्यञ्च होय है. रौद्र क्रूर परिणामी बिलाव घूघू सर्प सिंह मच्छ आदि होय है. भावार्थ—कदाचित् पंचेन्द्रिय भी होय तौ असैंनी होय सैंनीपणा दुर्लभ है बहुरि सैंनी भी होय तौ क्रूर तिर्यञ्च होय ताकै परिणाम निरन्तर पापरूप ही रहै हैं २८७

मैंके उदयसे अपनी अपनी पर्याप्ति
... पूर्ण नहीं होती तब तक

आगें ऐसें क्रूर परिणामीनिका नरकपात होय है, ऐसें कहै हैं--

सो तिव्वअसुहलेसो णरये णिवडेइ दुक्खदे भीमे।
तत्थ वि दुक्खं भुंजदि सारीरं माणसं पउरं ॥२८८॥

भाषार्थ—क्रूर तिर्यंच होय सो तीव्र अशुभ परिणामकरि अशुभ लेश्या सहित मरि नरकमें पडै है. कैसा है नरक दुःखदायक है भयानक है तहां शरीरसम्बन्धी तथा मनसम्बधी प्रचुर दुःख भोगवै है ॥ २८८ ॥

आगें कहै हैं तिस नरकतैं नीसरि तिर्यंच होय दुःख सहै है,—

तत्तो णीसरिऊणं पुणरवि तिरिएसु जायदे पावं।
तत्थ वि दुक्खमणंतं विसहदि जीवो अणेयविहं २८९

भाषार्थ—तिस नरकतैं नीसरि फेरि भी तिर्यंच गतिविषै उपजै है तहां भी पापरूप जैसैं होय तैसैं यह जीव अनेक प्रकारका अनन्त दुःख विशेषकरि सहै है ॥ २८९ ॥

आगें कहै हैं कि मनुष्यपणा पावना दुर्लभ है सो भी मिथ्याती होय पाप उपजावै है,—

रयणं चउप्पहेपिव मणुअत्तं सुट्ठु दुल्लहं लहिय।
मिच्छो हवेइ जीवो तत्थ वि पावं समज्जेदि ॥२९०॥

भाषार्थ—तिर्यंचतैं नीसरि मनुष्यगति पावणा अति दुर्लभ है. जैसैं चौपथमें रत्न पड्या होय सो बडा भाग्यतैं हाथ

लागै तैसैं दुर्लभ है. बहुरि ऐसा दुर्लभ मनुष्यपणा पायक-रि भी मिथ्यादृष्टी होय पाप उपजावै है. भावार्थ--मनुष्य भी होय अर म्लेच्छखंड आदि तथा मिथ्यादृष्टीनिकी संगति-विषै उपजि पाप ही उपजावै है ॥ १९० ॥

आगें कहै हैं मनुष्य भी होय अर आर्य खंडविषै भी उपजै तौऊ उत्तम कुलआदिका पावना अति दुर्लभ है,—

अह लहइ अज्जवंतं तह ण वि पावेइ उत्तमं गोत्तं ।
उत्तम कुले वि पत्ते धणहीणो जायदे जीवो ॥२९१॥

भाषार्थ—मनुष्य पर्याय पाय आर्यखंडविषै भी जन्म पावै तौ ऊंच कुल पावना दुर्लभ है बहुरि कदाचित् ऊंच कुल विषै भी जन्म पावै तौ धनहीन दरिद्री होय तासूं कछू सुकृत बणै नाहीं पापहीमें लीन रहै ॥ २९१ ॥

अह धनसाहिओ होदि हु इंदियपरिपुण्णदा तदो दुलहा
अह इंदिय संपुण्णो तह वि सरोओ हवे देहो २९२

भाषार्थ—बहुरि जो धनसहितपणा भी पावै तौ इन्द्रि-यनिकी परिपूर्णता पावना अति दुर्लभ है. बहुरि कदाचित् इन्द्रियनिकी संपूर्णता भी पावै तौ देह रोग सहित पावै नि-रोग होना दुर्लभ है ॥ २९२ ॥

अह णीरोओ होदि हु तह वि ण पावेइ जीवियं सुइरं।
अह चिरकालं जीवदि तो सीलं णेव पावेइ ॥२९३॥

र्मके उदयसे अपनी अपनी पर्याप्ति
शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं होती तब तक

भाषार्थ—अथवा कदाचित् नीरोग भी होय तौ जीवित कहिये आयु दीर्घ न पावै यह पावना दुर्लभ है अथवा जो कदाचित आयु भी चिरकाल कहिये दीर्घ पावै तौ शील कहिये उत्तम प्रकृति भद्र परिणाम न पावै जातैं सुष्ठु स्वभाव पावना दुर्लभ है ॥ २९३ ॥

अह होदि सीलजुत्तो तह वि ण पावेइ साहुसंसग्गं।
अह तं पि कह वि पावइ सम्मत्तं तह वि अइदुलहं २९४

भाषार्थ—बहुरि सुष्ठु स्वभाव भी कदाचित् पावै तौ साधु पुरुषका संसर्ग संगति नाहीं पावै है. बहुरि सो भी कदाचित् पावै तौ सम्यक्त्व पावना श्रद्धान होना अति दुर्लभ है ॥ २९४ ॥

सम्मत्ते वि य लद्धे चारित्तं णेव गिण्हदे जीवो।
अह कह वि तं पि गिण्हदि तो पालेदुं ण सक्केदि २९५

भाषार्थ—बहुरि सम्यक्त्व भी कदाचित् पावै तौ यह जीव चारित्र नाहीं ग्रहण करै है. बहुरि कदाचित चारित्र भी ग्रहण करै तौ तिसकूं निर्दोष न पालि सकै है ॥ २९५ ॥

रयणत्तये वि लद्धे तिव्वकसायं करेदि जइ जीवो।
तो दुग्गईसु गच्छदि पणट्ठरयणत्तओ होऊ ॥ २९६॥

भाषार्थ—जो यह जीव कदाचित रत्नत्रय भी पावै अर तीव्रकषाय करै तौ नाशकूं प्राप्त भया है रत्नत्रय जाका ऐसा होयकरि दुर्गतिकूं गमन करै है ॥ २९६ ॥

बहुरि ऐसा मनुष्यपणा ऐसा दुर्लभ है जातैं रत्नत्रयकी प्राप्ति हो ऐसा कहै हैं,—

रयणुव्व जलहिपडियं मणुयत्तं तं पि होइ अइदुलहं
एवं सुणिच्छइत्ता मिच्छकसायेय वज्जेह ॥ २९७ ॥

भावार्थ—यह मनुष्यपणा जैसैं रत्न समुद्रमें पड्या फेरि पावणा दुर्लभ होय तैसैं पावना दुर्लभ है ऐसैं निश्चयकरि अर हे भव्य जीवो यें मिथ्या अर कषायनिकूं छोडो ऐसा उपदेश श्रीगुरुनिका है ॥ २९७ ॥

आगें कहै हैं जो कदाचित् ऐसा मनुष्यपणा पाय शुभपरिणामनितैं देवपणा पावै तौ तहां चारित्र नाहीं पावै है,—

अहवा देवो होदि हु तत्थ वि पावेइ कह वि सम्मत्तं ।
सो तवचरणं ण लहदि देसजमं सीललेसं पि २९८

भावार्थ—अथवा मनुष्यपणातैं कदाचित् शुभपरिणामतैं देव भी होय अर कदाचित् तहां सम्यक्त्व भी पावै तौ तहां तपश्चरण चारित्र न पावै है. देशव्रत श्रावकव्रत तथा शीलव्रत कहिये ब्रह्मचर्य अथवा सप्तशीलका लेश भी न पावै है।

आगें कहै हैं कि इस मनुष्यगतिविषै ही तपश्चरणादिक हैं ऐसा नियम है,—

मणुअगईए वि तओ मणुअगईए महव्वयं सयलं ।
मणुअगईए झाणं मणुअगईए वि णिव्वाणं ॥२९९॥

कर्मके उदयसे अपनी अपनी पर्याप्ति
शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं होती तब तक

भाषार्थ—हे भव्य जीव हो इस मनुष्यगतिविषै ही तप-का आचरण होय है बहुरि इस मनुष्यगतिविषै ही समस्त-महाव्रत होय हैं. बहुरि इस मनुष्यगतिविषै ही धर्म्यशुक्लध्या-न होय हैं. बहुरि इस मनुष्यगतिविषै ही निर्वाण कहिये मो-क्षकी प्राप्ति होय है ॥ २९९ ॥

इय दुलहं मणुयत्तं लहिऊणं जे रमंति विसएसु ।
ते लहिय दिव्वरयणं भूइणिमित्तं पजालंति ॥३००॥

भाषार्थ—ऐसा यह मनुष्यपणा पायकरि जे इन्द्रिय वि-षयनिविषै रमै हैं ते दिव्य (अमोलिक) रत्नकूं पाय भस्मके अर्थ दग्ध करै हैं. भावार्थ—अति कठिन पावने योग्य यह म-नुष्य पर्याय अमोलिक रत्नतुल्य है. ताकूं विषयनिविषै रमि-करि वृथा खोवना योग्य नाहीं ॥ ३०० ॥

आगें कहै हैं जो या मनुष्यपणामें रत्नत्रयकूं पाय बडा आदर करो,

इय सव्वदुलहदुलहं दंसण णाणं तहा चरित्तं च ।
मुणिऊण य संसारे महायरं कुणह तिण्हं पि॥२०१॥

भाषार्थ—ए सर्व दुर्लभतैं भी दुर्लभ जाणि बहुरि दर्शन ज्ञान चारित्र संसारविषै दुर्लभसों दुर्लभ जाणि अर दर्शन ज्ञान चारित्र इनि तीनिविषै हे भव्य जीव हो ! बडा आदर करौ.। भावार्थ—निगोदतैं नीसरि पूर्वैं कहे तिस अनुक्रमतैं दु-र्लभसूं दुर्लभ जाणूं, बहुरि तहां भी सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र-

-की प्राप्ति अति दुर्लभ जाणूं. तिसकूं पायकरि भव्य जीवनि-
-कूं महान् आदर करना योग्य है ॥ २०१ ॥

छप्पय.

वसि निगोद चिर निकसि खेद सहि धरनि तरुनि बहु ।
पवनबोद जल अगि निगोद लहि जरन मरन सहु ॥
लट गिंडोल उटकण मकोड तन भमर भमणकर ।
जलविलोलपशु तन सुकोल नभचर सर उरपर ॥
फिरि नरकपात अति कष्टसहि, कष्टकष्ट नरतन महत ।
तहँ पाय रत्नत्रय चिगद जे, ते दुर्लभ अवसर लहत ११

इति बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा समाप्ता ॥ ११ ॥

अथ धर्म्मानुप्रेक्षा प्रारभ्यते.

आगें धर्मानुप्रेक्षाका निरूपण करै हैं तहां धर्मका मूल सर्वज्ञ देव है ताकूं प्रगट करै हैं,—

जो जाणदि पच्चक्खं तियालगुणपज्जएहि संजुत्तं ।
लोयालोयं सयलं सो सव्वण्हू हवे देओ ॥ २०२ ॥

भाषार्थ—जो समस्त लोक अर अलोक तीनकालगोचर समस्त गुणपर्यायनिकरि संयुक्त प्रत्यक्ष जाणै सो सर्वज्ञ देव है. भावार्थ—या लोकविषै जीव द्रव्य अनन्तानन्त हैं. तिनि-तैं अनन्तानन्त गुणे पुद्गल द्रव्य हैं. एक एक आकाश, धर्म,

मैके उदयसे अपनी अपनी पर्याप्ति
रीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं होती तब तक

अधर्म द्रव्य है. असंख्यात कालाणु द्रव्य है. लोकके परैं अनन्तप्रदेशी आकाश द्रव्य अलोक है. तिनि सर्व द्रव्यनिके अतीत काल अनन्त समयरूप आगामी काल तिनितैं अनन्तगुणा समयरूप तिस कालके समयसमयवर्त्ती एक द्रव्यके अनन्त अनन्त पर्याय हैं. तिनि सर्व द्रव्यपर्यायनिकूं युगपत् एक समयविषै प्रत्यक्ष स्पष्ट न्यारे न्यारे जैसैं हैं तैसैं जानैं ऐसा जाके ज्ञान है सो सर्वज्ञ है. सो ही देव है अन्यकूं देव कहिये सो कहने मात्र है। इहां कहनेका तात्पर्य ऐसा जो धर्मका स्वरूप कहियेगा सो धर्मका स्वरूप यथार्थ इन्द्रियगोचर नाहीं अतीन्द्रिय है. जाका फल स्वर्ग मोक्ष है, सो भी अतीन्द्रिय है. छद्मस्थकै इन्द्रिय ज्ञान है. परोक्ष है सो याके गोचर नाहीं सो जो सर्व पदार्थनिकूं प्रत्यक्ष देखै सो धर्मका स्वरूप भी प्रत्यक्ष देखै सो धर्मका स्वरूप सर्वज्ञके वचनहीतैं प्रमाण है. अन्य छद्मस्थका कह्या प्रमाण नाहीं. सो सर्वज्ञके वचनकी परंपरातैं छद्मस्थ कहै सो प्रमाण है तातैं धर्मका स्वरूप कहनेकूं आदिविषै सर्वज्ञका स्थापन कीया ॥ ३०२ ॥

आगैं जे सर्वज्ञकूं न मानै हैं तिनिकूं कहै हैं,—

जदि ण हवदि सव्वण्हू ता को जाणदि अदिंदियं अत्थं
इंदियणाणं ण मुणदि थूलं पि असेस पज्जायं ३०३

भाषार्थ—हे सर्वज्ञके अभाववादी! जो सर्वज्ञ न होय तौ अतीन्द्रियपदार्थ इन्द्रियगोचर नाहीं ऐसे पदार्थकूं कौन जानै ? इन्द्रियज्ञानतौ स्थूलपदार्थ इन्द्रियनितैं सम्बन्धरूप वर्तमान

होय ताकूं जानै है ताके भी समस्तपर्याय हैं तिनिकूं नाहीं जानै है. भावार्थ—सर्वज्ञका अभाव मीमांसक अर नास्तिक कहै हैं ताकूं निषध्या है जो सर्वज्ञ न होय तो अतीन्द्रिय पदार्थकूं कौन जानै ? जातैं धर्म अर अधर्मका फल अतीन्द्रिय है ताकूं सर्वज्ञविना कोऊ नाहीं जानैं तातैं धर्म अर अधर्मका फलकूं चाहता जो पुरुष है सो सर्वज्ञकूं मानि करि ताके वचनतैं धर्मका स्वरूप निश्चय करि अंगीकार करो ॥ २०३ ॥

तेणुवइट्ठो धम्मो संगासत्ताण तह असंगाणं।
पढमो वारहभेओ दसभेओ भासिओ विदिओ २०४

भावार्थ—तिस सर्वज्ञकरि उपदेस्या धर्म है सो दोय प्रकार है. एक तौ संगासक्त कहिये गृहस्थका अर एक असंग कहिये मुनिका. तहां पहला गृहस्थका धर्म तौ वारह भेदरूप है. बहुरि दूजा मुनिका धर्म दश भेदरूप है ॥ २०४ ॥

आगें गृहस्थके धर्मके वारह भेदनिके नाम दोय गाथामैं कहै हैं,—

सम्मदंसणसुद्धो रहिओ मज्जाइथूलदोसेहिं।
वयधारी सामइओ पव्ववई पासु आहारी ॥ २०५ ॥
राईभोयणविरओ मेहुणसारंभसंगचत्तो य।
कज्जाणुमोयविरओ उद्दिट्ठाहारविरओ य ॥ २०६ ॥

भावार्थ—सम्यग्दर्शन है शुद्ध जाकै ऐसा, १ मद्य आदि

कर्मके उदयसे अपनी अपनी पर्याप्ति
शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं होती तब तक.

स्थूल दोषनितैं रहित दर्शन प्रतिमाका धारी, २ पांच अणुव्रत-तीन गुणव्रत चार शिक्षाव्रत ऐसैं बार व्रतनिसहित व्रतधारी, ३ तथा समायिकव्रती, ४ पर्वव्रती, ५ प्रासुकाहारी ६ रात्रीभोजनत्यागी, ७ मैथुनत्यागी, ८ आरंभत्यागी, ९ परिग्रहत्यागी, १० कार्यानुमोदविरत ११ अर उद्दिष्टाहारविरत, १२ इसप्रकार श्रावकधर्मके १२ भेद हैं. भावार्थ–पहला भेद तो पच्चीसमलदोषरहित शुद्धअविरतसम्यग्दष्टी है. बहुरि ग्यारह भेद प्रतिमानके व्रतनिकरि सहित होंय सो व्रती श्रावक है ॥ ३०५–३०६ ॥

आगें इनि बारहन्निका स्वरूप प्रभृतिका व्याख्यान करै हैं. तहां प्रथम ही अविरत सम्यग्दष्टीका कहै हैं. तहां भी पहले सम्यक्त्वकी उत्पत्तिकी योग्यताका निरूपण करै हैं,–

चउगदिभव्वो सण्णी सुविसुद्धो जग्गमाणपज्जत्तो ।
संसारतडे नियडो णाणी पावेइ सम्मत्तं ॥ ३०७ ॥

भाषार्थ–ऐसा जीव सम्यक्त्वकूं पावै है. प्रथम ही भव्य जीव होय जातैं अभव्यकै सम्यक्त्व होय नाहीं. बहुरि च्यारूं ही गतिविषै सम्यक्त्व उपजै है तहां भी मन सहित सैनीकै उपजै है. असैनीकै उपजै नाहीं. तहां भी विशुद्ध परिणामी होय, शुभ लेश्या सहित होय, अशुभ लेश्यामें भी शुभ लेश्यासमान कषायनिके स्थानके होय तिनिकूं विशुद्ध उपचारकरि कहिये संक्लेश परिणामनिविषै सम्यक्त्व उपजै नाहीं. बहुरि जागताकै होय. सूताकै नाहीं होय. बहुरि प-

र्याप्तिपूर्णके होय, अपर्याप्त अवस्थामें उपजै नाहीं. बहुरि संसारका तट जाकै निकट आया होय निकट भव्य होय, अर्द्ध पुद्गल परावर्त्तन काल पहलै सम्यक्त्व उपजै नाहीं. बहुरि ज्ञानी होय साकार उपयोगवान होय निराकार दर्शनोपयोगमें सम्यक्त्व उपजै नाहीं ऐसैं जीवकै सम्यक्त्वकी उत्पत्ति होय है ॥ २०७ ॥

आगें सम्यक्त्व तीन प्रकार है. तिनिमें उपशम सम्यक्त्व अर क्षायिक सम्यक्त्वकी उत्पत्ति कैसैं है सो कहै हैं,—

सत्तण्हं पयडीणं उवसमदो होदि उवसमं सम्मं ।
खयदो य होइ खइयं केवलिमूले मणुसस्स ॥२०८॥

भाषार्थ—मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृतिमिथ्यात्व, अनंतानुवन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, इनि सात मोहकर्मकी प्रकृतिनिके उपशम होतैं उपशम सम्यक्त्व होय है अर इनि सातों मोहकर्मकी प्रकृतिका क्षय होनेतैं क्षायिक सम्यक्त्व उपजै है. सो यह क्षायिक सम्क्त्व केवलि कहिये केवलज्ञानी तथा श्रुतकेवलीकै निकट कर्मभूमिके मनुष्यकै ही उपजै है, भावार्थ—इहां ऐसा जानना जो क्षायिक सम्यक्त्वका प्रारम्भ तौ केवलि श्रुतकेवलीके निकट मनुष्यकै ही होय है. अर निष्ठापन अन्यगतिमें भी होय है ॥ २०८ ॥

आगें क्षायोपशमिक सम्यक्त्व कैसैं होय सो कहै हैं,—

छह्लं सजाइरूवेण उदयमाणाणं ।

र्मके उदयसे अपनी अपनी पर्याप्ति
रीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं होती तब तक

सम्मत्तकम्मउदए खयउवसामियं हवे सम्मं ॥२०९॥

भाषार्थ—पूर्वोक्त सात प्रकृति तिनिमेंसूं छह प्रकृतिनिका उदय न होय तथा सजाति कहिये समान जातीय प्रकृतिकरि उदयरूप होय बहुरि सम्यक् कर्म प्रकृतिका उदय होतैं क्षायोपशमिक होय. भावार्थ—मिथ्यात्व सम्यग्मिथ्यात्वका तीव्र उदयका अभाव होय अर सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय होय अर अनन्तानुबंधी क्रोध मान माया लोभका उदयका अभाव होय तथा विसंयोजनकरि अप्रत्याख्यानावरण आदिक रूपकरि उदयमान होय तब क्षायोपशमिक सम्यक्त्व उपजै है. इनि तीनूं ही सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका विशेष कथन गोमट्टसार लब्धिसारतैं जानना ॥ २०९ ॥

आगें औपशमिक क्षायोपशमिक सम्यक्त्व अर अनंतानुबंधीका विसंयोजन अर देशव्रत इनिका पावना अर छूटि जाना उत्कृष्टकरि कहै हैं,—

गिण्हदि मुंचदि जीवो वे सम्मत्ते असंखवाराओ।
पढमकसायविणासं देसवयं कुणइ उक्किट्ठं ॥२१०॥

भाषार्थ—यह जीव औपशमिक क्षायोपशमिक ए दोय तौ सम्यक्त्व अर अनंतानुबन्धीका विनाश विसंयोजन अप्रत्याख्यानादिरूप परिणमावना अर देशव्रत इनि च्यारिनिकूं असंख्यातबार ग्रहण करै है अर छोडै है. यह उत्कृष्टकरि कह्या है.. भावार्थ—पल्यका असंख्यातवां भाग परिमाण जो

असंख्यात तेतीवार उत्कृष्टपणै ग्रहण करै अर छोडै पीछैं मुक्ति प्राप्ति होय ॥ २१० ॥

आगें ऐसैं सप्त प्रकृतिके उपशम क्षय क्षयोपशमतैं उपज्या सम्यक्त्व कैसैं जाणिये ऐसा तत्त्वार्थश्रद्धानकौं नव गाथानिकरि कहै हैं,—

जो तच्चमणेयंतं णियमा सद्दहदि सत्तभंगेहिं ।
लोयाण पण्हवसदो ववहारपवत्तणट्ठं च ॥ २११ ॥
जो आयरेण मण्णदि जीवाजीवादि णवविहं अत्थं ।
सुदणाणेण णयेहिं य सो सद्दिट्ठी हवे सुद्धो ॥२१२

भाषार्थ—जो पुरुष सप्तभंगनिकरि अनेकांत तत्त्वनिका नियमतैं श्रद्धान करै, जातैं लोकनिका प्रश्नके वशतैं विधिनिषेधतैं वचनके सात ही भंग होय हैं तातैं व्यवहारके प्रवर्त्तनेके अर्थि भी सातभंगनिका वचनकी प्रवृत्ति होय है. बहुरि जो जीव अजीव आदि नवप्रकार पदार्थकौं श्रुतज्ञान प्रमाणकरि तथा तिसके भेद जे नय तिनिकरि अपना आदर यत्न उद्यमकरि मानै श्रद्धान करै सो शुद्ध सम्यग्दृष्टी है. भावार्थ—वस्तुका स्वरूप अनेकांत है. जामें अनेक अंत कहिये धर्म होय सो अनेकान्त कहिये. ते धर्म अस्तित्व नास्तित्व एकत्व अनेकत्व नित्यत्व अनित्यत्व भेदत्व अभेदत्व अपेक्षात्व दैवसाध्यत्व पौरुषसाध्यत्व हेतुसाध्यत्व आगमसाध्यत्व अंतरंगत्व बहिरंगत्व इत्यादि तौ सामान्य हैं. बहुरि

कर्मके उदयसे अपनी अपनी पर्याप्ति शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं होती तब तक

द्रव्यत्व पर्यायत्व जीवत्व अजीवत्व स्पर्शत्व रसत्व गन्धत्व वर्णत्व शब्दत्व शुद्धत्व अशुद्धत्व मूर्त्तत्व अमूर्त्तत्व संसारित्व सिद्धत्व अवगाहत्व गतिहेतुत्व स्थितिहेतुत्व वर्त्तनाहेतुत्व इत्यादि विशेष धर्म हैं. सो तिनिके प्रश्नके वशतैं विधिनिषेधरूप वचनके सात भंग होय हैं. तिनिकै ' स्यात् ' ऐसा पद लगावणा. स्यात् नाम कथंचित कोईप्रकार ऐसा अर्थमें है. तिसकरि वस्तुकों अनेकान्त साधणा. तहां वस्तु स्यात् अस्तित्वरूप है, ऐसैं कोईप्रकार अपने द्रव्य क्षेत्र काल भावकरि अस्तित्वरूप कहिये है. बहुरि स्यात् नास्तित्वरूप है, ऐसैं पर वस्तुके द्रव्य क्षेत्र काल भावकरि नास्तित्वरूप कहिये है. बहुरि वस्तु स्यात् अस्तित्व नास्तित्वरूप है, ऐसैं वस्तुमें दोऊ ही धर्म पाइये हैं अर वचनकरि क्रमतैं कहे जाय हैं, बहुरि स्यात् अवक्तव्य है. ऐसैं वस्तुमें दोऊ ही धर्म एक काल पाइये है तथापि एक काल वचनकरि कहे न जाय हैं तातैं कोई प्रकार अवक्तव्य है. बहुरि अस्तित्व करि कह्या जाय है दोऊ एक काल हैं, तातैं कह्या न जाय ऐसैं वक्तव्य भी है अर अवक्तव्य भी है तातैं स्यात् अस्तित्व अवक्तव्य है. ऐसैं ही नास्तित्व अवक्तव्य कहना. बहुरि दोऊ धर्म क्रमकरि कह्या जाय युगपत् कह्या न जाय तातैं स्यात् अस्तित्व नास्तित्व अवक्तव्य कहना. ऐसैं सात ही भंग कोई प्रकार संभवै है. ऐसैं ही एकत्व अनेकत्व आदि सामान्य धर्मनिपरि सात भंग विधिनिषेधतैं लगावणा. जैसैं २ जहां अपेक्षा सं-

भवै सो लगावणी. बहुरि तैसैं ही विशेषत्व धर्म जीवत्व आदिमें लगावना जैसै जीव नामा वस्तु सो स्यात् जीवत्व स्यात् अजीवत्व इत्यादि लगावणा. तहां अपेक्षा ऐसैं जो अपना जीवत्व धर्म आपमें है तातैं जीवत्व है. पर अजीवका अजीवत्व धर्म यामें नाहीं तौऊ अपने अन्य धर्मकौं मुख्य करि कहिये ताकी अपेक्षा अजीवत्व है इत्यादि लगावणा. तथा जीव अनन्त हैं ताकी अपेक्षा अपना जीवत्व आपमें परका जीवत्व यामें नाहीं है. तातैं ताकी अपेक्षा अजीवत्व है ऐसैं भी सधै है. इत्यादि अनादि निधन अनन्त जीव अजीव वस्तु हैं, तिनिविषै अपने अपने द्रव्यत्व पर्यायत्व अनन्त धर्म हैं तिनि सहित सप्त भंगतैं साधना. तथा तिनिके स्थूल पर्याय हैं ते भी चिरकालस्थायी अनेक धर्मरूप होय हैं. जैसैं जीव संसारी सिद्ध, बहुरि संसारीमें त्रस थावर, तिनिमें मनुष्य तिर्यंच इत्यादि. बहुरि पुद्गलमें अणु स्कन्ध तथा घट पट आदि, सो इनिके भी कथंचित् वस्तुपणा संभवै है. सो भी तैसैं ही सप्त भंगतैं साधणा. बहुरि तैसैं ही जीव पुद्गलके संयोगतैं भये आस्रव बंध संवर निर्जरा पुण्य पाप मोक्ष आदि भाव तिनिमें भी बहुत धर्मपणाकी अपेक्षा तथा परस्पर विधिनिषेधतैं अनेक धर्मरूप कथंचित् वस्तुपणा संभवै है. सो सप्तभंगतैं साधणा.

जैसैं एक पुरुषमैं पिता पुत्र मामा भाणजा काका भतीजापणा आदि धर्म संभवै हैं. सो अपनी अपनी अपेक्षातैं

कर्मके उदयसे अपनी अपनी पर्याप्ति शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं होती तब तक.

विधिनिषेधकरि सात भंगतैं साधणा. ऐसा नियमकरि जानना, जो वस्तुमात्र अनेक धर्म स्वरूप है सो सर्वकूं अनेकांत जाणि श्रद्धान करै, बहुरि तैसैं ही लोककेविषैं व्यवहार प्रवर्त्तावै सो सम्यग्दृष्टी है. बहुरि जीव अजीव आस्रव बन्ध पुराय पाप संवर निर्जरा मोक्ष ये नव पदार्थ हैं तिनिकूं तैसैं ही सप्तभंगतैं साधने. ताका साधन श्रुतज्ञान प्रमाण है. अर ताके भेद द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक तिनिके भी भेद नैगम संग्रह व्यवहार ऋजुसूत्र शब्द समभिरूढ एवंभूत नय हैं. बहुरि तिनिके भी उत्तरोत्तर भेद जेते वचनके प्रकार हैं तेते हैं, तिनिकूं प्रमाणसप्तभंगी अर नयसप्तभंगीके विधानकरि साधिये है. तिनिका कथन पहले लोकभावना में कीया है. बहुरि तिसका विशेष कथन तत्त्वार्थसूत्रकी टीकातैं जानना. ऐसैं प्रमाण नयनिकरि जीवादि पदार्थनिकूं जानिकरि श्रद्धान करे सो शुद्ध सम्यग्दृष्टी होय है. बहुरि इहां यह विशेष और जानना जो नय हैं ते वस्तुके एक २ धर्मके ग्राहक हैं ते अपने अपने विषयरूप धर्मकूं ग्रहण करनेविषै समान हैं तोऊ पुरुष अपने प्रयोजनके वशतैं तिनकौं मुख्य गौणकरि कहै हैं जैसैं जीव नामा वस्तु है तामैं अनेक धर्म हैं. तोऊ चेतनपणा आदि प्राणधारणपणा अजीवनितैं असाधारण देखि तिनि अजीवनितैं न्यारा दिखावनेके प्रयोजनके वशतैं मुख्यकरि वस्तुका जीव नाम धरया. ऐसैं ही मुख्य गौण करनेका सर्व धर्मके प्रयोजनके वशतैं जानना.

इहां इस ही आशयतैं अध्यात्म कथनीविषै मुख्यकूं तौ निश्चय कह्या है. अर गौणकूं व्यवहार कह्या है. तहां अभेद धर्म तौ प्रधानकरि निश्चयका विषय कह्या. अर भेद नयकूं गौणकरि व्यवहार कह्या सो द्रव्य तौ अभेद है. तातैं निश्चयका आश्रय द्रव्य है. बहुरि पर्याय भेद रूप है. तातैं व्यवहारका आश्रय पर्याय है तहां प्रयोजन ऐसा जो भेदरूप वस्तुकूं सर्व लोक जानै है. तातैं जो जानै सो ही प्रसिद्ध है. याहीतैं लोक पर्यायबुद्धि हैं. जीवकै नरनारक आदि पर्याय हैं. तथा राग द्वेष क्रोध मान माया लोभ आदि पर्याय हैं. तथा ज्ञानके भेदरूप मतिज्ञानादिक पर्याय हैं तिनि पर्यायनिहीकौं लोक जीव जानै हैं. तातैं इनि पर्यायनिविषै अभेदरूप अनादि अनन्त एकभाव जो चेतना धर्म ताकौं ग्रहणकरि निश्चय नयका विषय कहिकरि जीव द्रव्यका ज्ञान कराया. पर्यायाश्रित जो भेद नय ताकौं गौण कीया. तथा अभेद दृष्टिमें यह दीखै नाहीं तातै अभेद नयका दृढ़ श्रद्धान करावनेकौं कहा जो पर्याय नय है सो व्यवहार है, अभूतार्थ है, असत्यार्थ है. सो भेद बुद्धिका एकांत निराकरण करनेके अर्थ यह कहना जानना. ऐसा नाहीं कि यह भेद है, सो असत्यार्थ कह्या. जो वस्तुका स्वरूप नाहीं है जो ऐसैं सर्वथा मानै तौ अनेकांतमें समझ्या नाहीं सर्वथा एकांत श्रद्धानतैं मिथ्यादृष्टी होय है. जहां अध्यात्मशास्त्रनिविषै निश्चय व्यवहार नय कहे हैं तहां भी तिनि दोऊ-

र्मके उदयसे अपनी अपनी पर्याप्ति
...स पूर्ण नहीं होती तब तक

निका परस्पर विधिनिषेधतैं सप्तभंगकरि वस्तु साधणा. एकं कौं सर्वथा सत्यार्थ मानै अर एककौं सर्वथा असत्यार्थ मानै तौ मिथ्या श्रद्धान होय है. तातैं तहां भी कथंचित् जानना. बहुरि अन्य वस्तु अन्यविषै आरोपणकरि प्रयोजन साधिये है तहां उपचार नय कहिये है सो यह भी व्यवहारविषै ही गर्भित है ऐसैं कह्या है. जो जहां प्रयोजन निमित्त होय तहां उपचार प्रवर्तै है. घृतका घट कहिये तहां माटीका घडाके आश्रय घृत भरया होय तहां व्यवहारी जननिकूं आधार आधेय भाव दीखै है ताकूं प्रधानकरि कहिये है. जो घृतका घडा है ऐसैं ही कहैं लोक समझैं. अर घृतका घडा मगावै तब तिसकूं ले आवै, तातैं उपचारविषै भी प्रयोजन संभवै है ऐसैं ही अभेद नयकूं मुख्य करै तहां अभेद दृष्टिमैं भेद दीखै नाहीं तब तिसमैं ही भेद कहै सो असत्यार्थ है तहां भी उपचारसिद्धि होय है यह मुख्य गौणका भेदकूं सम्यग्दृष्टी जानै है. मिथ्यादृष्टी अनेकांत वस्तुकूं जानै नाहीं. अर सर्वथा एक धर्म ऊपरि दृष्टि पडै तब तिसहीकूं सर्वथा वस्तु मानि अन्य धर्मकूं कै तौ सर्वथा गौणकरि असत्यार्थ मानै, कै सर्वथा अन्य धर्मका अभाव ही मानै. तथा मिथ्यात्व दृढ होय है सो यह मिथ्यात्वनामा कर्मकी प्रकृतिके उदयतैं यथार्थ श्रद्धा न होय है तातैं तिस प्रकृतिका कार्य है सो भी मिथ्यात्व ही कहिये है. अर तिस प्रकृतिका अभाव भये तत्त्वार्थका यथार्थ श्रद्धान होय है सो यह अनेकान्त वस्तुविषै

प्रमाण नयकरि सात भंगकरि साध्या हूवा सम्यक्त्वका कार्य है. तातैं याकूं भी सम्यक्त्व ही कहिये. ऐसैं जानना. जिन-मतकी कथनी अनेक प्रकार है सो अनेकान्तरूप समझना. अर याका फल अज्ञानका नाश होकर उपादेयकी बुद्धि अर वीतरागताकी प्राप्ति है. सो इस कथनिका मर्म पावना बडे भाग्यतैं होय है. इस पञ्चम कालमें अवार इस कथनीका गुरुका निमित्त सुलभ नाहीं है तातैं शास्त्र समझनेका निरन्तर उद्यम राखि समझना योग्य है. जातैं याके आश्रय मुख्यपणैं सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति है. यद्यपि जिनेन्द्रकी प्रतिमाका दर्शन तथा प्रभावना अंगका देखना इत्यादि सम्यक्त्वकी प्राप्तिकूं कारण है तथापि शास्त्रका श्रवण करना, पढना, भावना करना, धारणा, हेतुयुक्तिकरि स्वमत परमतका भेद जानि नयविवक्षाकूं समझना वस्तुका अनेकान्तस्वरूप निश्चय करना मुख्य कारण है. तातैं भव्य जीवनिकूं इसका उपाय निरन्तर राखणा योग्य है।

आगें कहे हैं जो सम्यग्दृष्टी भये अनन्तानुवंधी कषाय का अभाव होय है ताके परिणाम कैसे होय हैं,—

जो ण य कुव्वदि गव्वं पुत्तकलत्ताइसव्वअत्थेसु ।
उवसमभावे भावदि अप्पाणं मुणादि तिणामित्तं ३१३

भाषार्थ—जो सम्यग्दृष्टी होय है सो पुत्र कलत्र आदि सर्व परद्रव्य तथा परद्रव्यनिके भावनिविषे गर्व नाहीं करै है. आपकै वडापणा मानै तौ सम्यक्त्व काहेका. बहुरि

कर्मके उदयसे अपनी अपनी पर्याप्ति
शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं होती तब तक

उपशम भावनिकूं भावै है अनन्तानुबन्धीसम्बन्धी तीव्र रागद्वेष परिणामके अभावतैं उपशम भावनिकी भावना निरन्तर राखै है बहुरि अपने आतमाकूं तृण समान हीण मानै है जातैं अपना स्वरूप तो अनन्त ज्ञानादिरूप है. सो जेतै तिसकी प्राप्ति न होय तेतै आपकूं तृणबराबरी मानै है. काहूविषै गर्व नाहीं करै है ॥ ३१३ ॥

विसयासत्तो वि सया सव्वारंभेसु वट्टमाणो वि ।
मोहाविलासो एसो इदि सव्वं मण्णदे हेयं ॥ ३१४ ॥

भाषार्थ—अविरत सम्यग्दृष्टी यद्यपि इन्द्रिय विषयनिविषै आसक्त है बहुरि त्रस थावर जीवके घात जामें होंय ऐसे सर्व आरम्भविषै वर्त्तमान है. अप्रत्याख्यानावरण आदि कषायनिके तीव्र उदयनितैं विरक्त न हूवा है तौऊ ऐसा जाणै है कि यह मोहकर्मका उदयका विलास है. मेरे स्वभावमें नाहीं है उपाधि है रोगवत है त्यजने योग्य है. वर्त्तमान कषायनिकी पीडा न सही जाय है तातैं असमर्थ हूवा विषयनिका सेवना तथा बहु आरंभमैं प्रवर्त्तना हो है ऐसा मानै है ॥ ३१४ ॥

उत्तमगुणगहणरओ उत्तमसाहूण विणयसंजुत्तो ।
साहम्मियअणुराई सो सद्दिट्ठी हवे परमो ॥ ३१५ ॥

भाषार्थ—बहुरि कैसा है सम्यग्दृष्टी उत्तम गुण जे सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तप आदिक तिनिविषै तौ अनुरागी

होय, बहुरि तिनि गुणनिके धारक जे उत्तम साधु तिनिकै विनयकरि संयुक्त होय, बहुरि आप समान जे सम्यग्दृष्टी साधर्मी तिनिविषै अनुरागी होय, वात्सल्यगुणसहित होय, सो उत्तम सम्यग्दृष्टी होय है. ए तीणूं भाव न होंय तौ जानिये याकै सम्यक्त्वका यथार्थपणा नाही ॥ २१५ ॥

देहमिलियं पि जीवं णियणाणगुणेण मुणदि जो भिण्णं
जीवमिलियं पि देहं कंचुअसरिसं वियाणेई ॥२१६॥

भावार्थ—यह जीव देहतैं मिलि रह्या है तौऊ अपना ज्ञानगुण जाणै है. तातैं आपकूं देहतैं भिन्न ही जाणै है. बहुरि देह जीवतैं मिलि रह्या है तौऊ ताकं कंचुक कहिये कपडेका जामासारिखा जाणै है जैसै देहतैं जामा भिन्न है तैसैं जीवतैं देह भिन्न है. ऐसैं जाणै है ॥ २१६ ॥

णिज्जियदोसं देवं सव्वाजिवाणं दयावरं धम्मं ।
वज्जियगंथं च गुरुं जो मण्णदि सो हु सद्दिट्ठी २१७

भावार्थ—जो जीव दोषवर्जित तौ देव मानै बहुरि सर्व जीवनिकी दयाकं श्रेष्ठ धर्म मानै. बहुरि निर्ग्रन्थ गुरुकूं गुरु मानै सो प्रगटपणै सम्यग्दृष्टी है. भावार्थ—सर्वज्ञ वीतराग अठारह दोषनिकरि रहित देवकूं मानै, अन्य दोषसहित देव हैं तिनिकूं संसारी जाणै, ते मोक्षमार्गी नाहीं, ऐसा जानि वंदै पूजै नाहीं. तथा अहिंसारूप धर्म जानै, जे यज्ञादि देवतानिकै अर्थ पशुघातकरि चढावै ताकूं धर्म मानै हैं. तिसकौं

—र्मके उदयसे अपनी अपनी पर्याप्ति
शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं होती तब तक

पाप ही जानि आप तिसविषै नाहीं प्रवर्तै. बहुरि जे ग्रन्थ-सहित अनेक भेष अन्यमतीनके हैं तथा काल दोषतैं जैनमतमें भी भेष भये हैं तिनि सर्वनिकों भेषी पाषंडी जानै, वंदै पूजै नाहीं. सर्व परिग्रहतैं रहित होय तिनिहीकूं गुरु मानि वन्दै पूजै, जातैं देव गुरु धर्मके आश्रय ही मिथ्या सम्यक् उपदेश प्रवर्तै है. सो कुदेव कुधर्म कुगुरुका वन्दना पूजना तौ दूर ही रहौ तिनिके संसर्गहीतैं श्रद्धान बिगडै है. तातैं सम्यग्दृष्टी तिनिकी संगति भी न करै। स्वामी समन्तभद्र आचार्य रत्नकरण्ड श्रावकाचारमें ऐसैं कह्या है, जो सम्यग्दृष्टी है सो कुदेव कुत्सित आगम अर कुलिंगी भेषी तिनिकं भयतैं तथा किछू आशातैं तथा लोभतैं भी प्रणाम तथा तिनिका विनय न करै इनिका संसर्गतैं श्रद्धान विगडै है. धर्मकी प्राप्ति तौ दूरि ही रहौ. ऐसा जानना।

आगैं मिथ्यादृष्टी कैसा होय सो कहै हैं,—

दोससहियं पि देवं जीवहिंसाइसंजुदं धम्मं ।
गंथासत्तं च गुरुं जो मण्णदि सो हु कुद्दिट्ठी ३१८

भाषार्थ—जो जीव दोषनिसहित देवनिकूं तौ देव मानै बहुरि जीवहिंसादिसहितकूं धर्म मानै, बहुरि परिग्रहकेविषै आशक्तकूं गुरु मानै, सो प्रगटपणै मिथ्यादृष्टी है. भावार्थ—भाव मिथ्यादृष्टी तौ अदृष्ट छिप्या मिथ्याती है. बहुरि जो कुदेव राग द्वेष मोह आदि अठारह दोषनिकरि सहितकूं देव मानिकरि पूजै वन्दै हैं. अर हिंसा जीवघात आदिकरि धर्म

मानैं हैं बहुरि परिग्रहकेविषै आसक्त ऐसे भेषीनिकूं गुरु मानैं हैं ते प्रगट प्रसिद्ध मिथ्यादृष्टी हैं।

आगें कोई कहै कि व्यन्तर आदि देव लक्ष्मी दे हैं, उपकार करै हैं तिनिकौं पूजैं वन्दैं कि नाही ताकूं कहै हैं ॥

ण य को वि देदि लच्छी ण को वि जीवस्स कुणइ उवयारं
उवयारं अवयारं कम्मं पि सुहासुहं कुणदि ॥३१९॥

भाषार्थ—या जीवकूं कोई व्यन्तर आदि देव लक्ष्मी नाहीं देवै है बहुरि कोई अन्य उपकार भी नाहीं करै है. जीवके पूर्वसंचित शुभ अशुभ कर्म हैं ते ही उपकार तथा अपकार करै हैं. भावार्थ—केई ऐसैं मानै है जो व्यंतर आदि देव हमकूं लक्ष्मी दे हैं हमारा उपकार करै हैं सो तिनिकूं हम पूजै वन्दै हैं. सो यह मिथ्या बुद्धि है. प्रथम तौ अवार कालमें प्रत्यक्ष कोई व्यंतर आदि आप देता देख्या नाहीं. उपकार करता दीखै नाहीं जो ऐसैं होय तो पूजनेवाले दरिद्री रोगी दुःखी काहेकूं रहैं. तातैं वृथा कल्पना करै हैं. बहुरि परोक्ष भी ऐसा नियमरूप सम्बन्ध दीखै नाहीं जो पूजै तिनिकै अवश्य उपकारादिक होय ही. तातैं यह मोही जीव वृथा ही विकल्प उपजावै है. जो पूर्वकर्म शुभाशुभ संचित हैं सो ही या प्राणीकै सुख दुःख धन दरिद्र जीवन मरनकूं करै हैं ॥३१९॥

भत्तीए पुज्जमाणो विंतरदेवो वि देदि जदि लच्छी।
तो किं धम्मं कीरदि एवं चिंतेइ सद्दिट्ठी ॥३२०॥

मैंके उदयसे अपनी अपनी पर्याप्ति
शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं होती तब तक

भाषार्थ—सम्यग्दृष्टी ऐसैं विचारै जो व्यंतर देव ही भक्तिकरि पूज्या हूवा लक्ष्मी दे है तौ धर्म काहेकूं कीजिये. भावार्थ—कार्य तौ लक्ष्मीतैं है सो व्यंतर देव ही पूजेतैं लक्ष्मी दे तौ धर्म काहेकूं सेवना ? बहुरि मोक्षमार्गके प्रकरणमें संसारकी लक्ष्मीका अधिकार भी नाहीं तातैं सम्यग्दृष्टी तौ मोक्षमार्गी है. संसारकी लक्ष्मीकूं हेय जानै है ताकी वांछा ही न करै है. जो पुण्यका उदयतैं मिलै तौ मिलौ, न मिलै तौ मति मिलौ, मोक्षहीके साधनेकी भावना करै है. तातैं संसारीक देवादिककूं काहेकूं पूजै वन्दै ? कदाचित् हू नाहीं पूजै वन्दै ॥ ३२० ॥

आगें सम्यग्दृष्टीके विचार होय सो कहै हैं,—

जं जस्स जम्मिदेसे जेण विहाणेण जम्मि कालम्मि ॥
णादं जिणेण णियदं जम्मं वा अहव मरणं वा ३२१

तं तस्स तम्मि देसे तेण विहाणेण तम्मि कालम्मि ॥
को सक्कइ चालेदुं इंदो वा अह जिणिंदो वा ३२२

भाषार्थ—जो जिस जीवकै जिस देशविषै जिस कालविषै जिस विधानकरि जन्म तथा मरण उपलक्षणतैं दुःख सुख रोग दारिद्र आदि सर्वज्ञ देवनैं जाण्या है जो ऐसैं ही नियम करि होयगा, सो ही तिस प्राणीकै तिस ही देशमें तिसही कालमें तिस ही विधानकरि नियमतैं होय है. ताकूं इन्द्र तथा जिनेन्द्र तीर्थंकर देव कोई भी निवारि नाहीं सकै है.

भावार्थ— सर्वज्ञ देव सर्व द्रव्य क्षेत्र काल भावकी अवस्था जाणै है. सो जो सर्वज्ञके ज्ञानमें प्रतिभास्या है सो नियमक-रि होय है तामें अधिक हीन किछू होता नाहीं ऐसें सम्य-ग्दृष्टी विचारै है ॥ ३२१-३२२ ॥

आगै ऐसे तो सम्यग्दृष्टी है अर यामें संशय करै सो मिथ्यादृष्टी है ऐसें कहै हैं,—

एवं जो णिच्चयदो जाणदि दव्वाणि सव्वपज्जाए ।
सो सद्दिट्ठी सुद्धो जो संकदि सो हु कुद्दिट्ठी ३२३

भावार्थ—या प्रकार निश्चयतें सर्व द्रव्य जीव पुद्गल धर्म अधर्म आकाश काल इनिकूं बहुरि इनि द्रव्यनिकी सर्व पर्या-यनिकूं सर्वज्ञके आगमके अनुसार जाणै है श्रद्धान करै है सो शुद्ध सम्यग्दृष्टी होय है. बहुरि ऐसें श्रद्धान न करै शंका संदेह करै है सो सर्वज्ञके आगमतें प्रतिकूल है प्रगटपणें मि-थ्यादृष्टी है ॥ ३२३ ॥

आगें कहै हैं जो विशेष तत्त्वकूं नाहीं जानै है अर जि-नवचनविषै आज्ञा मात्र श्रद्धान करै है सो भी श्रद्धावान क-हिये है,—

जो ण वि जाणइ तच्चं सो जिणवयणे करेइ सद्दहणं
जं जिणवरेहिं भणियं तं सव्वमहं समिच्छामि ३२४

भावार्थ—जो जीव अपने ज्ञानावरणके विशिष्ट क्षयोपश-म विना तथा विशिष्ट गुरुके संयोगविना तत्त्वार्थकूं नाहीं

* कर्मके उदयसे अपनी अपनी पर्याप्ति
**पर्याप्ति पूर्ण नहीं होवै तब तक

जान सकै है सो जीव जिनवचनविषै ऐसैं श्रद्धान करै है जो जिनेश्वर देवनै जो तत्त्व कह्या है, सो सर्व ही मैं भले प्रकार इष्ट करूं हूं ऐसे भी श्रद्धावान् होय हैं. भावार्थ—जो जिनेश्वरके वचनकी श्रद्धा करै है जो सर्वज्ञ देवने कह्या है सो सर्व मेरे इष्ट है. ऐसैं सामान्य श्रद्धातैं भी आज्ञा सम्यक्त्व कहा है ॥ ३२४ ॥

आगें सम्यक्त्वका माहात्म्य तीन गाथाकरि कहै हैं,—

रयणाण महारयणं सव्वजोयाण उत्तमं जोयं ।
रिद्धीण महारिद्धी सम्मत्तं सव्वसिद्धियरं ॥३२५॥

भावार्थ—सम्यक्त्व है सो रत्ननिविषै तो महारत्न है बहुरि सर्व योग कहिये वस्तुकी सिद्धि करनेके उपाय, मंत्र, ध्यान आदिक तिनिमें उत्तम योग है जातैं सम्यक्त्वतैं मोक्ष सधै है. बहुरि अणिमादिक ऋद्धि हैं तिनिमें बडी ऋद्धि है बहुत कहा कहिये सर्वसिद्धि करनेवाला यह सम्यक्त्व ही है।

सम्मत्तगुणप्पहाणो देविंदणारिंदवंदिओ होदि ।
चत्तवयो वि य पावइ सग्गसुहं उत्तमं विविहं ३२६

भाषार्थ—सम्यक्त्व गुणकरि सहित जो पुरुष प्रधान है सो देवनिके इन्द्रनिकरि तथा मनुष्यनिके इन्द्र चक्रवर्त्यादिकरि वन्दनीय हो हैं. बहुरि व्रतरहित होय तौऊ उत्तम नाना प्रकारके स्वर्गके सुख पावै है. भावार्थ—जामैं सम्यक्त्व गुण होय सो प्रधान पुरुष है देवेन्द्रादिककरि पूज्य होय है. ब-

हुरि सम्यक्त्वमें देवहीकी आयु बांधै है तातैं व्रतरहितकै भी स्वर्गहीका जाना मुख्य कह्या है. बहुरि सम्यक्त्वगुणप्रधान-का ऐसा भी अर्थ होय है जो सम्यक्त्व पचीस मल दोष-नितैं रहित होय अपने निशंकित आदि गुणनिकरि सहित होय तथा संवेगादि गुणनिकरि सहित होय ऐसैं सम्यक्त्व-के गुणनिकरि प्रधान पुरुष होय सो देवेन्द्रादिकरि पूज्य होय है अर स्वर्गकूं प्राप्त होय है ॥ ३२६ ॥

सम्माइट्ठी जीवो दुग्गइहेदुं ण बंधदे कम्मं ।
जं बहुभवेसु बद्धं दुक्कम्मं तं पि णासेदि ॥ ३२७ ॥

भाषार्थ—सम्यग्दृष्टी जीव है सो दुर्गतिका कारण जो अ-शुभ कर्म ताकूं नाहीं बांधै है. बहुरि जो पापकर्म पूर्वैं बहुत भवनिविषै बांध्या है तिसका भी नाश करै है. भावार्थ—स-म्यग्दृष्टी मरणकरि द्वितीयादिक नरक जाय नाहीं. ज्योतिष व्यंतर भवनवासी देव होय नाहीं. स्त्री उपजै नाहीं. पांच थावर विकलत्रय असैनी निगोद म्लेच्छ कुभोगभूमि इनि-विषै उपजै नाहीं. जातैं याकै अनन्तानुबंधीके उदयके अभा-वतैं दुर्गतिके कारण कषायनिके स्थानकरूप परिणाम नाहीं हैं. इहां तात्पर्य ऐसा जानना जो तीनकाल तीन लोकविषै स-म्यक्त्व समान कल्याणरूप अन्य पदार्थ नाहीं है. बहुरि मि-थ्यात्वसमान शत्रु नाहीं है. तातैं श्रीगुरुनिका यह उपदेश है जो अपना सर्वस्व उद्यम उपाय यत्नकरि मिथ्यात्वका नाश

कर्मके उदयसे अपनी अपनी पर्याप्ति शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं होती तब तक

करि सम्यक्त्व अंगीकार करना. ऐसैं गृहस्थधर्मके बारह भेद-निमें पहला भेद सम्यक्त्वसहितपणा है ताका निरूपण किया ॥ ३२७ ॥

आगैं ग्यारह भेद प्रतिमाके हैं तिनिका स्वरूप कहै हैं तहां प्रथम ही दार्शनिक नामा श्रावककूं कहै हैं,—

बहुतससमण्णिदं जं मज्जं मंसादिणिंदिदं दव्वं ।
जो ण य सेवदि णियमा सो दंसणसावओ होदि ३२८

भाषार्थ— बहुत त्रस जीवनिके घातकरि तथा तिनिकरि सहित जो मदिरा तथा अति निन्दनीक जो मांस आदि द्रव्य तिनिकूं जो नियमतैं न सेवै, भक्षण न करै सो दार्शनिक श्रावक है. भावार्थ—मदिरा अर मांस अर आदि शब्दतैं मधु अर पंच उदंवर फल ए वस्तु बहुत त्रस जीवनिके घातकरि सहित हैं तातैं दार्शनिक श्रावक है सो तिनिकूं भक्षण न करै। मद्य तौ मनकूं मोहै है तब धर्मकूं भूलै है. बहुरि मांस त्रस घातविना होय ही नाहीं. मधुकी उत्पत्ति प्रसिद्ध है त्रस घातका ठिकाणा ही है. बहुरि पीपल बड पीलू फलनिमें प्रत्यक्ष त्रस जीव उडते देखिये हैं। अन्य ग्रंथनिमें कह्या है जो ए श्रावकके आठ मूल गुण हैं अर इनिकूं त्रस हिंसाके उपलक्षण कहे हैं तातैं जिनि वस्तुनिमें त्रसहिंसा बहुत होय ते श्रावकके अभक्ष्य हैं. तातैं भक्षणै योग्य नाहीं. तथा सात विसन अन्याय प्रवृत्तिका मूल हैं तिनिका भी त्याग इहां कह्या है. जूवा मांस मद वेश्या सिकार चोरी परस्त्री ए सात व्य-

सन कहे हैं. सो व्यसन नाम आपदा वा कष्टका है सो. इनिके सेवनहारेकूं आपदा आवै है, राज पंचनिका दंडयोग्य होय है तथा तिनिका सेवन भी आपदा वा कष्टरूप है, श्रावक ऐसे अन्याय कार्य करै नाहीं. इहां दर्शन नाम सम्यक्त्वका है तथा धर्मकी मूर्त्ति सर्वके देखनेमें आवै ताका भी नाम दर्शन है. सो सम्यग्दृष्टी होय जिनमतकूं सेवै अर अभक्ष अन्याय अंगीकार करै तौ सम्यक्त्वकूं तथा जिनमतकौं लजावै मलिन करै तातैं इनिकौं नियमकरि छोडे ही दर्शनप्रतिमाधारी श्रावक होय है ॥ ३२८ ॥

दिढचित्तो जो कुव्वदि एवं पि वयं णियाणपरिहीणो
वेरग्गभावियमणो सो वि य दंसणगुणो होदि ॥ ३२९

भाषार्थ—ऐसे व्रतकूं दृढचित्त हूवा संता निदान कहिये इह लोक परलोकनिके भोगनिकी वांछा ताकरि रहित हूवा संता वैराग्यकरि भावित (आला) है चित्त जाका, ऐसा हूवा संता जो सम्यग्दृष्टी पुरुष करै है सो दार्शनिक श्रावक कहिए है । भावार्थ—पहिली गाथामें श्रावक कह्या ताकें ए तीन विशेषण और जानने. प्रथम तौ दृढचित्त होय परीषह आदि कष्ट आवै तौ व्रतकी प्रतिज्ञातैं चिगै नाहीं, बहुरि निदानकरि रहित होय अर इस लोकसम्बन्धी जस सुख संपत्ति वा परलोकसम्बन्धी शुभगतिकी वांछा रहित वैराग्य भावनाकरि चित्त जाका आला कहिये सींच्या होय अभक्ष अन्यायकूं अत्यन्त अनर्थ जाणि त्याग करै ऐसा नाहीं

१. जिसके उदयसे अपनी अपनी पर्याप्ति शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं होती तब तक.

जो शास्त्रमें त्यागने योग्य कहे तातैं छोडने, परिणाममें राग मिटै नाहीं त्यागके अनेक आशय होय हैं सो याकैं अन्य आशय नाहीं केवल तीव्र कषायके निमित्त महापाप जानि त्यागै है इनिकूं त्यागे ही आगामी प्रतिमाके उपदेशयोग्य होय है. व्रती निःशल्य कह्या है सो शल्यरहित त्याग होय है ऐसैं दर्शनप्रतिमाधारी श्रावकका स्वरूप कह्या ॥ ३३० ॥

आगें दूजी व्रतप्रतिमाका स्वरूप कहै हैं,—

पंचाणुव्वयधारी गुणवयसिक्खावएहिं संजुत्तो ।
दिढचित्तो समजुत्तो णाणी वयसावओ होदि ३३१०

भाषार्थ—जो पांच अणुव्रतका धारी होय बहुरि गुणव्रत तीन अर शिक्षाव्रत च्यारि इनिकरि संयुक्त होय बहुरि दृढचित्त होय बहुरि समभावकरि युक्त होय बहुरि ज्ञानवान होय सो व्रत प्रतिमाका धारक श्रावक है. भावार्थ—इहां अणु शब्द अल्पका वाचक है जो पंच पापमें स्थूल पाप हैं तिनिका त्याग है. तातैं अणुव्रत संज्ञा है. बहुरि गुणव्रत अर शिक्षाव्रत तिनि अणुव्रतनिकी रक्षा करनहारे हैं तातैं अणुव्रती तिनिकूं भी धारै हैं. याकै प्रतिज्ञा व्रतकी है सो दृढचित्त है कष्ट उपसर्ग परीषह आये शिथिल न होय है. बहुरि अप्रत्याख्यानावरण कषायके अभावतैं ये व्रत होय हैं. अर प्रत्याख्यानावरण कषायके मन्द उदयतैं होय हैं. तातैं उपशमभाव सहितपणा विशेषण कीया है. यद्यपि दर्शनप्रतिमा धारीकै भी अप्रत्याख्यानावरणका अभाव तो भया है-

परन्तु प्रत्याख्यानावरण कषायके तीव्र स्थानकनिके उदयतैं अतीचार रहित पंच अणुव्रत होय नाहीं तातैं अणुव्रतसंज्ञा नाहीं आवै है अर स्थूल अपेक्षा अणुव्रत याकै भी त्रसका भक्षणका त्यागतैं अणुव्रत है व्यसननिमैं चोरीका त्याग है सो असत्य भी यामैं गर्भित है परस्त्रीका त्याग है वैराग्य भावना है तातैं परिग्रहके भी मूर्छाके स्थानक घटे है परिमाण भी करै है परन्तु निरतिचार नाहीं होय, तातैं व्रतप्रतिमा नाम न पावै है. बहुरि ज्ञानी विशेषण है सो युक्त ही है सम्यग्दृष्टी होय करि व्रतका स्वरूप जाणि गुरुनिकी दीई प्रतिज्ञा ले है सो ज्ञानी ही होय है, ऐसैं जानना ॥ ३३० ॥

आगैं पंच अणुव्रतमैं पहला अणुव्रत कहै हैं,—

जो वावरेइ सदओ अप्पाणसमं परं पि मण्णंतो ।
णिंदणगरहणजुत्तो परिहरमाणो महारंभे ॥ ३३१ ॥
तसघादं जो ण करदि मणवयकाएहिं णेव कारयदि ।
कुव्वंतं पि ण इच्छदि पढमवयं जायदे तस्स ॥ ३३२ ॥

भावार्थ—जो श्रावक त्रस जीव बेन्द्रिय तेन्द्रिय चौन्द्रिय पंचेन्द्रियका घात मन वचन काय करि आप करै नाहीं परके घात करावै नाहीं अर परकूं करताकौं इष्ट (भला) न मानै ताकै प्रथम अहिंसा नामा अणुव्रत होय है. सो कैसा है श्रावक ? दयासहित तौ व्यापार कार्यमैं प्रवर्तै है अर सर्व प्राणीकूं आप समान मानता है. बहुरि व्यापारादि कार्यनिमैं

---

*कर्मके उदयसे अपनी अपनी पर्याप्ति पर्याप्ति पूर्ण नहीं होवी तब तक.

हिंसा होय है ताकी अपने मनविषै अपनी निंदा करै है. अर गुरुनिपास अपना पापकूं कहै है सो गर्हाकरि युक्त है. जो पाप लगै है ताका गुरुनिकी आज्ञा प्रमाण आलोचना प्रतिक्रमण आदि प्रायश्चित्त ले है. बहुरि जिनिमें त्रस हिंसा बहुत होती होय ऐसे बडे व्यापार आदिके कार्य महा आरम्भ तिनिकौं छोडता संता प्रवर्त्तै है. भावार्थ—त्रस घात आप करै नाहीं. पर पासि करावै नाहीं करतेकूं भला जानै नाहीं पर जीवकौं आप समान जानै तब परघात करै नाहीं. बहुरि बडे आरंभ जिनिमें त्रस घात बहुत होय ते छोडै अर अल्प आरम्भमें त्रस घात होय तिससें आपकी निन्दा गर्हा करै आलोचन प्रतिक्रमणादि प्रायश्चित्त करै. बहुरि इनिके अतीचार अन्य ग्रन्थनिमें कहे हैं तिनिकौं टालै. इहां गाथामें अन्य जीवकौं आप समान जानना कह्या है तामें अतीचार टालना भी आय गया. परके वध बंधन अतिभारारोपण अन्नपाननिरोधमें दुःख होय है सो आप समान परकूं जानै तब काहेकूं करै ॥ ३३१-३३२ ॥

आगें दूसरा अणुव्रतकौं कहै हैं,—

हिंसावयणं ण वयदि कक्कसवयणं पि जो ण भासेदि ।
णिट्ठुरवयणं पि तहा ण भासदे गुज्झवयणं पि ३३३
हिदमिदवयणं भासदि संतोसकरं तु सव्वजीवाणं ।
धम्मपयासणवयणं अणुव्वई हवदि सो विदिओ ॥

भावार्थ—जो हिंसाका वचन न कहै बहुरि कर्कश वचन न कहै बहुरि निष्ठुर वचन न कहै बहुरि परका गुह्य वचन न कहै. तो कैसा वचन कहै ? परके हितरूप तथा प्रमाणरूप वचन कहै. बहुरि सर्व जीवनिकै संतोषका करनहारा वचन कहै, बहुरि धर्मका प्रकाशनहारा वचन कहै सो पुरुष दूसरा अणुव्रतका धारी होय है। भावार्थ—असत्य वचन अनेक प्रकार है. तहां सर्वथा त्याग तौ सकल चारित्री मुनिकै होय है अर अणुव्रतमें स्थूलका ही त्याग है. सो जिस वचनतैं परजीवका घात होय ऐसा तौ हिंसाका वचन न कहै बहुरि जो वचन परकूं कडवा लागै सुणतैं ही क्रोधादिक उपजै ऐसा कर्कश वचन न कहै. बहुरि परकै उद्वेग उपजि आवै, भय उपजि आवै, शोक उपजि आवै कलह उपजि आवै ऐसा निष्ठुरवचन न कहै. बहुरि परके गोप्य मर्मका प्रकाश करनेवाला वचन न कहै. उपलक्षणतैं और भी ऐसा जामें परका बुरा होय सो वचन न कहै. बहुरि कहै तौ हितमित वचन कहै। सर्व जीवनिक संतोष उपजै ऐसा कहै. बहुरि धर्मका जातैं प्रकाश होय ऐसा कहै. बहुरि याके अतीचार अन्य ग्रंथनिमें कहे हैं जो मिथ्या उपदेश रहोभ्याख्यान कूटलेखक्रिया न्यासापहार साकारमन्त्रभेद सो गाथामें विशेषण कीये तिनितैं सर्व गर्भित भये. इहां तात्पर्य ऐसा जानना जो जातैं परजीवका बुरा होय जाय अपने उपरि आपदा आवै तथा वृथा प्रलाप वचनतैं अपने प्रमाद बढै ऐसा स्थूल असत्य वचन अणुव्रती कहै नाहीं. परपासि कहावै

कर्मके उदयसे अपनी अपनी पर्याप्ति
शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं होती तब तक

नाहीं. कहनेवालेकूं भला न जानै ताकै दूसरा अणुव्रत होय है ॥ २३३-२३४ ॥

आगें तीसरा अणुव्रतकूं कहै हैं,—

जो बहुमुल्लं वत्थुं अप्पमुल्लेण णेय गिह्णेदि ।
वीसरियं पि ण गिह्णदि लाभे थूये हि तूसेदि ३२५

जो परदव्वं ण हरइ मायालोहेण कोहमाणेण ।
दिढचित्तो सुद्धमई अणुव्वई सो हवे तिदिओ ३३६

भावार्थ—जो श्रावक बहु मोलकी वस्तु अल्पमोलकरि न ले, बहुरि कपटकरि लोभकरि क्रोधकरि मानकरि परका द्रव्य न ले, सो तीसरा अणुव्रत धारी श्रावक होय है. सो कैसा है ? दृढ है चित्त जाका, कारण पाय प्रतिज्ञा बिगाड़ै नाहीं। बहुरि शुद्ध है उज्वल है बुद्धि जाकी. भावार्थ—सातव्यसनके त्यागमें चोरीका त्याग तौ किया ही है तामें इहां यह विशेष जो बहु मोलकी वस्तु अल्प मोलमें लेनेमें भी झगडा उपजै है न जाणिये है कौन कारणतैं पैला अल्पमैं दे है बहुरि परकी भूली वस्तु तथा मार्गमें पड़ी वस्तु भी न ले, यह न जाणै तौ पैला न जाणै ताका डर कहा ? बहुरि व्यापार में थोडे ही लाभ वा नफाकरि संतोष करै, बहुत लालच लोभतैं अनर्थ उपजै है. बहुरि कपट प्रपंचकरि काहूका धन ले नाहीं. कोईनै आपके पास धरया होय तौ ताकूं न देनेके भाव राखै नाहीं. बहुरि लोभकरि तथा क्रोधकरि परका धन

खोसि न ले तथा मानकरि कहै हम बडे जोरावर हैं लीया तौ लीया. ऐसें परका धन ले नाहीं. ऐसैं ही परकौं लि-वावै नाहीं. ऐसैं लेतेकूं भला जाणै नाहीं. वहुरि अन्य ग्रन्थनिमें याके पांच अतीचार कहे हैं. चोरकौं चोरीके अर्थ प्रेरणा करणा, तिसका ल्याया धन लेना, राज्यतैं विरुद्ध होय सो कार्य करना, व्योपारके तोल वाट हीनाधिक रखणें, अल्पमोलकी वस्तुकूं वहु मोलकी दिखाय ताका व्योहार करना, ए पांच अतीचार हैं सो गाथामें विशेषण किये तिनिमें आय गये. ऐसैं निरतिचार स्तेयत्यागव्रतकूं पालै सो तीसरा अणुव्रतका धारी श्रावक होय है ॥ ३३५–३३६ ॥

आगें ब्रह्मचर्य्यव्रतका व्याख्यान करै हैं,—

असुइमयं दुग्गंधं महिलादेहं विरच्चमाणो जो ।
रूवं लावण्णं पि य मणमोहणकारणं मुणइ ॥३३७

जो मण्णदि परमहिलं जणणीबहणीसुआइसारित्थं ।
मणवयणे कायेण वि बंभवई सो हवे थूलो ॥३३८॥

भाषार्थ—जो श्रावक स्त्रीकी देहकूं अशुचिमयी दुर्गन्ध जाणतो संतो तथा ताका रूप लावण्य ताकौं भी मनकेविषैं मोह उपजावनेकौं कारण जाणै है यातैं विरक्त हूवा सन्ता प्रवर्तै है वहुरि जो परस्त्री बडीकौं माता सरिखी, बरावरिकीकूं बहणसारिखी, छोटीकौं बेटीसारिखी, मनवचनकायकरि जो जाणै है सो स्थूल ब्रह्मचर्यका धारक श्रावक है. प-

---

[illegible]

...र्मके उदयसे अपनी अपनी पर्याप्ति
शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं होतीं तब तक

रस्त्रीका तौ मनवचनकाय कृतकारित अनुमोदनाकरि त्याग करै अर स्वस्त्रीकैविषै संतोष करै. तीव्रकामके विनोद क्रीडारूप न प्रवर्त्तै. जातैं स्त्रीके शरीरकूं अपवित्र दुर्गन्ध जाणि वैराग्य भावनारूप भाव राखै. अर कामकी तीव्र वेदना इस स्त्रीके निमित्ततैं होय है ताके रूप लावराय आदि चेष्टाकूं मनके मोहनेकौं ज्ञानके भुलावनेकौं कामके उपजावनेकौं कारण जाणि विरक्त रहै सो चतुर्थ अणुव्रतका धारी होय है. बहुरि याके अतीचार परविवाह करणा, परकी परणी विनापरणी स्त्रीका संसर्ग, कामकी क्रीडा, कामका तीव्र अभिप्राय, ए कह्या है. ते स्त्रीका देहतैं विरक्त रहना इस विशेषणमें आय गये. परस्त्रीका त्याग तौ पहली प्रतिमामें सात व्यसनके त्यागमें आय गया, इहां अति तीव्र कामकी वासनाका भी त्याग है. तातैं अतीचार रहित व्रत पलै है. अपनी स्त्रीकेविषै भी तीव्रपणा नाहीं होय है. ऐसैं ब्रह्मचर्य व्रतका कथन कीया ॥ ३३७–३३८ ॥

अब परिग्रहपरिमाण पांचमा अणुव्रतका कथन करै हैं—

जो लोहं णिहणित्ता संतोसरसायणेण संतुट्ठो ।
णिहणदि तिह्णा दुट्ठा मण्णंतो विणस्सरं सव्वं ३३९॥

जो परिमाणं कुव्वदि धणधाणसुवण्णखित्तमाईणं ।
उवओगं जाणित्ता अणुव्वयं पंचमं तस्स ॥३४०॥

भावार्थ—जो पुरुष लोभ कषायकौं हीनकरि संतोषरूप

रसायण करि संतुष्ट हूवा संता सर्व धन धान्यादि परिग्रहकौं विनाशीक मानता संता दुष्ट तृष्णाकौं अतिशयकरि हणै है. बहुरि धन धान्य सुवर्ण क्षेत्र आदि परिग्रहका अपना उपयोग सामर्थ्य जाणि कार्यविशेष जाणि तिसके अनुसार परिमाण करै है ताकै पांचमा अणुव्रत होय है. अंतरंगका परिग्रह तौ लोभ तृष्णा है ताकौं क्षीण करै अर बाह्यका परिग्रह परिमाण करै अर दृढचित्तकरि प्रतिज्ञाभंग न करै सो अतिचाररहित पंचम अणुव्रती होय है. ऐसैं पांच अणुव्रत निरतिचार पालै सो व्रत प्रतिमाधारी श्रावक है ऐसैं पांच अणुव्रतका व्याख्यान कीया ॥ ३३९–३४० ॥

अब इनि व्रतनिकी रक्षाकरनेवाले सात शील हैं तिनिका व्याख्यान करै हैं तिनिमें पहले तीन गुणव्रत हैं तामें पहला गुणव्रतकौं कहै हैं,—

जह लोहणासणट्ठं संगपमाणं हवेइ जीवस्स ।
सव्वं दिसिसु पमाणं तह लोहं णासए णियमा ३४१
जं परिमाणं कीरदि दिसाण सव्वाण सुप्पसिद्धाणं ।
उवओगं जाणित्ता गुणव्वयं जाण तं पढमं ॥३४२॥

भाषार्थ—जैसैं लोभके नाश करनेके अर्थ जीवकै परिग्रहका परिमाण होय है तैसैं सर्व दिशानिविषै परिमाण कीया हूवा भी नियमतैं लोभका नाश करै है. तातैं जे सर्व ही जे पूर्व आदि प्रसिद्ध दश दिशा तिनिका अपना उपयोग प्रयो-

...र्मके उदयसे अपनी अपनी पर्याप्ति
शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं होती तब तक

जन कार्य जाणिकरि परिमाण करै है सो पहला गुणव्रत है. पहलैं पांच अणुव्रत कहे तिनिका ए गुणव्रत उपकारी है. इहां गुण शब्द उपकारवाचक लेणा सो लोभके नाश करनेकौं जैसैं परिग्रहका परिमाण करै तैसैं ही लोभके नाश करनेकौं भी दिशाका परिमाण करै. जहां ताई परिमाण कीया ताके परैं जो द्रव्य आदिकी प्राप्ति होती होय तौऊ तहां जाय नाहीं. ऐसैं लोभ घट्या. बहुरि हिंसाका पापभी परिमाण परैं न जानेतैं तहां सम्बन्धी न लागै, तब तिस सम्बन्धी महाव्रत तुल्य भया ॥ ३४१–३४२ ॥

अब दूसरा गुणव्रत अनर्थदंड विरतिकूं कहै हैं,—

कज्जं किंपि ण साहदि णिच्चं पावं करेदि जो अत्थो ।
सो खलु हवे अणत्थो पंचपयारो वि सो विविहो ३४३

भावार्थ–जो कार्य प्रयोजन तौ अपना किछू साधै नाहीं अर केवल पापहीकौं उपजावै ऐसा कार्य होय ताकौं अनर्थ कहिये. सो पांच प्रकार है तथा अनेक प्रकार भी है. भावार्थ, निःप्रयोजन पाप लगावै सो अनर्थदंड है सो पांच प्रकार करि कहै हैं. अपध्यान, पापोपदेश, प्रमादचर्या, हिंसाप्रदान, दुःश्रुतश्रवणादि बहुरि अनेक प्रकार भी है ॥ ३४३ ॥

अब प्रथम भेदकूं कहै हैं,—

परदोसाणं गहणं परलच्छीणं समीहणं जं च ।
परइत्थीआलोओ परकलहालोयणं पढमं ॥ ३४४ ॥

भावार्थ—परके दोषनिका ग्रहण करना परकी लक्ष्मी धन सम्पदाकी वांछा करना परकी स्त्रीकूं रागसहित देखना परकी कलहकूं देखना इत्यादि कार्यनिकूं करै सो पहला अनर्थदंड है. भावार्थ—परके दोषनिका ग्रहण करनेमें अपने भाव तौ बिगड़ैं अर प्रयोजन अपना किछू सिद्ध नाहीं, परका बुरा होय आपकै दुष्टपना ठहरै. बहुरि परकी सम्पदा देखि आप ताकी इच्छा करै तौ आपकै किछू आय जाय नाहीं यामैं भी निःप्रयोजन भाव बिगडै है. बहुरि परकी स्त्रीकूं रागसहित देखनेमें भी आप त्यागी होयकरि निःप्रयोजन भाव काहेकूं बिगाडै ? बहुरि परकी कलहके देखनेमैं भी किछू अपना कार्य सधता नहीं. उलटा आपमें भी किछू आफति आय पडै है. ऐसैं इनिकूं आदि देकरि जिन कार्यनिविषै अपने भाव बिगडैं तहां अपध्यान नामा पहला अनर्थदंड होय है सो अणुव्रतभंगका कारण है याके छोडें व्रत दृढ रहै है ॥ ३४४ ॥

अब दूजा पापोपदेश नामा अनर्थदंडकूं कहै हैं,—

जो उवएसो दिज्जइ किसिपसुपालणवाणिज्जपमुहेसु ।
पुरिसित्थीसंजोए अणत्थदंडो हवे बिदिओ ॥ ३४५ ॥

भावार्थ—जो खेती करना पशुका पालना वाणिज्य करना इत्यादि पापसहित कार्य तथा पुरुष स्त्रीका संजोग जैसैं होय वैसैं करना इत्यादि कार्यनिका परकूं उपदेश देना इनिका विधान बतावना जामैं किछू अपना प्रयोजन सधै

नाहीं केवल पाप ही उपजै सो दूजा पापोपदेश नाम अनर्थ-दंड है. परके पापके उपदेशमें अपने केवल पाप ही बंधै है. तातें व्रतभंग होय है तातैं याकूं छोडे उनकी रक्षा है व्रत परि गुण करे है उपकार करै है तातैं याका नाम गुणव्रत है ॥ ३४५ ॥

आगें तीसरा प्रमादचरित नाम अनर्थदंडका भेदकूं कहै हैं,—

विहलो जो वावारो पुढवीतोयाण अग्गिपवणाण ।
तह वि वणप्फदिछेओ अणत्थदंडो हवे तिदिओ ३४६

भाषार्थ—पृथ्वी जल अग्नि पवन इनिके विफल निःप्रयोजन व्यापारमें प्रवृत्ति करना तथा निःप्रयोजन वनस्पति हरतिकायका छेदन भेदन करना सो तीसरा प्रमादचरित नामा अनर्थ दण्ड है. भावार्थ— जो प्रमादके वशि होकर पृथिवी जल अग्नि पवन हरितकायकी निःप्रयोजन विराधना करै तहां त्रस थावरनिका घात ही होय अपना कार्य किछू सधै नाहीं तातैं याके करनेमैं व्रत भंग है. छोडें व्रतकी रक्षा होय है ॥ ३४६ ॥

आगें चौथा हिंसादान नामा अनर्थदंडकूं कहै हैं,

मज्जारपहुदिधरणं आयुधलोहादिविक्कणं जं च ।
लक्खाखलादिगहणं अणत्थदंडो हवे तुरिओ ३४७

भाषार्थ—जो बिलाव आदि जो हिंसक जीवोंका पाल-

ना बहुरि लोहका तथा लोह आदिके आयुधनिका व्योपार करना, देना लेना बहुरि लाख खला आदि शब्दतैं विष वस्तु आदिका देना लेना विणज करना यह चौथा हिंसादान नामा अनर्थदंड है. भावार्थ—हिंसक जीवनिका पालन तौ निःप्रयोजन अर पाप प्रसिद्ध ही है. बहुरि बहुत हिंसाके कारण शस्त्र लोह लाख आदिका विणज करणा देना लेना भी करनेमें फल अल्प है. पाप बहुत है । तातैं अनर्थदंड ही है यामैं प्रवर्त्ते व्रतभंग होय है, छोडे व्रतकी रक्षा है ॥ ३४७ ॥

आगें दुःश्रुतिनामा पांचमा अनर्थदण्डकूं कहै हैं,—

जं सवणं सत्थाणं भंडणवसियरणकामसत्थाणं।
परदोसाणं च तहा अणत्थदंडो हवे चरमो ॥३४८

भाषार्थ—जो सर्वथा एकान्ती तिनिके भाषे शास्त्र शस्त्रसारिखे दीखैं ऐसे कुशास्त्र तथा भांडक्रिया हास्य कौतूहलके कथनके शास्त्र तथा वशीकरण मंत्रप्रयोगके शास्त्र तथा स्त्रीनिके चेष्टाके वर्णनरूप कामशास्त्र तिनिका सुनना तथा उपलक्षणतैं वांचना सीखना सुनावना भी जानना. बहुरि परके दोषनिकी कथा करना सुनना यह दुःश्रुतिश्रवण नाम अन्तका पांचवा अनर्थदंड है. भावार्थ—खोटे शास्त्र सुनने बाचने सुनावने रचनेमैं किछू प्रयोजन सिद्धि नाहीं. केवल पाप ही होय है अर आजीविका निमित्त भी इनिका व्योहार करना श्रावककूं योग्य नाहीं. व्योपार आदिकी योग्य

आजीविका ही श्रेष्ठ है, जामें व्रतभंग होय सो काहेकूं करै? व्रतकी रक्षा ही करनी ॥ ३४८ ॥

आगें इस अनर्थदंडके कथनकूं संकोचै हैं,—

एवं पंचपयारं अणत्थदंडं दुहावहं णिच्चं।
जो परिहरेइ णाणी गुणव्वदी सो हवे विदिओ ३४९

भाषार्थ-जो ज्ञानी श्रावक इसप्रकार अनर्थदंडकूं दुःखनिका निरन्तर उपजावनहारा जाणि छोडै है सो दूसरा गुणव्रतका धारी श्रावक होय है. भावार्थ-यह अनर्थदंडका त्यागनामा गुणव्रत अणुव्रतनिका बडा उपकारी है तातैं श्रावकनिकूं अवश्य पालना योग्य है ॥ ३४९ ॥

आगें भोगोपभोगनामा तीसरा गुणव्रतकूं कहै हैं,—

जाणित्ता संपत्ती भोयणतंबोलवत्थुमाईणं।
जं परिमाणं कीरदि भोउवभोयं वयं तस्स ॥ ३५० ॥

भाषार्थ—जो अपनी सम्पदा सामर्थ्य जाणि अर भोजन तांबूल वस्त्र आदिका परिमाण मर्याद करै तिस श्रावककै भोगोपभोग नाम गुणव्रत होय है. भावार्थ- भोग तौ भोजन तांबूल आदि एकवार भोगमैं आवै सो कहिए. बहुरि उपभोग वस्त्र गहणा आदि फेरि २ भोगमैं आवै सो कहिये. तिनिका परिमाण यमरूप भी होय है अर नित्य नियमरूप भी होय है सो यथाशक्ति अपनी सामर्थ्यकूं विचारि यमरूप करि ले तथा नियमरूप भी कहे हैं तिनितैं नित्य

काम जाणै तिस अनुसार करवो करै. यह अणुव्रतका बडा उपकारी है ॥ २५० ॥

आगें भोगपभोगकी छती वस्तुकं छोडै है ताकी प्रशंसा करै है,—

जो परिहरेइ संतं तस्स वयं थुव्वदे सुरिंदेहिं ।
जो मणुलड्डुव भक्खदि तस्स वयं अप्पसिद्धियरं ॥

भावार्थ—जो पुरुष छती वस्तुकूं छोडै है ताके व्रतकूं सुरेन्द्र भी सरावै है प्रशंसा करै है बहुरि अणछतीका छोडणा तौ ऐसा है जैसैं लाडू तौ होय नाहीं अर संकल्पमात्र मनमैं लाडूकी कल्पनाकरि लाडू खाय तैसा है. सो अणछती वस्तु तौ संकल्पमात्र छोडी ताकै वह छोडना व्रत तौ है परन्तु अल्पसिद्धि करनेवाला है. ताका फल थोडा है. इहां कोई पूछै भोगोपभोग परिमाणकूं तीसरा गुणव्रत कह्या सो तत्त्वार्थसूत्रविषै तौ तीसरा गुणव्रत देशव्रत कह्या है भोगपभोग परिमाणकूं तीसरा शिक्षाव्रत कह्या है सो यह कैसैं? ताका समाधान—जो यह आचार्यनिकी विवक्षाका विचित्रपणा है. स्वामी समंतभद्र आचार्यने भी रत्नकरण्डश्रावकाचारमें इहां कह्या तैसैं ही कह्या है सो यामैं विरोध नाहीं. इहां तौ अणुव्रतकी उपकारीकी अपेक्षा लई है अर तहां सचित्तादि भोग छोडनेकी अपेक्षा मुनिव्रतकी शिक्षा देनेकी अपेक्षा लई है किछू विरोध है नाहीं. ऐसैं तीन गुणव्रतका व्याख्यान किया ॥ २५१ ॥

आगें च्यारि शिक्षाव्रतका व्याख्यान करै हैं तहां प्रथम ही सामायिक शिक्षाव्रतकूं कहै हैं,—

सामाइयस्स करणं खेत्तं कालं च आसणं विलओ ।
मणवयणकायसुद्धी णायव्वा हुंति सत्तेव ॥ ३५२ ॥

भाषार्थ—पहलै तौ सामायिकके करणेविषै क्षेत्र काल आसन बहुरि लय बहुरि मनवचनकायकी शुद्धता ए सात सामग्री जाननें योग्य हैं. तहां क्षेत्रकूं कहै हैं ॥ ३५२ ॥

जत्थ ण कलयलसद्दं बहुजणसंघट्टणं ण जत्थत्थि ।
जत्थ ण दंसादीया एस पसत्थो हवे देसो ॥ ३५३ ॥

भाषार्थ—जहां कलकलाट शब्द नाहीं होय. बहुरि जहां बहुत लोकनिका संघट्ट आवना जावना न होय. बहुरि जहां डांस मच्छर कीडी पीपल्या इत्यादि शरीरकूं बाधा करनहारे जीव न होंय, ऐसा क्षेत्र सामायिक करनेकूं योग्य है. भावार्थ—जहां चित्तकूं कोऊ क्षोभ उपजानेके कारण न होंय तहां सामायिक करना ॥ ३५३ ॥

अब सामायिकके कालकूं कहै हैं,—

पुव्वह्णे मज्झह्णे अवरह्णे तिहि वि णालियाछक्को ।
सामाइयस्स कालो सविणयणिस्सेसणिद्दिट्ठो ३५४

भाषार्थ—पूर्वाह्ण कहिये प्रभातकाल मध्याह्न कहिये बीचिका दिन अपराह्ण कहिये पाछिला दिन इनि तीनूं काल-

विषै छह छह घडीका काल सामायिकका है, सो यह वि-नग सहित निःस्व कहिये परिग्रह रहित तिनिके ईश जो गणधर देव तिनिनैं कह्या है. भावार्थ—प्रभात तीन घडीका तडकेसूं लगाय तीन घडी दिन चढ्यां ताईं ऐसैं छह घडी पूर्वाह्णकाल. दोय पहर पहलां तीन घडीतैं लगाय पीछैं तीन घडी ऐसैं छह घडी मध्यान्हकाल. तीन घडी दिनसूं लगाय तीन घडी राति ताईं ऐसैं छह घडी अपराह्णकाल. यह सामायिककालका उत्कृष्ट काल है. बहुरि दोय घडीका भी कह्या है ऐसैं तीनूं कालकी छह घडी होय हैं ॥

अब आसन तथा लय अर मन वचन कायकी शुद्धताकूं कहै हैं.—

वंधित्तो पज्जंकं अहवा उड्ढेण उब्भओ ठिच्चा ।
कालपमाणं किच्चा इंदियवावारवज्जिओ होउ २५५
जिणवयणेयग्गमणो संपुडकाओ य अंजलिं किच्चा
ससरूवे संलीणो वंदणअत्थं वि चिंतिंतो ॥ २५६ ॥
किच्चा देसपमाणं सव्वं सावज्जवज्जिदो होउ ।
जो कुव्वदि सामइयं सो मुणिसरिसो हवे सावो ॥

भावार्थ—जो पर्यंक आसन बांधिकरि अथवा ऊभा खडा आसनतैं तिष्ठिकरि, कालका प्रमाणकरि, इन्द्रियनिके व्यापार विषयनिविषै नाहीं होनेके अर्थ जिनवचनकेविषै एकाग्र मनकरि, कायकूं संकोचकरि, हस्तकी अंजलि जोडिकरि,

बहुरि अपना स्वरूपविषै लीन हूवा संता अथवा सामायिक का वंदनाका पाठके अर्थकूं चितवता संता प्रवर्तै, बहुरि क्षेत्रका परिमाणकरि सर्व सावद्ययोग जो गृह व्यापारादि पापयोग ताकौं त्यागकरि पापयोगतैं रहित होय सामायिक करै सो श्रावक तिसकाल मुनि सारिखा है. भावार्थ-यह शिक्षाव्रत है तहां यह अर्थ सूचै है जो सामायिक है सो सर्व रागद्वेषसूं रहित होय सर्व बाह्यके पापयोग क्रियासूं रहित होय अपने आत्मस्वरूपकेविषै लीन हूवा मुनि प्रवर्तै है सो यह सामायिक चारित्र मुनिका धर्म है. सो ही शिक्षा श्रावककूं दीजिये है जो सामायिक कालकी मर्यादाकरि तिस कालमें मुनिकी रीति प्रवर्तै जातैं मुनि भये ऐसैं सदा रहना होयगा, इस ही अपेक्षाकरि तिसकाल मुनि सारिखा श्रावककूं कह्या है ॥ ३५५-३५७ ॥

आगैं दूसरा शिक्षाव्रत प्रोषधोपवासकूं कहै हैं,—

ण्हाणविलेवणभूसणइत्थीसंसग्गगंधधूपदीवादि ।
जो परिहरेदि णाणी वेरग्गाभरणभूसणं किच्चा ३५८
दोसु वि पव्वेसु सया उववासं एयभत्तणिव्वियडी
जो कुणइ एवमाई तस्स वयं पोसहं विदियं ॥३५९॥

भावार्थ-जो ज्ञानी श्रावक एकपक्षविषै दोय पर्व आठैं चौदसिविषै स्नान विलेपन आभूषण स्त्रीका संसर्ग सुगंध धूप दीप आदि भोगोपभोग वस्तुकूं छोडै अर वैराग्य भा-

वना सोई भए आभरण तिसकरि आत्माकूं शोभायमानकरि उपवास तथा एकभक्त तथा नीरस आहार करै तथा आदि शब्दकरि कांजी करै. केवल भात पाणी ही ले. ऐसैं करै ताकै प्रोषधोपवासव्रत नामका शिक्षाव्रत होय है. भावार्थ—जैसैं सामायिक करनेकं कालका नियमकरि सर्व पापयोगसूं निवृत्त होयकरि एकान्त स्थानमें धर्मध्यानकरता संता बैठे, तैसै ही सर्व गृहकार्यकूं त्यागकरि समस्त भोग उपभोग सामग्रीकूं छोडिकरि सातैं तेरसिके दोय पहर दिन पीछैं एकान्त स्थानक बैठे, धर्मध्यान करता संता सोलह पहर तांई मुनिकी ज्यों रहै, नवमी पूर्णमासीकूं दोयपहरं प्रतिज्ञा पूरण होय, तब गृहकारजमें लागै. ताकै प्रोषधव्रत होय है. आठैं चौदसिके दिन उपवासकी सामर्थ्य न होय तौ एक बार भोजन करै. तथा नीरस भोजन कांजी आदि अल्प आहार कर ले. समय धर्मध्यानमें लगावै. सोलह पहर आगैं प्रोषध प्रतिमामें कही है. तैसैं करै. परन्तु इहां गाथामें न कही तातैं सोलह पहरका नियम न जानना. यह भी मुनिव्रतकी शिक्षा ही है ॥ ३५८-३५९ ॥

आगैं अतिथिसंविभाग नामक तीसरा शिक्षाव्रत कहै हैं,—

तिविहे पत्तम्हि सया सद्धाइगुणेहिं संजुदो णाणी ।
दाणं जो देदि सयं णवदाणविहीहिं संजुत्तो ॥३६०॥
सिक्खावयं च तदियं तस्स हवे सव्वसोक्खसिद्धियरं ।

दाणं चउठिवहं पि य सव्वे दाणाण सारयरं ॥३६१॥

भाषार्थ—जो ज्ञानी श्रावक उत्तम मध्यम जघन्य तीन प्रकार पात्रनिके निमित्त दाताके श्रद्धा आदि गुणनिकरि युक्त होयकरि अपने हस्तकरि नवधा भक्ति करि संयुक्त हूवा संता नितप्रति दान देहै. तिस श्रावकके तीसरा शिक्षाव्रत होय है. सो दान कैसा है आहार अभय औषध शास्त्रदानके भेदकरि च्यारि प्रकार है. बहुरि यह अन्य जे लौकिक धनादिकका दान तिनिमें अतिशयकरि सार है, उत्तम है. बहुरि सर्व सिद्धि अर सुखका करनहारा है. भावार्थ—तीन प्रकार पात्रनिमें उत्कृष्ट तो मुनि, मध्यम अणुव्रती श्रावक, जघन्य अविरत सम्यग्दृष्टी हैं. बहुरि दातारके सात गुण श्रद्धा, तुष्टि, भक्ति, विज्ञान, अलुब्धता, क्षमा, शक्ति ए सात हैं तथा अन्य प्रकार भी कहे हैं. इस लोकके फलकी वांछा न करै, क्षमावान होय, कपटरहित होय, अन्यदातातैं ईर्षा न होय, दीयेका विषाद न करै, दीयेका हर्ष करै, गर्व न करै ऐसैं भी सात कहे हैं. बहुरि प्रतिग्रह, उच्चस्थान, पादप्रक्षालन, पूजनकरणा, प्रणाम करणा, मनकी शुद्धता, वचनकी शुद्धता, कायकी शुद्धता, आहारकी शुद्धता ऐसैं नवधा भक्ति है, ऐसे दातारके गुण सहित पात्रकूं नवधा भक्तिकरि नित्य च्यारि प्रकार दान देहै ताकै तीसरा शिक्षाव्रत होय है. यह भी मुनिपणकी शिक्षाके अर्थ है जो देना सीखै तैसैं आपकूं मुनिभये लेना होयगा ॥ ३६०–३६१ ॥

आगैं आहार आदि दानका माहात्म्य कहै हैं,—

भोयणदाणेण सोक्खं ओसहदाणेण सत्थदाणं च।
जीवाण अभयदाणं सुदुल्लहं सव्वदाणाणं ॥ ३६२ ॥

भाषार्थ—भोजन दानकरि सर्वकैं सुख होय है। बहुरि औषध दानकरि सहित शास्त्रदान अर जीवनकूं अभय दान है सो सर्व दाननिमें दुर्लभ पाइए है उत्तम दान है। भावार्थ इहां अभयदानकूं सर्वतैं श्रेष्ठ कह्या है ॥ ३६२ ॥

आगैं आहारदानकूं प्रधानकरि कहै हैं,—

भोयणदाणे दिण्णे तिण्णि वि दाणाणि होंति दिण्णाणि
भुक्खतिसाएवाही दिणे दिणे होंति देहीणं ॥३६३॥
भोयणबलेण साहू सत्थं सेवदि रत्तिदिवहं पि।
भोयणदाणे दिण्णे पाणा वि य रक्खिया होंति ३६४

भाषार्थ—भोजन दान दीये संतैं तीनूं ही दान दीये होय हैं जातैं भूख तृषा नामका रोग प्राणीनिकै दिन दिन प्रति होय है। बहुरि भोजनके बलकरि साधु रात्रि दिन शास्त्रका अभ्यास करै है बहुरि भोजनके देने करि प्राणभी रक्षा होय है। ऐसैं भोजनके दानकरि औषध शास्त्र अभयदान ए तीनूं ही दीये जानने। भावार्थ—भूख तृषा रोग मेटनेतैं तौ आहारदान ही औषधदान भया। आहारके बलतैं शास्त्राभ्यास सुखसूं होनेतैं ज्ञानदान भी एही भया।

आहार ही तैं प्राणोंकी रक्षा होय तातैं एही अभयदान भया। ऐसैं ही दानमें तीनूं गर्भित भये ॥ ३६३-३६४ ॥

आगें दानका माहात्म्यहीकूं फेरि कहै हैं,—

इहपरलोयणिरीहो दाणं जो देदि परमभत्तीए ।
रयणत्तयेसु ठविदो संघो सयलो हवे तेण ॥ ३६५ ॥

उत्तमपत्तविसेसे उत्तमभत्तीए उत्तमं दाणं ।
एयदि. वि य दिण्णं इंदसुहं उत्तमं देदि ॥ ३६६ ॥

भावार्थ—जो पुरुष (श्रावक) इसलोक परलोकके फलकी वांछा रहित हूवा संता परम भक्तिकरि संघके निमित्त दान देहै ता पुरुषने सकल संघकूं रत्नत्रय सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रविषै स्थाप्या। बहुरि उत्तम पात्रका विशेषके अर्थ उत्तम भक्तिकरि उत्तम दान एक दिन भी दीया हूवा उत्तम इन्द्रपदका सुखकूं देहै। भावार्थ—दानके दीये चतुर्विध संघकी थिरता होय है सो दानके देनेवालेने मोक्षमार्ग ही चलाया कहिये। बहुरि उत्तम ही पात्र उत्तम ही दाताकी भक्ति अर उत्तम ही दान सर्व ऐसी विधि मिलै ताका उत्तम ही फल होय है। इन्द्रादिक पदवीका सुख मिलै है ॥ ३६५-३६६ ॥

आगें चौथा देशावकाशिक शिक्षाव्रतकूं कहै हैं,—

पुव्वपमाणकदाणं सव्वादिसीणं पुणो वि संवरणं ।
इंदियविसयाण तहा पुणो वि जो कुणदि संवरणं ॥

वासादिकयपमाणं दिणे दिणे लोहकामसमणत्थं।
सावज्जवज्जणट्ठं तस्स चउत्थं वयं होदि ॥ ३६८ ॥

भाषार्थ—जो श्रावक पहलै सर्व दिशानिका परिमाण कीया था तिनिका फेरि संवरण करै, संकोचै, बहुरि तैसैं ही पूर्वैं इन्द्रियनिका विषयनिका परिमाण भोगोपभोग परिमाण कीया था तिनिकूं फेरि संकोचै। कैसैं सो कहै हैं? वर्ष आदि तथा दिन दिन प्रति कालकी मर्यादा लीये करै। ताको प्रयोजन कहै हैं—अन्तरंग तौ लोभकषाय अर काम कहिये इच्छा ताके शमन कहिये घटावनेके अर्थ तथा बाह्य पाप हिंसादिकके वर्जनेके अर्थ करै, तिस श्रावककै चौथा देशावकाशिक नामा शिक्षाव्रत होय है। भावार्थ—पहलै दिग्विरति व्रतमें मर्यादा करी थी सो तो नियमरूप थी। अब इहां तिसमें भी कालकी मर्यादा लीये घर हाट गांव आदि तांईकी गमनागमनकी मर्यादा करै तथा भोगोपभोग व्रतमें यमरूप इन्द्रियविषयनिकी मर्यादा करी थी तामें भी कालकी मर्यादा लीये नियम करै। इहां सत्तरा नियम कहे हैं तिनिकूं पालै। प्रतिदिन मर्यादा करबो करै. यामें लोभका तथा तृष्णा वांछाका संकोच होय है, बाह्य हिंसादि पापनिकी हाणि होय है। ऐसैं च्यारि शिक्षाव्रत कहे सो ए च्यारों ही श्रावककूं अणुव्रतके यत्नतैं पालनेकी तथा महाव्रतके पालनेकी शिक्षारूप हैं ॥ ३६७–३६८ ॥

आगें अंतसल्लेखनाकूं संक्षेपकरि कहै हैं,—

वारसवएहिं जुत्तो जो संलेहण करेदि उवसंतो ।
सो सुरसोक्खं पाविय कमेण सोक्खं परं लहदि ३६९

भाषार्थ—जो श्रावक बारहव्रतनिकरि सहित हूवा अंत समय उपशम भावनिकरि युक्त होय सल्लेखना करै है सो स्वर्गके सुख पायकरि अनुक्रमतैं उत्कृष्ट सुख जो मोक्षका सुख सो पावै है । भावार्थ—सल्लेखना नाम कषायनिका अर कायके क्षीण करनेका है सो श्रावक बारह व्रत पालै. पीछैं मरणका समय जाणैं तब पहली सावधान होय सर्व वस्तुसूं ममत्व छोडि कषायनिकूं क्षीणकरि उपशम भावरूप मंद कषायरूप होय रहै । अर कायकूं अनुक्रमतैं ऊणोदर नीरस आदि तपनिकरि क्षीण करै । पहले ऐसे कायकूं क्षीण करै तौ शरीरमें मलके मूत्रके निमित्ततैं जो रोग होय हैं वे रोग न उपजै । अंतसमै असावधान न होय । ऐसैं सल्लेखना करै अंतसमय सावधान होय अपने स्वरूपमें तथा अरहंत सिद्ध परमेष्ठीका स्वरूप चितवनमें लीन हूवा तथा व्रतरूप संवररूप परिणाम सहित हूवा संता पर्यायकूं छोडै तौ स्वर्गके सुखनिकं पावै । बहुरि तहां भी यह वांछा रहै जो मनुष्य होय व्रत पालूं ऐसैं अनुक्रमतैं मोक्ष सुखकी प्राप्ति होय है ॥

एक्कं पि वयं विमलं सद्दिट्ठी जइ कुणेदि दिढचित्तो ।
तो विविहरिद्धिजुत्तं इंदत्तं पावए णियमा ॥ ३७० ॥

भाषार्थ—जो सम्यग्दृष्टी जीव दृढचित्त हूवा संता एक

भी व्रत अतीचाररहित निर्मल पालै तौ नानाप्रकारकी ऋ-द्धिनिकरि युक्त इन्द्रपणा नियमकरि पावै. भावार्थ—इहां एक भी व्रत अतीचाररहित पालनेका फल इन्द्रपणा नियमकरि कह्या. तहां ऐसा आशय सूचै है जो व्रतनिके पालनेके प-रिणाम सर्वके समानजाति हैं. जहां एक व्रत दृढचित्तकरि पालै तहां अन्य तिसके समान जातीय व्रत पालनेके अर्थ अविनाभावीपणा है सो सर्व ही व्रत पाले कहे. बहुरि ऐसा भी है जो एक आखडी त्यागकूं अन्तसमै दृढचित्तकरि प-कडि ताविषै लीन परिणाम भये संतै पर्याय छूटै तौ तिस-काल अन्य उपयोगके अभावतैं बडा धर्म्य ध्यान सहित पर-गतिकूं गमन होय तब उच्चगति ही पावै, यह नियम है. ऐसा आशयतैं एक व्रतका ऐसा माहात्म्य कह्या है. इहां ऐसा न जानना जो एक व्रत तौ पालै अर अन्य पाप सेया करै ताका भी ऊंचा फल होय. ऐसैं तौ चोरी छोडै परस्त्री सेयवो करै हिंसादिक करवो करै ताका भी उच्च फल होय सो ऐसा नाहीं हैं. ऐसैं दूजी व्रतप्रतिमाका निरूपण कीया. बारह भे-दकी अपेक्षा यह तीसरा भेद भया ॥ २७० ॥

आगें तीजी सामायिकप्रतिमाका निरूपण करै हैं,—

जो कुणइ काउसग्गं बारसआवत्तसंजुदो धीरो ।
णमुणदुगं पि करंतो चदुप्पणामो पसण्णप्पा २७१
चिंतंतो ससरूवं जिणबिंबं अहव अक्खरं परमं ।

ज्झायदि कम्मविवायं तस्स वयं होदि सामइयं ३७९

भाषार्थ—जो सम्यग्दृष्टी श्रावक बारह आवर्त सहित च्यारि प्रणामसहित दोय नमस्कार करता संता प्रसन्न है आत्मा जाका, धीर दृढचित्त हूवा संता कायोत्सर्ग करै. तहां अपने चैतन्यमात्र शुद्ध स्वरूपकूं ध्यावता चितवन करता संता रहै अथवा जिनबिंबकूं चितवता रहै. अथवा परमेष्ठीके वाचक पंच नमोकारकूं चितवता रहै. अथवा कर्मके उदयके रसकी जातिका चितवन करता रहै ताकै सामायिक व्रत होय है. भावार्थ—सामायिक वर्णन तौ पूर्वे शिक्षाव्रतमें कीया था जो राग द्वेष तजि समभावकरि क्षेत्र काल आसन ध्यान मन वचन कायकी शुद्धताकरि कालकी मर्यादाकरि एकांत स्थानमें बैठै. सर्व सावद्ययोगका त्यागकरि धर्मध्यानरूप प्रवर्त्तै ऐसैं कह्या था. इहां विशेष कह्या जो कायसूं ममत्व छोडि कायोत्सर्ग करै तहां आदि अंतविषै दोय तौ नमस्कार करै अर च्यारि दिशाके सन्मुख होय च्यारि शिरोनति करै. बहुरि एक एक शिरोनतिके विषै मन वचन कायकी शुद्धताकी सूचना रूप तीन तीन आवर्त्त करै ते बारह आवर्त्त भये ऐसैं करि कायसूं ममत्व छोडि निज स्वरूपविषै लीन होय जिन प्रतिमासूं उपयोग लीन करै, तथा पंचपरमेष्ठीका वाचक अक्षरनिका ध्यान करै, तथा उपयोग कोई बाधाकी तरफ जाय तौ तहां कर्मके उदयकी जाति चितवै. यह साता वेदनीका फल है. यह असाताके उदयकी जाति है, यह अं-

तरायकी उदयकी जाति है. इत्यादि कर्मके उदयकूं चिंतवै यह विशेष कह्या. बहुरि ऐसा भी विशेष जानना जो शिक्षाव्रतमें तौ मन वचनकायसंबंधी कोई अतीचार भी लागै तथा कालकी मर्यादा आदि क्रियामें हीनाधिक भी होय है बहुरि इहां प्रतिमाकी प्रतिज्ञा है सो अतीचार रहित शुद्ध पलै है. उपसर्ग आदिके निमित्ततैं टलै नाहीं है ऐसा जानना. याके पांच अतीचार हैं. मन वचन कायका डुलावना अनादर करणा, भूलिजाणा ए अतीचार न लगावै. ऐसैं सामायिक प्रतिमा बारह भेदकी अपेक्षा चौथा भेद भया। ॥ ३७१-३७२॥

आगैं प्रोषधप्रतिमाका भेद कहैं हैं,-

सत्तमितेरासिदिवसे अवरह्ने जाइऊण जिणभवणे ।
किरियाकम्मं काऊ उववासं चउविहं गहिय ३७३
गिहवावारं चत्ता रात्तिं गमिऊण धम्मचिंताए ।
पच्चूहे उट्ठित्ता किरियाकम्मं च कादूण ॥ ३७४ ॥
सत्थब्भासेण पुणो दिवसं गमिऊण वंदणं किच्चा ।
रात्तिं णेदूण तहा पच्चूहे वंदणं किच्चा ॥ ३७५ ॥
पुज्जणविहिं च किच्चा पत्तं गहिऊण णवरि तिविहं पि
भुंजाविऊण पत्तं भुंजंतो पोसहो होदि ॥ ३७६ ॥

भाषार्थ-सातैं तेरसिके दिन दोय पहर पीछैं जिन चै-

त्यालय जाय अपराह्नको सामायिक आदि क्रिया कर्मकरि च्यारि प्रकार आहारका त्यागकरि उपवास ग्रहण करै. गृहका समस्त व्योपारकूं छोडिकरि धर्म ध्यानकरि तेरसि सातैंकी राति गमावै. प्रभात उठिकरि सामायिक क्रिया कर्म करै. आठैं चौदसिका दिन शास्त्राभ्यास धर्म ध्यानकरि गमाय अपराह्नका सामायिक क्रिया कर्म करि राति तैसैं ही धर्मध्यान करि गमाय नवमी पूर्णमासीके प्रभात सामायिक वन्दनाकरि जिनेश्वरका पूजन विधानकरि तीन प्रकारके पात्रकौं पडगाहि बहुरि तिस पात्रकौं भोजन कराय आप भोजन करै ताकै प्रोषध होय है. भावार्थ—पहलै शिक्षाव्रतमें प्रोषधकी विधि कही थी, सो भी इहां जाननी. गृहव्यापार भोग उपभोगकी सामग्री समस्तका त्यागकरि एकांतमें जाय बैठै अर सोलह पहर धर्मध्यानमें गमावणी. इहां विशेष इतना जो तहां सोलह पहरका कालका नियम नाहीं कह्या था अर अतीचार भी लागै. अर इहां प्रतिमाकी प्रतिज्ञा है यामैं सोलह पहरका उपवास नियमकरि अतीचार रहित करै है. अर याके अतीचार पाच हैं. जो वस्तु जिस काल राखी होय तिसका उठावना मेलना तथा सोवने बैठनेका संथारा करना सो विना देख्या जाग्या, विना यतनतैं करै सो तीन अतीचार तो ए. अर उपवासकेविषै अनादर करै, प्रीति नाहीं करै अर क्रिया कर्ममें भूलि जाय ए पांच अतीचार लगावै नाहीं ॥ २७३–२७६ ॥

आगें प्रोषधका माहात्म्य कहै हैं,—

एक्कं पि णिरारंभं उववासं जो करेदि उवसंतो ।
बहुविहसंचियकम्मं सो णाणी खवदि लीलाए ३७७

भाषार्थ—जो ज्ञानी सम्यग्दृष्टी आरम्भका त्यागकरि उपशम भाव मंदकषाय रूप हूवा संता एक भी उपवास करै है सो बहुत भवमें संचित कीये बांधे जे कर्म, तिनिकौं लीलामात्रमें क्षय करै है. भावार्थ—कषायविषय आहारका त्यागकरि इसलोक परलोकके भोगकी आशा छोडि एक भी उपवास करै सो बहुत कर्मकी निर्जरा करै है तौ जो प्रोषधप्रतिमा अंगीकारकरि पक्षमें दोय उपवास करै ताका कहा कहणा ? स्वर्गसुख भोगि मोक्षकूं पावै है ॥ ३७७ ॥

आगें आरम्भ आदिका त्यागविना उपवास करै ताकै कर्मनिर्जरा नाहीं हो है ऐसें कहै हैं,—

उववासं कुव्वंतो आरंभं जो करेदि मोहादो ।
सो णियदेहं सोसदि ण झाडए कम्मलेसं पि ३७८

भाषार्थ—जो उपवास करता संता गृहकार्यके मोहतें गृहका आरम्भ करै है सो अपनी देहकूं सोखै है कर्म निर्जरा का तौ लेशमात्र भी ताकै नाहीं होय है. भावार्थ—जो विषय कषाय छाड्यां विना केवल आहारमात्र ही छोडै है. गृहकार्य समस्त करै है, सो पुरुष देहहीकूं केवल सोखै है ताकैं कर्मनिर्जरा लेस मात्र भी नाहीं हो है ॥ ३७८ ॥

आगें सचित्तत्यागप्रतिमाकों कहै हैं,—

सच्चित्तं पत्तफलं छल्लीमूलं च किसलयं बीजं ।
जो णय भक्खदि णाणी साचित्तविरओ हवे सो वि ॥

भाषार्थ—जो ज्ञानी सम्यग्दृष्टी श्रावक पत्र फल छाल्ल छालि मूल कूंपल बीज ए सचित्त नाहीं भक्षण करै. सो सचित्तविरती श्रावक कहिये. भावार्थ—जीवकरि सहित होय ताकों सचित्त कहिये है. सो पत्र फल छालि मूल बीज कूंपल इत्यादि हरित वनस्पति सचित्तकूं न खाय सो सचित्तविरत प्रतिमाका धारक श्रावक होय है * । ॥ ३७९॥

जो ण य भक्खेदि सयं तस्स ण अण्णस्स जुज्जदे दाउं
भुत्तस्स भोजिदस्सहि णत्थि विसेसो तदो को वि ॥

भाषार्थ—बहुरि जो वस्तु आप न भखै ताकूं अन्यकूं देना योग्य नाहीं है जातैं खानेवाले अर खुवावनेवालेमें किछू विशेष नाहीं है कृतका अर कारितका फल समान हैं तातैं जो वस्तु आप न खाय सो अन्यकूं भी न खुवाइये तब सचित्त त्याग व्रत पलै ॥ ३८० ॥

---

* सुक्कं पक्कं तत्तं अंविललवणेहि मिस्सियं दव्वं ।
जं जंतेण य छिण्णं तं सव्वं फासुयं भणियं ॥ १ ॥

भाषार्थ--सूखा हुवा, पकाया हुवा, खटाई अर लवणसे, मिला हुवा तथा जो यंत्रसे छिन्नभिन्न किया हुवा अर्थात् शोधा हुवा हो ऐसा सब हरितकाय प्रासुक कहिये जीवरहित अचित्त होता है ।

जो वज्जेदि सचित्तं दुज्जय जीहा वि णिज्जिया तेण।
दयभावो होदि किओ जिणवयणं पालियं तेण ३८१

अर्थ—जो श्रावक सचित्तका त्याग करै है तिसने जिह्वा इन्द्रियका जीतना कठिन सो भी जीती, बहुरि दयाभाव प्रगट किया, बहुरि जिनेश्वर देवके वचन पाले. भावार्थ—सचित्तका त्यागमें बडे गुण हैं. जिह्वा इन्द्रियका जीतना होय है. प्राणीनिकी दया पलै है. बहुरि भगवानके वचन पलै है, जातैं हरित कायादिक सचित्तमें भगवानने जीव कहे हैं सो आज्ञा पालन भया. याका अतीचार जो सचित्तैं मिली वस्तु तथा सचित्तैं बंध संबंधरूप इत्यादिक हैं ते अतीचार लगावै नाहीं तब शुद्ध त्याग होय. तब प्रतिमाकी प्रतिज्ञा होय है. भोगोपभोग व्रतमें तथा देशावकाशिक व्रतमें भी सचित्तका त्याग कह्या है परन्तु निरतीचार नियमरूप नाहीं इहां नियमरूप निरतीचार त्याग होय है. ऐसैं सचित्त त्याग पंचमी प्रतिमा अर बारहभेदनिमें छट्ठा भेद वर्णन किया ३८१

आगें रात्रिभोजनत्याग प्रतिमाकूं कहै हैं,—

जो चउविहं पि भोज्जं रयणीए णेव भुंजदे णाणी।
ण य भुंजावइ अण्णं णिसिविरओ सो हवे भोज्जो॥

भावार्थ—जो ज्ञानी सम्यग्दृष्टी श्रावक रात्रिविषै च्यारि प्रकार अशन पान खाद्य स्वाद आहारकूं नाहीं भोगवै है, नाहीं खाय है, बहुरि परकूं नाहीं भोजन करावै है सो श्रा-

वक रात्रि भोजनका त्यागी होय है. भावार्थ-रात्रि भोजनका तौ मांसके दोषकी अपेक्षा तथा रात्रिविषै वहुत आरंभतैं त्रस घातकी अपेक्षा पहली दूजी प्रतिमामें ही त्याग कराये हैं परंतु यहां कृत कारित अनुमोदना अर मन वचन कायके कोई दोष लागै तातैं शुद्धत्याग नाहीं. इहां प्रतिमाकी प्रतिज्ञाविषै शुद्ध त्याग होय है तातैं प्रतिमा कही है ॥ ३८२ ॥

जो णिसिभुत्तिं वज्जदि सो उववासं करेदि छम्मासं
संवच्छरस्स मज्झे आरंभं मुयदि रयणीए ॥ ३८३ ॥

भाषार्थ-जो पुरुष रात्रि भोजनकौं छोडै है सो वरस दिनमें छह महीनाका उपवास करै है. वहुरि रात्रि भोजनके त्यागतैं भोजन संवंधी आरंभ भी त्यागै है. वहुरि व्यापार आदिका भी आरंभ छोडै है सो महान दया पालै है. भावार्थ-जो रात्रि भोजन त्यागै सो वरसदिनमें छह महीनाका उपवास करै है. वहुरि अन्य आरंभका भी रात्रिमें त्याग करै है वहुरि अन्य ग्रंथनिमें इस प्रतिमाविषै दिनमें स्त्री सेवनका भी मनवचनकाय कृतकारितअनुमोदनाकरि त्याग कहा है. ऐसैं रात्रिभुक्तत्यागप्रतिमाका निरूपण कीया. यह प्रतिमा छट्ठी वारह भेदनिमें सातवां भेद भया ॥ ३८३ ॥

आगें ब्रह्मचर्य प्रतिमाका निरूपण करै है,—

सव्वेसिं इत्थीणं जो अहिलासं ण कुव्वदे णाणी ।
मण वाया कायेण य बंभवई सो हवे सदिओ ३८४

भावार्थ—जो ज्ञानी सम्यग्दृष्टी श्रावक सर्व ही च्यारि प्रकारकी स्त्री देवांगना मनुष्यणी तिर्यंचणी चित्रामकी इत्यादि स्त्रीका अभिलाष मन वचनकायकरि न करै सो ब्रह्मचर्य व्रतका धारक हो है। कैसा है? दयाका पालनहारा है. भावार्थ-सर्व स्त्रीका मनवचनकाय कृतकारितअनुमोदनाकरि सर्वथा त्याग करै सो ब्रह्मचर्य प्रतिमा है ॥ ३८४ ॥

आगैं आरंभविरति प्रतिमाकौं कहै हैं,—

जो आरंभं ण कुणदि अण्णं कारयदि णेय अणुमण्णो।
हिंसासंतट्ठमणो चत्तारंभो हवे सो हि ॥ ३८५ ॥

भावार्थ—जो श्रावक गृहकार्यसंबंधी कछू भी आरंभ न करै अन्य पास करावै नाहीं. वहुरि करै ताकौं भला जानै नाहीं सो निश्चयतैं आरंभका त्यागी होय है. कैसा है? हिंसातैं भयभीत है मन जाका. भावार्थ—गृहकार्यका आरंभका मन वचन काय कृत कारित अनुमोदनाकरि त्याग करै सो आरंभ त्याग प्रतिमाधारक श्रावक होय है. यह प्रतिमा आठमी है बारह भेदनिमें नवमा भेद है ॥ ३८५ ॥

आगैं परिग्रहत्याग प्रतिमाकूं कहै हैं—

जो परिवज्जइ गंथं अब्भंतर बाहिरं च साणंदो।
पावं ति मण्णमाणो णिग्गंथो सो हवे णाणी ३८६

भावार्थ—जो ज्ञानी सम्यग्दृष्टि श्रावक अभ्यंतरका अर बाह्यका यह जो दो प्रकारका परिग्रह है सो पापका कारण

रूप है ऐसैं मानता संता आनन्द सहित छोडै है सो परिग्रहका त्यागी श्रावक होय है. भावार्थ—अभ्यंतरका ग्रंथमैं मिथ्यात्व अनंतानुबंधी अप्रत्याख्यानावरण कषाय तौ पहिलें छुटि गये हैं. बहुरि प्रत्याख्यानावरण अर तिसहीके लार लागे हास्यादिक अर वेद तिनिकौं घटावै है. बहुरि बाह्यके धनधान्य आदि सर्वका त्याग करै है. बहुरि परिग्रहके त्यागतैं बडा आनन्द मानै है. जातैं तिनिकै सांचा वैराग्य हो है तिनिके परिग्रह पापरूप अर बड़ी आपदा दीखै है. तातैं त्याग करतैं बडा सुख मानै है ॥ ३८६ ॥

बाहिरगंथविहीणा दलिद्दमणुआ सहावदो होंति ।
अब्भंतरगंथं पुण ण सक्कदे को वि छंडेदुं ॥ ३८७ ॥

भाषार्थ—बाह्य परिग्रहकरि रहित तौ दरिद्री मनुष्य स्वभावहीतैं होय है. याके त्यागमें अचिरज नाहीं. बहुरि अभ्यंतर परिग्रहकूं कोई भी छोडनेकूं समर्थ न होय है. भावार्थ, जो अभ्यंतर परिग्रहकूं छोडै है ताकी बडाई है, अभ्यंतरका परिग्रह सामान्यपणौ ममत्व परिणाम है सो याकौं छोडै सो परिग्रहका त्यागी कहिये. ऐसैं परिग्रहत्याग प्रतिमाका स्वरूप कह्या. प्रतिमा नवमी है बारह भेदनिमें दशमा भेद है॥

आगें अनुमोदनविरति प्रतिमाकौं कहै हैं,—

जो अणुमणणं ण कुणदि गिहत्थकज्जेसु पावमूलेसु ।
भवियव्वं भावंतो अणुमणविरओ हवे सो दु ॥३८८॥

भावार्थ—जो श्रावक पापके मूल जे गृहस्थके कार्य तिनिविषै अनुमोदना न करै. कैसा हूवा संता जो भवितव्य है सो होय है ऐसैं भावना करता संता सो अनुमोदनविरति प्रतिमाधारी श्रावक है. भावार्थ—गृहस्थके कार्यके आहारके निमित्त आरम्भादिककी भी अनुमोदना न करै. उदासीन हूवा घरमें भी बैठै. बाह्य चैत्यालय मठ मंडपमें भी बैठैं. भोजनकौं घरका तथा अन्य श्रावक बुलावै ताकैं भोजन करि आवै. ऐसा भी न कहै जो हमारे तांई फलाणी वस्तु तयार कीज्यो. जो कुछ गृहस्थ जिमावै सोही जीमि आवै सो दसमी प्रतिमाका धारी श्रावक होय है ॥ ३८८ ॥

जो पुण चिंतदि कज्जं सुहासुहं रायदोससंजुत्तो ।
उवओगेण विहीणं स कुणदि पावं विणा कज्जं ३८९

भावार्थ—जो विना प्रयोजन रागद्वेषकरि संयुक्त हूवा सन्ता शुभ तथा अशुभ कार्यकौं चिंतवन करै है, सो पुरुष विना कार्य पाप उपजावै है. भावार्थ—आप तौ त्यागी भया फेरि विना प्रयोजन गृहस्थके शुभकार्य पुत्रजन्मप्राप्ति विवाहादिक अर अशुभकार्य काहूकौं पीडा देना मारना बांधना इत्यादि शुभाशुभ कार्यनिकौं चिंतवन करै रागद्वेष परिणाम करै तौ निरर्थक पाप उपजावै ताकै दसमी प्रतिमा कैसैं होय ? तीसूं ऐसी बुद्धि रहै जो जैसी तरह भवितव्य है तैसैं होयगा जैसैं आहार मिलणा है तैसैं मिलि रहैगा. ऐसैं परिणाम रहैं अनुमतित्याग पलै है. ऐसैं बारह भेदमें ग्यारहवां भेद कहा।

आगें उद्दिष्टविरतिप्रतिमाका स्वरूप कहै हैं,—

जो णव कोडिविसुद्धं भिक्खायरणेण भुंजदे भोज्जं ।
जायणरहियं जोग्गं उद्दिट्ठाहारविरओ सो २९०

भाषार्थ—जो श्रावक भोज्य जो आहार ताकूं नवकोटि विशुद्ध कहिये मनवचनकाय कृतकारितअनुमोदनाका आपकूं दोष लागै नाहीं, ऐसा भिक्षाचरण करि ले, तहां भी याचना रहित ले. मांगिकरि न ले, सो भी योग्य ले, सचित्तादिक अयोग्य होय सो न ले, सो उद्दिष्ट आहारका त्यागी है. भावार्थ—घर छोडि मठ मंडपमें रहै, भिक्षाकरि आहार ले जो याके निमित्त कोई आहार करै तौ, तिस आहारकूं न ले, बहुरि मांगिकरि न ले, बहुरि अयोग्य मांसादिक तथा सचित्त आहार न ले, ऐसा उद्दिष्टविरत श्रावक है ॥२९०॥

आगें अंतसमयविषै श्रावक आराधना करै ऐसैं कहै हैं,—

जो सावयवयसुद्धो अंते आराहणं परं कुणदि ।
सो अच्चुदम्मि सग्गे इंदो सुरसेविओ होदि २९१

भाषार्थ—जो श्रावक व्रतकरि शुद्ध पुरुष है अर अंत समय उत्कृष्ट आराधना दर्शनज्ञानचारित्रतपको आराधै है सो अच्युत स्वर्गविषै देवनिकरि सेवनीक इन्द्र होय है. भावार्थ—जो सम्यग्दृष्टी श्रावक ग्यारह प्रतिमाका निरतिचार शुद्ध व्रत पालै है, बहुरि अंतसमय मरणकालविषै दर्शन ज्ञान चरित्र तप आराधनाकूं आराधै है; सो अच्युत स्वर्ग-

विषै इन्द्र होय है. यह उत्कृष्ट श्रावकके व्रतका उत्कृष्ट फल है. ऐसैं ग्यारमी प्रतिमाका स्वरूप कह्या, अन्य ग्रंथनिमें याके दोय भेद कहे हैं; पहला भेदवाला तो एक वस्त्र राखै, केस-निकौं कतरणी तथा पाछणासूं सौरावै प्रतिलेखण हस्तादि-कसूं करै, भोजन बैठा करै अपने हाथसूंभी करै, अर पात्रमें भी करै. बहुरि दूसरा केसनिका लौंच करै. प्रतिलेखण पीछैसूं करै . अपने हाथहीमें भोजन करै, कोपीन धारै, इ-त्यादि याकी विधि अन्य ग्रन्थनितैं जाननी । ऐसैं प्रतिमा तौ ग्यारमी भई अर बारह भेद कहे थे, तिनिमें यह बारमां भेद श्रावकका भया । अब इहां संस्कृतटीकाकार अन्य ग्रंथ-निके अनुसार किछू कथन श्रावकका लिख्या है, सो भी संक्षेपतैं लिखिये है. तहां छट्ठी प्रतिमातांई तो जघन्य श्रावक कह्या है. अर सातमी आठमी नवमी प्रतिमाका धारक म-ध्यम श्रावक कह्या है । अर दसमी ग्यारमी प्रतिमावाला उत्कृष्ट श्रावक कह्या है । बहुरि कह्या है जो समितिसहित प्रवर्तैं तौ अणुव्रत सफल है. अर समितिरहित प्रवर्तैं तौ व्रत पालता भी अव्रती है. बहुरि कह्या है जो गृहस्थके असि मसि कृषि वाणिज्यके आरंभमें त्रस थावरकी हिंसा होय है, सो त्रसहिंसाका त्याग याकै कैसैं बणै है. सो याका समा-धानके अर्थ कहै हैं-जो पक्ष, चर्या, साधकता, तीन प्रवृत्ति श्रावककी कही हैं. तहां पक्षका धारक तो पाक्षिकश्रावक क-हिये और चर्याका धारक नैष्ठिक श्रावक कहिये अर साधक-

ताका धारक साधक श्रावक कहिये. तहां पक्ष तौ ऐसा जो मार्गमें त्रसहिंसाका त्यागी श्रावक कह्या है. सो मैं त्रस-जीवकूं मेरे प्रयोजनके अर्थ तथा परके प्रयोजनके अर्थ मारूं नाहीं. धर्मके अर्थ तथा देवताके अर्थ तथा मन्त्रसाधनके अर्थ तथा औषधके अर्थ तथा आहारके अर्थ तथा अन्य भोगकेअर्थ मारूं नाहीं ऐसा पक्ष जाकै होय सो पाक्षिक है. सो याके असि मसि कृषि वाणिज्य आदि कार्यनिमें हिंसा होय है तौऊ मारनेका अभिमत नाहीं है. कार्यका अभिप्राय है तहां घात होय है ताकी अपनी निंदा करै है. ऐसैं त्रस हिंसा न करनेकी पक्षमात्रतैं पाक्षिक कहिये है. यह अप्रत्याख्याना-वरण कषायके मंद उदयके परिणाम हैं तातैं अव्रती ही है। व्रत पालनेकी इच्छा है परन्तु निरतिचार व्रत पलै नाहीं तातैं पाक्षिक ही कह्या है. बहुरि नैष्ठिक होय है तब अनु-क्रमतैं प्रतिमाकी प्रतिज्ञा पलै है. याकै अप्रत्याख्यानावरण कषायका अभाव भया तातैं पांचवां गुणस्थानकी प्रतिज्ञा निरतिचार पलै. तहां प्रत्याख्यानवरण कषायके तीव्र मंद भेदनितैं ग्यारह प्रतिमाके भेद हैं. ज्यों ज्यों कषाय मंद होती जाय त्यों त्यों आगिली प्रतिमाकी प्रतिज्ञा होती जाय. तहां ऐसैं कह्या है जो घरका स्वामिपना छोडि गृहकार्य तौ पुत्रादिककूं सौंपै अर आप यथाकषाय प्रतिमाकी प्रतिज्ञा अंगीकार करता जाय, जेतैं सकल संयम न ग्रहै तेतैं ग्या-रमी प्रतिमातांई नैष्ठिक श्रावक कहावै. बहुरि जब मरण

काल आया जाणैं तब आराधनासहित होय एकाग्रचित्तकरि परमेष्ठीका ध्यानमें तिष्ठै समाधिकरि प्राण छोडै, सो साधक कहावै, ऐसा व्याख्यान है. बहुरि कह्या है जो गृहस्थ द्रव्यका उपार्जन करै ताके छह भाग करै. तामें एक भाग तो धर्मके अर्थ दे. एक भाग कुटुंबके पोषणैमें दे. एक भाग अपने भोगके अर्थ खरचै, एक अपने स्वजन समूह अर्थ व्योहारमें खरचै, बाकी दोय भाग रहैं ते अमानत भंडार राखै वह द्रव्य बडा पूजन अथवा प्रभावना तथा काल दुकालमें अर्थ आवै. ऐसैं कीये गृहस्थके आकुलता न उपजै है. धर्म सधै है. इहां कथन संस्कृतटीकाकारने बहुत कीया है. तथा पहले गाथाके कथनमें अन्य ग्रन्थनिका कथन सधै है कथन बहुत कीया है सो संस्कृत टीकातैं जानना. इहां तो गाथाहीका अर्थ संक्षेपकरि लिख्या है. विशेप जाननेकी इच्छा होय सो रयणसार, वसुनंदिकृतश्रावकाचार, रत्नकरण्डश्रावकाचार, पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, अमितगतिश्रावकाचार, प्राकृतदोहाबंध श्रावकाचार, इत्यादि ग्रन्थनितैं जानू, इहां संक्षेप कथन है, ऐसैं बारहभेदरूप श्रावकधर्मका कथन कीया ३९१

आगें मुनिधर्मका व्याख्यान करै हैं,—

जो रयणत्तयजुत्तो खमादिभावेहिं परिणदो णिच्चं ।
सव्वत्थ वि मज्झत्थो सो साहू भण्णदे धम्मो ३९२

भापार्थ—जे पुरुष रत्नत्रय कहिये निश्चय व्यवहाररूप सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रकरि युक्त होय, बहुरि क्षमादिभाव क-

हिये उत्तम क्षमाकौं आदि देकर दश प्रकारका धर्म तिसकरि नित्य कहिये निरन्तर परिणाम सहित होय, बहुरि मध्यस्थ कहिये सुखदुःख तृण कंचन लाभ अलाभ शत्रु मित्र निन्दाप्रशंसा जीवन मरण आदिविषै समभावरूप वर्तै, रागद्वेषकरि रहित होय, सो साधु कहिये. तिसहीकौं धर्म कहिये, जातैं जामें धर्म है, सो ही धर्मकी मूर्ति है, सो ही धर्म है। भावार्थ—इहां रत्नत्रयकरि सहित कहनेमें चारित्र तेरहप्रकार हैं सो मुनिका धर्म महाव्रत आदि है सो वर्णन किया चाहिये. सो यहां दश प्रकार धर्मका विशेष वर्णन है तामें महाव्रत आदिका भी वर्णन गर्भित है सो जानना ॥ ३९२ ॥

अब दशप्रकार धर्मका वर्णन करै हैं,—

सो च्चिय दहप्पयारो खमादि भावेहिं सुक्खसारेहिं ।
ते पुण भणिज्जमाणा मुणियव्वा परमभत्तीए ३९३

भावार्थ—सो मुनिधर्म क्षमादि भावनकरि दश प्रकार है कैसा है सौख्यसार कहिये सुख यातैं होय है. अथवा सुख याविषै है अथवा सुखकरि सार है ऐसा है. बहुरि ते दशप्रकार आगें कह्या हुवा धर्म भक्तिकरि, उत्तम धर्मानुरागकरि जाननें योग्य है. भावार्थ—उत्तमक्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तपः, त्याग, आकिंचन्य, ब्रह्मचर्य ऐसैं दश प्रकार मुनिधर्म है सो याका न्यारा न्यारा व्याख्यान आगें करै हैं सो जानना ॥ ३९३ ॥

अब पहिले ही उत्तमक्षमाधर्मकूं कहै हैं,—

कोहेण जो ण तप्पदि सुरणरतिरिएहिं कीरमाणे वि।
उवसग्गे वि रउद्दे तस्स खिमा णिम्मला होदि ३९४

भाषार्थ—जो मुनि देव मनुष्य तिर्यंच आदिकरि रौद्र भयानक घोर उपसर्ग करतैं सतैं भी क्रोधकरि तप्तायमान न होय तिस मुनिके निर्मल क्षमा होय है. भावार्थ—जैसे श्रीदत्त मुनि व्यंतरदेवकृत उपसर्गकूं जीति केवलज्ञान उपजाय मोक्ष गये, तथा चिलातीपुत्र मुनि व्यंतरकृत उपसर्गकूं जीति सर्वार्थसिद्धि गये, तथा स्वामिकार्त्तिकेयमुनि क्रौंचराजाकृत उपसर्ग जीति देवलोक पाया. तथा गुरुदत्त मुनि कपिल ब्राह्मणकृत उपसर्ग जीति मोक्ष गये. तथा श्रीधन्य मुनि चक्रराजकृत उपसर्गकौं जीति केवल उपजाय मोक्ष गये, तथा पांचसै मुनि दंडक राजाकृत उपसर्ग जीति सिद्धि पाई, तथा राजकुमारमुनि पांशुलश्रेष्ठीकृत उपसर्ग जीति सिद्धि पाई. तथा चाणिक्य आदि पांचसे मुनि मन्त्रीकृत उपसर्गकौं जीति मोक्ष गये, तथा सुकुमाल मुनि स्यालनीकृत उपसर्ग सहकरि देव भये, तथा श्रेष्ठीके बाईस पुत्र नदीके प्रवाहविषै पद्मासन शुभध्यानकरि मरणकरि देव भये, तथा सुकोशल मुनि व्याघ्रीकृत उपसर्ग जीति सर्वार्थसिद्धि गये, तथा श्रीपणिकमुनि जलका उपसर्ग सहकरि मुक्ति गये. ऐसैं देव मनुष्य पशु अचेतन कृत उपसर्ग सहे, तहां क्रोध न कीया तिनिकै उत्तम क्षमा भई. तैसैं उपसर्ग करनेवालेतैं क्रोध न उपजै, तब उ-

संबंधी स्वजन मित्र आदिके दोऊंके चाहै तब आठ भेदरूप प्रवृत्ति है सो जहां सर्वहीका लोभ नाहीं होय तहां शौचधर्म है ॥

आगै उत्तम सत्यधर्मकूं कहै हैं—

जिणवयणमेव भासदि तं पालेदुं असक्कमाणो वि ।
ववहारेण वि अलियं ण वददि जो सच्चवाई सो ३९८

भाषार्थ—जो मुनि जिनसूत्रहीके वचनकूं कहै, बहुरि तिनिमें जो आचार आदि कह्या है ताकूं पालनेकूं असमर्थ होय तौऊ अन्य प्रकार न कहै. बहुरि व्यवहार करि भी अलीक कहिये असत्य न कहै सो मुनि सत्यवादी है. ताकै उत्तम सत्य धर्म होय है. भावार्थ—जो जिनसिद्धान्तमें आचार आदिका जैसा स्वरूप कह्या होय तैसा ही कहै. ऐसा नाहीं जो आपसूं न पाल्या जाय तब अन्यप्रकार कहै यथावत न कहै. अपना अपमान होय तातैं जैसैं तैसैं कहै अर व्यवहार जो भोजन आदिका व्यापार तथा पूजा प्रभावना आदिका व्योहार तिसविषै भी जिनसूत्रके अनुसार वचन कहै अपनी इच्छातैं जैसैं तैसैं न कहै. बहुरि इहां दश प्रकार सत्यका वर्णन है. नामसत्य, रूपसत्य, स्थापनासत्य, प्रतीत्यसत्य, संवृतिसत्य, संयोजनासत्य, जनपदसत्य, देशसत्य, भावसत्य, समयसत्य. सो मुनिनिका मुनिनितैं तथा श्रावकनितैं वचनालापका व्यवहार है. तहां बहुत भी वचनालाप होय तब सूत्रसिद्धांत अनुसार इस दशप्रकारका सत्यरूप भी प्रवृत्ति होय हैं। तहां अर्थ गुण विना भी वक्ता

की इच्छातैं काहू वस्तुका नाम संज्ञा करै सो तौ नाम सत्य है १। बहुरि रूपमात्रकरि कहिये जैसैं चित्राममें काहूका रूप लिखि कहै कि यह सुपेद वर्ण फलाणा पुरुष है सो रूप-सत्य है २. बहुरि किसी प्रयोजनके अर्थ काहूकी मूर्त्ति स्थापि कहै सो स्थापना सत्य है ३. बहुरि काहू प्रतीतिके अर्थ आश्रयकरि कहिये सो प्रतीति सत्य है. जैसैं ताल ऐसा परिमाण विशेष है ताके आश्रय कहै यह पुरुषताल है अ-थवा लंबा कहै तौ छोटेकूं प्रतीत्यकरि कहै, ४. बहुरि लोक व्यवहारके आश्रयकरि कहै सो संवृतिसत्य है. जैसैं कमल के उपजनेकूं अनेक कारण हैं तौऊ पंकविषै भया तातैं पंकज कहिये ५. बहुरि वस्तुनिकूं अनुक्रमतैं स्थापनेका वचन कहै सो संयोजना सत्य है, जैसैं दशलक्षणका मंडल माडै तामैं अनुक्रमतैं चूर्णके कोठे करै अर कहै कि यह उत्तम क्षमाका है, इत्यादि जोडरूप नाम कहै. अथवा दूसरा उदाहरण जैसैं जोंहरी मोतीनिकी लडी करै तिनिमें मोतिनकी संज्ञा थापि लीनी है सो जहां जो चाहिये तिसही अनुक्रमतैं मोती पोवै ६. बहुरि जिस देशमें जैसी भाषा होय सो कहना सो जनपदसत्य है ७. बहुरि ग्राम नगर आदिका उपदेशक वचन सो देशसत्य है जैसैं वाडि चौगिरद होय ताकूं ग्राम कहिये ८. बहुरि छद्मस्थके ज्ञान अगोचर अर संयमादिक पालनेके अर्थ जो वचन सो भावसत्य है. जैसैं काहू वस्तुमें छद्मस्थके ज्ञानके अगोचर जीव होंय तौऊ अपनी दृष्टिमें

जीव न देखि आगम अनुसार कहै कि यह प्रासुक है ६. ब-हुरि जो आगमगोचर वस्तु है तिनिकूं आगमके वचनानुसार कहना सो समयसत्य है जैसैं पल्य सागर इत्यादिक कहना १०. बहुरि दशप्रकार सत्यका कथन गोम्मटसारमें है तहां सात नाम तौ येही हैं अर तीनके नाम इहां तौ देश, संयो-जना, समय हैं अर तहां, संभावना, व्यवहार, उपपा ए हैं. बहुरि उदाहरण अन्य प्रकार हैं सो विवक्षाका भेद जानना. विरोध नाहीं. ऐसैं सत्यकी प्रवृत्ति होय है सो जिनसूत्रानु-सार वचन प्रवृत्ति करै ताकै सत्यधर्म होय है ॥ ३९८ ॥

आगें उत्तम संयमधर्मकूं कहै हैं,-

जो जीवरक्खणपरो गमणागमणादिसव्वकम्मेसु ।
तणछेदं पि ण इच्छदि संजमभावो हवे तस्स ३९९

भाषार्थ-जो मुनि गमन आगमन आदि सर्व कार्यनि विषै तृणका छेदमात्र भी नाहीं चाहै न करै. कैसा है मुनि ? जीवनकी रक्षाविषै तत्पर है ऐसे मुनिकै संयमभाव होय हैं. भावार्थ-संयम दोय प्रकार कह्या है इन्द्रिय मनका वश करणा अर छह कायके जीवनिकी रक्षा करनी. सो इहां मुनिके आहार विहार करनेविषै गमन आगमन आदि का काम पडै तिनि कार्यनिमें ऐसे परिणाम रहैं जो मैं तृण मात्रका भी छेद नाहीं करूं. मेरा निमित्ततैं काहूका अहित न होय, ऐसैं यत्नरूप प्रवर्त्तै है जीवदयाविषै ही तत्पर रहै है. इहां टीकाकार अन्य ग्रंथनितैं संयमका विशेष वर्णन

कीया है. ताका संक्षेप—जो संयम दोयप्रकार है. उपेक्षासंयम, अपहृतसंयम। तहां जो स्वभावहीतैं रागद्वेषकूं छोडि गुप्ति धर्मविषै कायोत्सर्ग ध्यानकरि तिष्ठै तहां ताके उपेक्षासंयम कहिये. उपेक्षा नाम उदासीनता वा वीतरागताका है. बहुरि अपहृतसंयमके तीन भेद हैं. उत्कृष्ट मध्यम जघन्य। तहां चालतां बैठतां जो जीव दीखै तासूं आप टलिजाय जीवकूं सरकावै नाहीं सो उत्कृष्ट है. बहुरि कोमलमयूरकी पीछीकरि जीवकूं सरकावै सो मध्यम है. बहुरि अन्य तृणादिकनैं सरकावै सो जघन्य है. इहां अपहृत संयमीकूं पंच समितिका उपदेश है. तहां आहार विहारके अर्थ गमन करै सो प्रासुक मार्ग देखि जूडा प्रमाण भूमिकूं देखतैं मंद मंद अति यत्नतैं गमन करै. सो ईर्यासमिति है. बहुरि धर्मोपदेश आदिके निमित्त वचन कहै सो हितरूप मर्यादनैं लीयां सन्देहरहित स्पष्ट अक्षररूप वचन कहै. बहु प्रलाप आदि वचनके दोष हैं तिनितैं रहित बोलै सो भाषासमिति है. बहुरि कायकी स्थितिके अर्थ आहार करै सो मनवचनकाय कृत कारित अनुमोदनाका दोष जामैं न लागे, ऐसा परका दीया छियालीस दोष, बत्तीस अंतराय टालि चौदहमलरहित अपने हाथ विषै खड़ा अतियत्नतैं शुद्ध आहार करै सो एषणा समिति है. बहुरि धर्मके उपकरणनिकूं उठावना धरना सो अतियत्नतैं भूमिकं देखि उठावना धरना सो आदान निक्षेपण समिति है. बहुरि अंगका मल मूत्रादिक क्षेपण सो त्रस थावर जीवनिकूं देखि टालिकरि यत्नतैं क्षेपना सो प्रतिष्ठापना

समिति है. ऐसैं पांच समिति पालै तिनिके संयम पलै है.
जातैं ऐसा कह्या है जो यत्नाचार प्रवर्त्तै है ताके बाह्य जीव
कूं बाधा होय तोऊ बंध नाहीं है अर यत्नरहित प्रवर्त्तै है
ताके बाह्य जीव मरो तथा मति मरो बंध अवश्य होय है. ब-
हुरि अपहृत संयमके पालनेके अर्थ आठ शुद्धीनिका उप-
देश है. भावशुद्धि १ कायशुद्धि २ विनयशुद्धि ३ ईर्यापथ-
शुद्धि ४ भिक्षाशुद्धि ५ प्रतिष्ठापनाशुद्धि ६ शयनासनशुद्धि
७ वाक्यशुद्धि ८ ।

तहां भावशुद्धि तौ कर्मका क्षयोपशमजनित है सो तिस
विना तौ आचार प्रकट नहीं होय. शुद्ध उज्वल भींतिमें
चित्राम शोभायमान दीखै जैसैं. बहुरि दिगंबररूप सर्व वि-
कारनितैं रहित यत्नरूप जाविषै प्रवृत्ति शान्त मुद्रा जाकूं
देखै अन्यकै भय न उपजै तथा आप निर्भय रहै ऐसी का-
यशुद्धि है. बहुरि जहां अरहंत आदिविषै भक्ति गुरुनिके अ-
नुकूल रहना ऐसैं विनयशुद्धि है. बहुरि मुनि जीवनिके ठिका-
ने सर्व जानै हैं तातैं अपने ज्ञानतैं सूर्यके उद्योगतैं नेत्र इंद्रि-
यतैं मार्गकूं अतियत्नतैं देखिकरि गमन करना सो ईर्यापथ-
शुद्धि है. बहुरि भोजनकूं गमन करै तब पहले तौ अपने मल
मूत्रकी बाधाकूं परखै, अपना अंगकूं नीकै प्रतिलेखै, बहुरि
आचार सूत्रमें कह्या तैसैं देश काल स्वभाव विचारै. बहुरि
एती जायगां आहारकौं प्रवेश करै नाहीं. गीत नृत्य वादि-
त्रकी जिनकै आजीविका होय, तिनके घर जाय नाहीं. जहां
प्रसूति भई होय तहां जाय नाहीं. जहां मृत्यु भई होय तहां

जाय नाहीं. वेश्याकै जाय नाहीं. पापकर्म हिंसाकर्म होय तहां जाय नाहीं. दीनका घर, अनाथका घर, दानशाला, यज्ञशाला, यज्ञ, पूजनशाला, विवाह आदि मंगल जहां होय इनिकै आहार निमित्त जाय नाहीं. धनवानकै जाना कि निर्धनकै जाना ऐसा विचारै नाहीं. लोकनिंद्य कुलकै घर जाय नाहीं. दीनवृत्ति करै नाहीं. प्राशुक आहार ले. आगममें कह्या तैसैं दोष अंतराय टालि निर्दोष आहार ले, सो भिक्षाशुद्धि है. इहां लाभ अलाभ सरस नीरसविषै समानबुद्धि राखै है. सो भिक्षा पांच प्रकार कही है. गोचर १ अक्षम्रक्षण २ उदराग्निप्रशमन ३ भ्रमराहार ४ गर्तपुरण ५. तहां गऊकी ज्यों दातारकी सम्पदादिककी तरफ न देखै, जैसा पाया तैसा आहार लेनेहीमें चित्त राखै, सो गोचरी वृत्ति है. बहुरि जैसैं गाडीकौ वांगि ग्राम पहुंचै, तैसैं संयमका साधक काय, ताकूं निर्दोष आहार दे संयम साधै, सो अक्षम्रक्षण है. बहुरि अग्नि लागीकूं जैसें तैसैं पाणीतैं बुझाय घर बचावै, तैसैं क्षुधा अग्निकूं सरस नीरस आहारकरि बुझाय अपना परिणाम उज्ज्वल राखै सो उदराग्निप्रशमन है. बहुरि भ्रमर जैसैं फूलकूं बाधा नाहीं करै अर वासना ले, तैसैं मुनि दातारकूं बाधा न उपजाय आहार ले सो भ्रमराहार है. बहुरि जैसैं शुभ्र कहिये खाडा ताकूं जैसैं तैसैं भरतकरि भरिये तैसैं मुनि स्वादु निःस्वादु आहारकरि उदर भरै सो गर्त्तपूरण कहिये. ऐसैं भिक्षाशुद्धि है. बहुरि मल मूत्र श्लेष्म थूक आदि क्षेपै सो जीवनिकूं देखि यत्नतैं क्षेपै सो प्रतिष्ठा-

पना शुद्धि है. बहुरि शयनासनशुद्धि जहां स्त्री दुष्ट जीव नपुंसक चोर मद्यपायी जीववधके करणहारे, नीच लोक व-सते होंय तहां न वसै. बहुरि शृंगार विकार आभूषणसुन्दर वेश ऐसी जो वेश्यादिक तिनिकी क्रीडा जहां होय, सुंदर गीत नृत्य वादित्र जहां होते होंय, बहुरि जहां विकारके कारण नग्न गुह्यप्रदेश जिनमैं दीखैं ऐसे चित्राम होंय, ब-हुरि जहां हास्य महोत्सव घोडा आदिक शिक्षा देनेका ठि-काना तथा व्यायामभूमि होय, तहां मुनि न वसै. जिनतैं क्रोधादिक उपजै ऐसे ठिकाने न वसै. सो शयनासनशुद्धि है. जेतैं कायोत्सर्ग खडा रहनेकी शक्ति होय तेतैं स्वरूपमैं लीन होय खडे रहै पीछैं बैठै तथा खेदके मेटनेकं अल्पकाल सोवै. बहुरि वाक्यशुद्धि जहां आरम्भकी प्रेरणारहित वचन प्रवर्तै युद्ध, काम, कर्कश, प्रलाप, पैशुन्य, कठोर, परपीडा करनेवाले वाक्य न प्रवर्तै । अनेक विकथाके भेद हैं तिनिरूप वचन न प्रवर्त्तै. जिनिमैं व्रत शीलका उपदेश अपना परका जामैं हित होय मीठा मनोहर वैराग्यकूं कारण अपनी प्र-शंसा परकी निन्दातैं रहित संयमी योग्य वचन प्रवर्तै सो वचनशुद्धि है. ऐसैं संयम धर्म है. संयमके पांच भेद कहे हैं, सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसांपराय, यथाख्यात ऐसैं पांच भेद हैं इनिका विशेष व्याख्यान अ-न्यग्रन्थनितैं जानना ॥ ३९९ ॥

आगैं तप धर्मकूं कहै हैं,—

इहपरलोयसुहाणं णिरवेक्खो जो करेदि समभावो ।
विविहं कायकिलेसं तवधम्मो णिम्मलो तस्स ४००

भाषार्थ–जो मुनि इस लोक परलोकके सुखकी अपेक्षा सूं रहित हूवा संता, बहुरि सुखदुःख शत्रु मित्र तृण कंचन निंदा प्रशंसा आदिविषै रागद्वेषरहित समभावी हूवा संता अनेक प्रकार कायक्लेश करै है तिस मुनिके निर्मल तपधर्म होय है । भावार्थ–चारित्रके अर्थ जो उद्यम अर उपयोग करै सो तप कह्या है । तहां कायक्लेश सहित ही होय है. तातैं आत्माकी विभावपरिणतिका संस्कार हो है ताकूं मेटनेका उद्यम करै. अपने शुद्धस्वरूप उपयोगकूं चारित्रविषै थांमै, तहां बडा जोरसूं थंभै है सो जोर करना सो ही तप है । सो बाह्य अभ्यंतर भेदतैं बारह प्रकार कह्या है । ताका वर्णन आगैं चूलिकामैं होयगा. ऐसैं तप धर्म कह्या ॥ ४०० ॥

आगैं त्याग धर्मकूं कहै हैं,--

जो चयदि मिट्ठभोज्जं उवयरणं रायदोससंजणयं ।
वसदिं ममत्तहेदुं चायगुणो सो हवे तस्स ॥ ४०१ ॥

भाषार्थ–जो मुनि मिष्ट भोजन छोडै, रागद्वेषका उपजावनहारा उपकरण छोडै, ममत्वका कारण वसतिका छोडै, तिस मुनिके त्यागनामा धर्म होय है. भावार्थ–मुनिके संसार देह भोगके ममत्वका त्याग तो पहले ही है । बहुरि जिन वस्तूनिमैं कार्य पडै है तिनिकूं मुख्यकरि कह्या है. आहारसूं काम पडै

तहां तौ सरस नीरसका ममत्व नाहीं करै. बहुरि धर्मोपकरण पुस्तक पीछी कमंडलु जिनसूं राग तीव्र बंधै ऐसे न राखै, जो गृहस्थजनके काम न आवै. बहुरि वडी वस्तिका रहनेकी जायगासूं काम पडै सो ऐसी जायगां न वसै जातैं ममत्व उपजै. ऐसैं त्यागधर्म कह्या ॥ ४०१ ॥

आगैं आकिंचन्य धर्मकूं कहै हैं,—

तिविहेण जो विवज्जइ चेयणमियरं च सव्वहा संगं
लोयववहारविरदो णिग्गंथत्तं हवे तस्स ॥ ४०२ ॥

भाषार्थ—जो मुनि चेतन अचेतन परिग्रहकूं सर्वथा मन वचनकाय कृतकारितअनुमोदनाकरि छोडै, कैसा हूवा संता, लोकके व्यवहारसूं विरक्त हूवा संता छोडै, तिस मुनिकै निर्ग्रंथपणा होय है. भावार्थ—मुनि अन्य परिग्रह तौ छोडै ही हैं परन्तु मुनिपणामें योग्य ऐसे चेतन तो शिष्य संघ अर अचेतन पुस्तक पिच्छिका कमंडलु धर्मोपकरण अर आहार वस्तिका देह ये अचेतन तिनिसूं भी सर्वथा ममत्व छोडै ऐसा विचारै जो मैं तो आत्मा ही हों अन्य मेरी किछू भी नाहीं मैं अकिंचन हों, ऐसा निर्ममत्व होय ताकै आकिंचन्य धर्म होय है ॥ ४०२ ॥

आगैं ब्रह्मचर्य धर्मकूं कहै हैं,—

जो परिहरेदि संगं महिलाणं णेव पस्सदे रूवं ।
कामकहादिणियत्तो णवहा बंभं हवे तस्स ॥ ४०३ ॥

भावार्थ-जो मुनि स्त्रीनिकी संगति न करै, तिनिका रूपकूं नाहीं निरखै, बहुरि कामकी कथा आदि शब्दकरि स्मरणादिकरि रहित होय ऐसैं नवधा कहिये मनवचनकाय, कृत कारित अनुमोदनाकरि करै तिस मुनिके ब्रह्मचर्य धर्म होय है. भावार्थ-इहां ऐसा भी जानना जो ब्रह्म आत्मा है ताविषै लीन होय सो ब्रह्मचर्य है । सो परद्रव्यविषै आत्मा लीन होय तिनिविषै स्त्रीमें लीन होना प्रधान है जातैं काम मनविषै उपजै है सो अन्य कषायनितैं भी यह प्रधान है । अर इस कामका आलंबन स्त्री है सो याका संसर्ग छोडे अपने स्वरूपविषै लीन होय है । तातैं याकी संगति करना रूप निरखना, याकी कथा करनी, स्मरण करना, छोड़ै ताकै ब्रह्मचर्य होय है । इहां टीकामें शीलके अठारह हजार भेद ऐसे लिखे हैं । अचेतन स्त्री—काष्ठ पाषाण अर लेपकृत, तिनिकूं मनवचनकाय अर कृत कारित अनुमोदना इनि छहतैं गुणे अठारह होय । तिनिकं पांच इंद्रियनितैं गुणे निव्वे होय । द्रव्य अर भावतैं गुणे एकसो अस्सी (१८०)होय क्रोध मान माया लोभ इनि च्यारितैं गुणे सातसौ वीस ७२० होंय । बहुरि चेतन स्त्री देवांगना मनुष्यणी तिर्यंचणी तिनि कं कृत कारित अनुमोदनातैं गुणे नव (९) होय, तिनिकूं मन वचन काय इनि तीनतैं गुणे सत्ताईस २७ होय, पांच इन्द्रियनितैं गुणे एकसौ पैंतीस १३५ होय, द्रव्य अर भावकरि गुणे दोयसौसत्तरि २७० होय, इनिकूं च्यारि संज्ञा आहार भय मैथुन परिग्रहतैं गुणे एक हजार अस्सी १०८०

होय इनिकूं अनंतानुबंधी अप्रत्याख्यानावरण प्रत्याख्यानावरण संज्वलन क्रोध मान माया लोभ रूप सोलह कषायनितैं गुणे सतराहजार दोयसे अस्सी १७२८० होय अर अचेतन स्त्रीके सातसौ वीस भेद मिलाये अठारह हजार १८००० होय ऐसैं भेद हैं बहुरि इनि भेदनिकूं अन्य प्रकार भी कीयें हैं सो अन्य ग्रन्थनितैं जानने. ए आत्माकी परणतिके विकारके भेद हैं सो सर्व ही छोडि अपने स्वरूपमें रमै तब ब्रह्मचर्य धर्म उत्तम होय है ॥ ४०२ ॥

आगें शीलवानकी वडाई कहै हैं,—उक्तं च,

जो ण वि जादि वियारं तरुणियणकडक्खवाणविद्धोवि
सो चेव सूरसूरो रणसूरो णो हवे सूरो ॥ १ ॥

भावार्थ—जो पुरुष स्त्रीजनके कटाक्षरूप बाणनिकरि विंध्या भी विकारकूं प्राप्त न होय है सो शूरवीरनिमें प्रधान है, अर जो रणविषै शूरवीर है सो शूरवीर नाहीं है. भावार्थ—युद्धमें साम्हा होय मरनेवाले तो सूरवीर बहुत हैं अर जे स्त्रीके वश न होय हैं ब्रह्मचर्यव्रत पालैं हैं ऐसे विरले हैं तेही बडे साहसी हैं शूरवीर हैं, कामको जीतनेवाले ही बडे सुभट हैं। ऐसे यह दश प्रकार धर्मका व्याख्यान कीया।

आगे याकूं संकोचै हैं,—

एसो दहप्पयारो धम्मो दहलक्खणो हवे णियमा।
अण्णो ण हवदि धम्मो हिंसा सुहमा वि जत्थ त्थि॥

भावार्थ—ऐसैं दश प्रकार धर्म है सो ही दशलक्षणस्वरूप धर्म नियमकरि है. बहुरि अन्य जहां सूक्ष्म भी हिंसा होय सो धर्म नाहीं है. भावार्थ—जहां हिंसाकरि अर तिसकूं कोई अन्यमती धर्म थापै है, तिसकूं धर्म न कहिये. यह दशलक्षणस्वरूप धर्म कह्या है सो ही धर्म नियमकरि है ४०४

आगें इस गाथामें कह्या है जो जहां सूक्ष्म भी हिंसा होय तहां धर्म नाहीं तिस ही अर्थकूं स्पष्टकरि कहै हैं,—

हिंसारंभो ण सुहो देवणिमित्तं गुरूण कज्जेसु ।
हिंसा पावं ति मदो दयापहाणो जदो धम्मो ॥४०५॥

भाषार्थ—जातैं हिंसा होय सो पाप है, ऐसैं कह्या है. बहुरि धर्म है सो दया प्रधान है, ऐसैं कह्या है. तातैं देवके निमित्त तथा गुरुके कार्यके निमित्त हिंसा आरम्भ सो शुभ नाहीं है. भावार्थ—अन्यमती हिंसामें धर्म थापैं हैं. मीमांसक तो यज्ञ करै हैं, तहां पशुनिकों होमैं हैं ताका फल शुभ कहै हैं. बहुरि देवीके भैरूंके उपासक बकरे आदि मारि देवी भैरूंकै चढ़ावै हैं ताका शुभ फल मानै हैं. बौद्धमती हिंसाकरि मांसादिक आहार शुभ कहै हैं. बहुरि श्वेताम्बरनिके केई सूत्रनिमें ऐसैं कही है जो देव गुरु धर्मके निमित्त चक्रवर्तिकी सेनाने चूरिये जो साधु ऐसैं न करै है तो अनन्त संसारी होय. कहूं मद्यमांसका आहार भी लिखा है. इनि सर्वनिका निषेध इस गाथामें जानना. जो देव गुरुके कार्यनिमित्त हिंसाका आरम्भ करै है सो शुभ नाहीं. धर्म है

सो दयाप्रधान ही है. बहुरि ऐसैं भी जानना जो पूजा प्रतिष्ठा चैत्यालयका निर्मापण संघयात्रा तथा वसतिकाका निर्मापण गृहस्थनिके कार्य हैं ते भी मुनि आप न करै, न करावै, न अनुमोदना करै. यह धर्म गृहस्थनिका है सो जैसैं इनिका सूत्रमें विधान लिख्या है तैसैं गृहस्थ करै. गृहस्थ मुनिकूं इनिका प्रश्न करै तो कहै जिन सिद्धांतमें गृहस्थका धर्म पूजा प्रतिष्ठा आदि लिख्या है तैसैं करो. ऐसैं कहनेमें हिंसाका दोष तो गृहस्थके ही है. इसमें तिस श्रद्धान भक्ति धर्मकी प्रधानता भई तिस संबंधी पुण्य भया तिसके सीरी मुनि भी हैं, हिंसा गृहस्थकी है. ताके सीरी नाहीं. बहुरि गृहस्थ भी हिंसा करनेका अभिप्राय करै तो अशुभ ही है. पूजा प्रतिष्ठा यत्नपूर्वक करै है. कार्यमें हिंसा होय सो गृहस्थके कैसैं टलै ? सिद्धांतमें ऐसा भी कह्या है जो अल्प अपराध लगै बहुत पुण्य निपजै ऐसा कार्य गृहस्थकूं योग्य है. गृहस्थ जिसमें नफा जाणै सो कार्य करै. थोडा द्रव्य दीये बहुत द्रव्य आवै सो कार्य करै. किंतु मुनिनिकै ऐसा कार्य नाहीं होय है. तिनिकैं सर्वथा यत्न ही है ऐसा जानना ४०५

देवगुरूण णिम्मित्तं हिंसारंभो वि होदि जदि धम्मो ।
हिंसारहिओ धम्मो इदि जिणवयणं हवे अलियं ॥

भावार्थ—जो देव गुरुके निमित्त हिंसाका आरम्भ भी यतिका धर्म होय तो जिन भगवानके ऐसे वचन हैं जो धर्म हिंसारहित है सो ऐसा वचन अलीक (झूठा) ठहरै. भा-

वार्थ—जातैं धर्म भगवानने हिंसारहित कह्या है तातैं देव गुरुके कार्यके निमित्त भी मुनि हिंसाका आरम्भ न करै. जे श्वेताम्बर कहै हैं सो मिथ्या है ॥ ४०६ ॥

आगें इस धर्मका दुर्लभपणा दिखावै हैं—

इदि एसो जिणधम्मो अलद्धपुव्वो अणाइकाले वि।
मिछत्तसंजुदाणं जीवाणं लद्धिहीणाणं ॥ ४०७ ॥

भाषार्थ—ऐसैं यह जिनेश्वर देवका धर्म अनादि कालविषै मिथ्यात्वकरि संयुक्त जे जीव जिनिकै कालादि लब्धि नाहीं आई, तिनिकै अलब्धपूर्वक है पूर्वैं कबहूं पाया नाहीं भावार्थ—मिथ्यात्वकी अलट जीवनिके अनादि कालतैं ऐसो है जो जीव अजीवादि तत्त्वार्थनिका श्रद्धान कबहूं हूवा नाहीं, विना तत्वार्थश्रद्धान अहिंसाधर्मकी प्राप्ति कैसैं होय ? ४०७

आगे कहै हैं कि अलब्धपूर्वक धर्मकूं पायकरि केवल पुण्यका ही आशय करि न सेवणा,—

एदे दहप्पयारा पावकम्मस्स णासिया भणिया।
पुण्णस्स य संजणया पर पुण्णत्थं ण कायव्वा ४०८

भाषार्थ—ए दश प्रकार धर्मके भेद कहे, ते पापकर्मके तौ नाश करनेवाले कहे बहुरि पुण्य कर्मके उपजावन हारे कहे हैं परन्तु केवल पुण्यहीका अर्थ प्रयोजनकरि नाहीं अंगीकार करने। भावार्थ—सातावेदनीय, शुभआयु, शुभनाम, शुभगोत्र तौ पुण्य कर्म कहे हैं. अर च्यारि घातिकर्म अर असातावेदनीय अशु-

बहुरि जाकै इन्द्रियसुखकी वांछा होय ताकै निःकांक्षित गुण नाहीं होय. इन्द्रिय सुखकी वांछातैं रहित भये ही निःकांक्षित गुण होय. ऐसैं आठ गुणके संभवनेके तीन विशेषण हैं ॥

आगैं ए कहै हैं–ये आठ गुण जैसें धर्मविषै कहे तैसैं देव गुरु आदिविषै भी जानने,—

णिस्संकापहुदिगुणा जह धम्मे तह य देवगुरुतच्चे ।
जाणेहि जिणमयादो सम्मत्तविसोहया एदे ॥ २४ ॥

भाषार्थ–ए निःशंकित आदि आठ गुण कहे ते धर्मविषै प्रकट होते कहे तैसें ही देवके स्वरूपविषै तथा गुरुके स्वरूपविषै तथा षड्द्रव्य पंचास्तिकाय सप्त तत्व नव पदार्थनिके स्वरूपविषै होय हैं. तिनिकौं प्रवचन सिद्धान्ततैं जानने. ए आठ गुण सम्यक्त्वकौं निरतिचार विशुद्ध करनेवाले हैं. भावार्थ–देव गुरु तत्वविषै शंका न करणी, तिनिकी यथार्थ श्रद्धातैं इन्द्रिय सुखकी वांछा रूप कांक्षा न करणी, तिनिमें ग्लानि न ल्यावनी, तिनिविषै मूढदृष्टि न राखणी, तिनिके दोषनिका अभाव करना तथा तिनिका ढांकना, तिनिका श्रद्धान दृढ करना, तिनिकै वात्सल्य विशेष अनुराग करना, तिनकी महिमा प्रकट करनी ऐसैं आठ गुण इनिविषै जानने. इनिकी कथा आगैं सम्यग्दृष्टी भये तिनिकी जिनशास्त्रनितैं जाननी. अर ये आठों गुण सम्यक्त्वके अतीचार दूरकरि निर्मल करनहारे हैं ऐसैं जानना ॥ ४२४ ॥

आगें इस धर्मके करनेवाला तथा जाननेवाला दुर्लभ है ऐसैं कहै हैं,—

धम्मं ण मुणदि जीवो अहवा जाणेइ कहवि कट्ठेण।
काउं तो वि ण सक्कदि मोहपिसाएण भोलविदो ॥

भाषार्थ—या संसारमें प्रथम तौ जीव धर्मकौं जाणै ही नाहीं है बहुरि कोई प्रकार बडा कष्टकरि जो जाणै भी तौ मोहरूप पिशाचकरि भ्रमित किया हुवा करनेकौं समर्थ नाहीं होय है. भावार्थ—अनादिसंसारतैं मिथ्यात्वकरि भ्रमित जो यह प्राणी प्रथम तौ धर्मकौं जाणै ही नाहीं है बहुरि कोई काललब्धितैं गुरुके संयोगतैं ज्ञानावरणीके क्षयोपशमतैं जानै भी तौ ताका करना दुर्लभ है ॥ ४२५ ॥

आगें धर्मका ग्रहणका माहात्म्य दृष्टांतकरि कहै हैं,—

जह जीवो कुणइ रइं पुत्तकलत्तेसु कामभोगेसु ।
तह जइ जिणिंदधम्मे तो लीलाए सुहं लहदि २६

भाषार्थ—जैसैं यह जीव पुत्र कलत्रविषै तथा काम भोगविषै रति प्रीति करै है तैसैं जो जिनेन्द्रके वीतराग धर्मविषै करै तौ लीला मात्र शीघ्र कालमें ही सुखकूं प्राप्त होय है। भावार्थ—जैसी या प्राणीके संसारविषै तथा इन्द्रियनिके विषयनिकेविषै प्रीति है तैसी जो जिनेश्वरके दश लक्षण धर्मस्वरूप जो वीतराग धर्म ताविषै प्रीति होय तौ थोडेसे ही कालविषै मोक्षकूं पावै ॥ ४२६ ॥

आगें कहै हैं जो जीव लक्ष्मी चाहै हैं सो धर्मविना कैसैं होय ?—

लच्छिं वंछेइ णरो णेव सुधम्मेसु आयरं कुणई ।
वीएण विणा कुत्थ वि किं दीसदि सस्सणिप्पत्ती ॥२७॥

भाषार्थ—यह जीव लक्ष्मीकौं चाहै है बहुरि जिनेन्द्रका कह्या मुनि श्रावक धर्मविषै आदर प्रीति नाहीं करै है तौ लक्ष्मीका कारण तौ धर्म है, तिस विना कैसैं आवै ? जैसैं वीज विना धान्यकी उत्पत्ति कहूं दीखै है ? नाहीं दीखै है. भावार्थ—बीज विना धान्य न होय तैसैं धर्मविना संपदा न होय यह प्रसिद्ध है ॥ ४२७ ॥

आगें धर्मात्मा जीवकी प्रवृत्ति कहै हैं,—

जो धम्मत्थो जीवो सो रिउवग्गे वि कुणदि खमभावं
ता परदव्वं वज्जइ जणणिसमं गणइ परदारं ॥ २८ ॥

भाषार्थ—जो जीव धर्मविषै तिष्टै है सो वैरीनिके समूहविषै क्षमाभाव करै है बहुरि परका द्रव्यकौं तजै है, अंगीकार नाहीं करै है. बहुरि परकी स्त्रीकूं कन्या माता बहन समान गिणै है ॥ ४२८ ॥

ता सव्वत्थ वि कित्ती ता सव्वस्स वि हवेइ वीसासो
ता सव्वं पि य भासइ ता सुद्धं माणसं कुणई ॥२९॥

भाषार्थ—जो जीव धर्मविषै तिष्टै है तो सर्व लोकमें ताकी कीर्त्ति होय है. बहुरि ताका सर्वलोक विश्वास करै

है. बहुरि सो पुरुष सर्वकौं प्रियवचन कहै है जातैं कोई दुःख न पावै है. बहुरि सो पुरुष अपने अर परके मनकौं शुद्ध उज्वल करै है कोईके यासूं कालिमा न रहै. तैसैं याकै भी कोईसूं कालिमा न रहै है. भावार्थ—धर्म सर्वप्रकार सुखदाई है।

आगैं धर्मका माहात्म्य कहै हैं,—

उत्तमधम्मेण जुदो होदि तिरक्खो वि उत्तमो देवो ।
चंडालो वि सुरिंदो उत्तमधम्मेण संभवदि ॥ ४३० ॥

भाषार्थ—सम्यक्त्व सहित उत्तम धर्मकरि संयुक्त जीव है सो तिर्यंच भी देव पदईकौं पावै है. बहुरि चांडाल है सो भी देवनिका इन्द्र सम्यक्त्व सहित उत्तम धर्मकरि होय है।

अग्गी वि य होदि हिमं होदि भुयंगो वि उत्तमं रयणं
जीवस्स सुधम्मादो देवा वि य किंकरा होंति ॥३१॥

भाषार्थ—या जीवकै उत्तम धर्मतैं अग्नि तौ हिम (शीतल पाला) हो जाय है. बहुरि सर्प है सो उत्तम रत्ननिकी माला हो जाय है बहुरि देव हैं ते भी किंकर दास होय हैं।

उक्तं च गाथा,—

तिक्खं खग्गं माला दुज्जयरिउणो सुहंकरा सुयणा ।
हालाहलं पि अमियं महापया संपया होदि ॥ १ ॥

भाषार्थ—उत्तम धर्म सहित जीवकै तीक्ष्ण खड्ग सो फूलमाला होय जाय है. बहुरि दुर्जय इसा जो जीत्या न जाय रिपु जो वैरी सो भी सुखका करनावाला सुजन कहिये मित्र

समान होय है. बहुरि हलाहल जो जहर सो भी अमृतसमान
परिणवै है, बहुत कहा कहिये महान् बडी आपदा भी सं-
पदा होय जाय है ॥ १ ॥

आलियवयणं पि सच्चं उज्जमरहिये वि लच्छिसंपत्ती ।
धम्मपहावेण णरो अणओ वि सुहंकरो होदि ३२

भावार्थ—धर्मके प्रभावकरि जीवके झूंठ वचन भी सत्य
वचन होय हैं. बहुरि उद्यम रहितके भी लक्ष्मीकी प्राप्ति
होय है बहुरि अन्यान्य कार्य भी सुखका करनहारा होय है
भावार्थ—इहां यह अर्थ जानना जो पूर्वे धर्म सेया होय तौ
ताके प्रभावतैं इहां झूंठ बोलै सो भी सांची होय जाय. उ-
द्यमविना भी संपत्ति मिलै, अन्याय चालै तौ भी सुखी रहै.
अथवा कोई झूंठ वचनका तूदा (वायदा) लगावै तौ धीजमें
(अंतमें) सांचा होय, अन्याय कीया लोक कहै है तौ न्याय-
वालेकी सहाय ही होय ऐसा भी जानना ।

आगें धर्मरहित जीवकी निंदा कहै हैं,—

देवो वि धम्मचत्तो मिच्छत्तवसेण तरुवरो होदि ।
चक्की वि धम्मरहिओ णिवडइ णरए ण संपदे होदि

भावार्थ—धर्मकरि रहित जीव है सो मिथ्यात्वका वसकरि
देव भी वनस्पतिका जीव एकेन्द्रिय आय होय है. बहुरि
चक्रवर्त्ती भी धर्मकरि रहित होय तब नरकविषै पडै है जातैं
पाप है सो संपदाके अर्थ नाहीं है ।

धम्मविहीणो जीवो कुणइ असज्झं पि साहसं जइवि
तो ण वि पावदि इट्ठं सुट्ठु अणिट्ठं परं लहदि ॥ २४ ॥

भाषार्थ– धर्मरहित जीव है सो यद्यपि बडा असह्यवे योग्य साहस पराक्रम करै तौऊ ताके इष्ट वस्तुकी प्राप्ति न होय केवल उलटा अतिसैकरि अनिष्टकूं प्राप्त होय है । भावार्थ–पापके उदयतैं भली करतैं बुरा होय है यह जगप्रसिद्ध है ॥ ४३४ ॥

इय पच्चक्खं पिच्छिय धम्माहम्माण विविहमाहप्पं ।
धम्मं आयरह सया पावं दूरेण परिहरह ॥ २५ ॥

भाषार्थ–हे प्राणी हो या प्रकार धर्म अर अधर्मका अनेक प्रकार माहात्म्य प्रत्यक्ष देखिकरि तुम धर्मकूं आदरौ अर पापकूं दूरहीतैं परिहरौ. भावार्थ–आचार्य दशप्रकार धर्मका स्वरूप कहिकरि अधर्मका फल दिखाया. अब इहां यह उपदेश कीया है जो हे प्राणी हो ! जो प्रत्यक्ष धर्म अधर्मका फल लोकविषै देखि धर्मकूं आदरौ पापकूं परिहरौ. आचार्य बडे उपकारी हैं निष्कारण आपकूं किछू चाहिये नाहीं. निस्पृह भये संते जीवनिके कल्याणहीके अर्थ वारंवार कहिकरि प्राणीनिकौं चेत करावै हैं, ऐसे श्रीगुरु वन्दने पूजने योग्य हैं. ऐसें यतिधर्मका व्याख्यान किया ।

दोहा ।

भेदतैं, धर्म दोय परकार ।

ताकूं मुनि चितवो सतत, गहि पावौ भवपार ॥ १२ ॥

इति धर्मानुप्रेक्षा समाप्ता ॥ १२ ॥

अथ द्वादश तपांसि कथ्यंते.

आगें धर्मानुप्रेक्षाकी चूलिकाकूं कहता संता आचार्य बारहप्रकार तपके विधानका निरूपण करै है,—

बारसभेओ भणिओ णिज्जरहेऊ तवो समासेण,
तस्स पयारा एदे भणिज्जमाणा मुणेयव्वा ॥ ३६ ॥

भाषार्थ—तप है सो वारह प्रकार संक्षेपकरि जिनागम-विषै कह्या है. कैसा है? कर्म निर्जराका कारण है तिसके प्रकार आगें कहैंगे ते जानने. भावार्थ—निर्जराका कारण तप है सो वारहप्रकार है. बाह्यके अनशन अवमोदर्य वृत्तिपरिसंख्यान रसपरित्याग विविक्तशय्यासन कायक्लेश ऐसैं छः प्रकार. बहुरि अन्तरंगका प्रायश्चित्त विनय वैयावृत्य स्वाध्याय व्युत्सर्ग ध्यान ऐसैं छह प्रकार. इनिका व्याख्यान अब करिये हैं तहां प्रथम ही अनशन नाम तपकूं च्यारि गाथाकरि कहै हैं,—

उवसमणं अक्खाणं उववासो वण्णिदो मुणिंदेहि ।
तह्मा भुंजंता वि य जिदिंदिया होंति उववासा ॥ ३७ ॥

भाषार्थ—मुनीन्द्र हैं तिनिने इन्द्रियनिका उपवास कहिये विषयनिमें न जानै देना मनकूं अपने आत्मस्वरूप-विषैं लगावणा सो उपवास कह्या है. तातैं जितेन्द्रिय हैं ते

आहार करते भी उपवास सहित ही कहिये. भावार्थ-इंद्रि-यका जीतना सो उपवास सो यतिगण भोजन करते भी उपवासे ही हैं जातैं इंद्रियनिकूं वशीभुतकरि प्रवर्त्तै हैं।

जो मणइंदियाविजई इहभवपरलोयसोक्खणिरवेक्खो।
अप्पाणे च्चिय णिवसइ सज्झायपरायणो होदि ॥ ३८ ॥
कम्माण णिज्जरट्ठं आहारं परिहरेइ लीलाए।
एगादिणादिपमाणं तस्स तवो अणसणं होदि ॥४३९॥

भाषार्थ-जो मन इंद्रियनिका जीतनहारा है बहुरि इस भव परभवके विषयसुखनिविषै अपेक्षा रहित है बांछा नाहीं करै है बहुरि अपने आत्मस्वरूप ही विषै वसै है. अथवा स्वाध्यायविषै तत्पर है। बहुरि एक दिनकी मर्यादातैं कर्मनिकी निर्जराके अर्थ क्रीडा कहिये लीलामात्र ही क्लेश रहित हर्षतैं आहारको छोडै है ताकै अनशन तप होय है. भावार्थ-उपवासका ऐसा अर्थ है जो इंद्रिय मन विषयनिविषै प्रवृत्तितैं रहित होय आत्मामें बसै सो उपवास है. सो इंद्रियनिका जीतना विषयनिकी इसलोक परलोक सम्बन्धी वांछा न करनी, कै तो आत्मस्वरूपविषै लीन रहना, कै शास्त्रके अभ्यास स्वाध्यायविषै मन लगावणा ए तौ उपवासविषै प्रधान हैं. बहुरि क्लेश न उपजै जैसें क्रीडामात्र एक दिनकी मर्यादारूप आहारका त्याग करना ऐसैं उपवास नामा अनशन तप होय है ॥ ४३८-४३९ ॥

उववासं कुव्वाणो आरंभं जो करेदि मोहादो ।
तस्स किलेसो अवरं कम्माणं णेव णिज्जरणं ॥ ४० ।

भाषार्थ–जो उपवास करता संता मोहतैं आरंभ गृहकार्यादिककूं करै है ताकै पहिलै तौ गृहकार्यका क्लेश था ही बहुरि दुसरा भोजन विना क्षुधा तृष्णाका क्लेश भया ऐसैं होतैं क्लेश ही भया कर्मका निर्जरण तौ न भया, भावार्थ– आहारको तौ छोडै अर विषय कषाय आरंभकूं न छोडै ताकै आगैं तौ क्लेश था ही दुसरा क्लेश भूख तिसका भया ऐसे उपवासमें कर्मकी निर्जरा कैसैं होय ? कर्मकी निर्जरा तौ सर्व क्लेश छोडि साम्यभाव करे होय है. ऐसा जानना ॥ ४४० ॥

आगें अवमोदर्य तपकूं दोय गाथाकरि कहै हैं,—

आहारगिद्धिरहिओ चरियामग्गेण पासुगं जोग्गं ।
अप्पयरं जो भुंजइ अवमोदरियं तवं तस्स ॥ ४१ ॥

भषार्थ–जो तपस्वी आहारकी अतिचाहरहित हूवा सूत्रोक्त चर्याका मार्गकरि योग्य प्रासुक आहार अतिशयकरि अल्प ले, तिसकै अवमोदर्य तप होय है. भावार्थ–मुनि आहारके छियालीस दोष टालै है बत्तीस अंतराय टालै है चौदह मल रहित प्रासुक योग्य भोजन ले है तौऊ ऊनोदर तप करे, तामें अपने आहारके प्रमाणतैं थोडा ले, एक ग्रासतैं

लगाय बत्तीस ग्रास ताईं आहारका प्रमाण कह्या है तामें यथा इच्छा घटती ले सो अवमोदर्यतप है ॥ ४४१ ॥

जो पुण कित्तिणिमित्तं मायाए मिट्ठभिक्खलाहट्ठं ।
अप्पं भुंजदि भोज्जं तस्स तवं णिप्फलं विदियं ॥ ४२ ॥

भावार्थ–जो मुनि कीर्तिके निमित्त तथा माया कपट करि तथा मिष्ट भोजनके लाभके अर्थ अल्प भोजन करे है तपका नाम करे है ताकै तो दूसरा अवमोदर्य तप निष्फल है. भावार्थ– जो ऐसा विचारे अल्प भोजन कियेसूं मेरी कीर्त्ति होयगी, तब कपटकरि लोककौं भुलावा दे किछूप्र-योजन साधनेके निमित्त तथा यह विचारे जो थोडा भोजन किये भोजन मिष्ट रससहित मिलेगा ऐसे अभिप्रायतैं ऊनो-दर तप करे तौ ताके निष्फल है. यह तप नाहीं पाखंड है।

आगें वृत्तिपरिसंख्यान तपकौं कहै हैं,—

एगादिगिहपमाणं किं वा संकप्पकप्पियं विरसं ।
भोज्जं पसुव्व भुंजइ वित्तिपमाणं तवो तस्स ॥ ४३ ॥

भावार्थ–जो मुनि आहारकूं उतरै तब पहले मनमें ऐसी मर्याद करि चालै जो आज एक ही घर पहलै मिलेगा तो आहार लेवैंगे नातर फिर आवैंगे तथा दोय घर ताईं जांयगे ऐसैं मर्याद करै. तथा एक रस ताकी मर्याद करै तथा देनेवालेकी मर्याद करै तथा पात्रकी मर्याद करै ऐसा दातार ऐसी री-ति ऐसे पात्रमें लेकर देवैगा तो लेवैंगे. तथा आहारकी

अर्याद्करै सरस तथा नीरस तथा फलाणा अन्न मिलेगा तौं लेवैंगे इत्यादि वृत्तिकी संख्या गणना मर्यादा मनमें विचार चाले तैसें ही मिलै तौ लेय अन्यथा न लेय. वहुरि आहार लेय तव पशु गऊ आदिकी ज्यों करै. जैसें गऊ इतउत देखै नाहीं चरनेहीकी तरफ देखै तेसें ले, तिसके वृत्तिपरिसंख्या-नतप है. भावार्थ—भोजनकी आशाका निरास करनेकौं यह तप है संकल्प माफिक विधि मिलना दैव योग है यह वड़ा कठिन तप महामुनि करै हैं ॥ ४४३ ॥

आगें रस परित्यागतपकौं कहै हैं,—

संसारदुक्खतट्ठो विससमविसयं विचिंतमाणो जो ।
णीरसभोज्जं भुंजइ रसचाओ तस्स सुविसुद्धो ॥ ४४ ॥

भाषार्थ—जो मुनि संसार दुःखसूं तप्तायमान हूवा ऐसैं विचार करता है जो इन्द्रियनिके विषय हैं ते विष सरीखे हैं विष खाये एकवार मरै है विषय सेये वहुत जन्म मरण होय हैं. ऐसा विचारि नीरस भोजन करै है ताकै रसपरित्याग तप निर्मल होय है. भावार्थ—रस छह प्रकारके हैं घृत तैल दधि मिष्ट लवण दुग्ध ऐसैं वहुरि खाटा खारा मीठा कडु-वा तीखा कषायला. ए भी रस कहा है तिनिका जैसें इ-च्छा होय तैसें त्याग करै. एक ही रस छोडै, दोय रस छोडै तथा सर्व ही छोडै ऐसैं रसपरित्याग तप होय है. इहां कोई पूछै रसत्यागकौं कोई जाणै नाहीं मनहीमें त्याग करै तौ ऐसैं ही वृत्तिपरिसंख्यान है यामें वामें कहा विशेष ?

ताका समाधान, वृत्ति परिसंख्यानमें तौ अनेक रीतिनिकी संख्या है इहां रसहीका त्याग है यह विशेष है. बहुरि यह भी विशेष जो रसपरित्याग तौ बहुत दिनका भी होय ताकूं श्रावक जाणि भी जाय अर वृत्तिपरिसंख्यान बहुत दिनका होय नाहीं ॥ ४४४ ॥

आगें विविक्तशय्यासन तपकूं कहै हैं,—

जो रायदोसहेदू आसणसिज्जादियं परिच्चयई ।
अप्पा णिव्विसय सया तस्स तवो पंचमो परमो ॥

भाषार्थ—जो मुनि रागद्वेषके कारण जे आसन अर शय्या इनि आदिककौं छोडे बहुरि सदा अपने आत्मस्वरूपविषै वसे अर निर्विषय कहिये इन्द्रियनिके विषयनितैं विरक्त होय तिस मुनिके पांचमा तप विविक्तशय्यासन उत्कृष्ट होय है. भावार्थ—आसन कहिये बैठनेका स्थान अर शय्या कहिये सोवनेका स्थान, आदि शब्दतैं मलमूत्रादि क्षेपनेका स्थान, ऐसा होय जहां रागद्वेष न उपजै अर वीतरागता वधै ऐसा एकान्त स्थानक होय तहां बैठै सोवै. जातैं मुनिनिकौं अपना अपना स्वरूप साधना है इन्द्रियविषय सेवने नाहीं है तातैं एकान्त स्थानक कहा है ॥ ४४५ ॥

पूजादिसु णिरवेक्खो संसारसरीरभोगणिव्विण्णो ।
अब्भंतरतवकुसलो उवसमसीलो महासंतो ॥ ४४६ ॥
जो णिवसेदि मसाणे वणगहणे णिज्जणे महाभीमे ।

अण्णत्थ वि एयंते तस्स वि एदं तवं होदि ॥४४७॥

भावार्थ—जो महामुनि पूजा आदिविषै तौ निरपेक्ष है अपनी पूजा महिमादिक नाहीं चाहै है, बहुरि स्वाध्याय ध्यान आदि जे अंतरंग तप तिनिविषै प्रवीण है, ध्यानाध्ययनका निरन्तर अभ्यास राखे है, बहुरि उपशमशील कहिये मंद कषायरूप शान्तपरिणाम ही है स्वभाव जाका, बहुरि महा पराक्रमी है, क्षमादिपरिणाम युक्त है, ऐसा महामुनि मसाण भूमिविषै तथा गहन वनविषै तथा जहां लोक न प्रवर्त्तै, ऐसे निर्जनस्थानविषै तथा महाभयानक उद्यानविषै तथा अन्य भी ऐसा एकान्त स्थानविषै जो वसै ताके निश्चय यह विविक्तशय्यासन तप होय है. भावार्थ—महामुनि विविक्तशय्यासन तप करै है सो ऐसें एकान्त स्थानकमें सोवे बैठे है जहां चित्तके क्षोभके करनेहारे कछू भी पदार्थ न होय. ऐसे सूने घर गिरिकी गुफा वृक्षके मूल तथा स्वयमेव गृहस्थनिके बणाये उद्यानमें वस्तिकादिक देव मन्दिर तथा मसाणभूमि इत्यादिक एकांत स्थानक होंय तहां ध्यानाध्ययन करे है जातैं देहतैं तो निर्ममत्व है विषयनितैं विरक्त है, अपने आतमस्वरूपविषै अनुरक्त है सो मुनि विविक्तशय्यासनतपसंयुक्त है ॥ ४४६-४४७ ॥

आगें कायक्लेशतपकूं कहै हैं,—

दुस्सहउवसग्गजई आतावणसीयवायखिण्णो वि ।
जो ण वि खेदं गच्छदि कायकिलेसो तवो तस्स ॥

भावार्थ–जो मुनि दुःसह उपसर्गका जीतनहारा आताप सीत वातकरि पीडित होय खेदकूं प्राप्त न होय, चित्तमें क्षोभ क्लेश न उपजै तिस मुनिके कायक्लेश नामा तप होय है। भावार्थ–महामुनि ग्रीष्मकालमें तौ पर्वतके शिखर आदि विषै जहां सूर्यके किरणनिका अत्यन्त आताप होय तलैं भूमि शिलादिक तप्तायमान होय तहां आतापनयोग धारे हैं, बहुरि शीतकालमें नदी आदिके तटविषै चोडे जहां अति शीत पडै दाहतें वृक्ष भी दाहे जांय तहां खडे रहैं. बहुरि चतुर्मासमें वर्षा वरसै प्रचंड पवन चालै दंशमशक काटैं ऐसे समय वृक्षके तले योग धारे हैं. तथा अनेक विकट आसन करे हैं ऐसें अनेक कायक्लेशके कारण मिलावे हैं अर साम्यभावतें चिगै नाहीं हैं. जातें अनेक प्रकारके उपसर्गके जीतनहारे हैं तातें चित्तविषै जिनके खेद नाहीं उपजै है. अपने स्वरूपके ध्यानमें लगे रहैं तिनके कायक्लेशनामा तप होय है. जिनके काय तथा इंद्रियनिसं ममत्व होय है तिनिके चित्तमें क्षोभ हो है ए मुनि सर्वतैं निस्पृह वर्त्तैं हैं तिनकूं काहेका खेद होय ? ऐसें छहप्रकार वाह्यतपका निरूपण किया,

आगें छहप्रकार अंतरंग तपका व्याख्यान करै हैं तहां प्रथम ही प्रायश्चित्तनामा तपकूं कहै हैं,—

दोसं ण करेदि सयं अण्णं पि ण कारएदि जो तिविहं।
कुव्वाणं पि ण इच्छइ तस्स विसोही परा होदि ४४९

भावार्थ–जो मुनि आप दोष न करै अन्य पास दोष

न करावै दोष करता होय ताकूं इष्ट भला न जाणै तिसकै उत्कृष्ट विशुद्धि होय है. भावार्थ—इहां विशुद्धि नाम प्रायश्चित्तका है जातैं 'प्रायः' शब्दकरि तौ प्रकृष्ट चारित्रका ग्रहण है ऐसा चारित्र जाकै होय सो 'प्रायः' कहिये साधु लोक ताका चित्त जिस कार्यविषै होय है सो प्रायश्चित्त कहिये, सो आत्माकै विशुद्धि करै सो प्रायश्चित्त है वहुरि दूसरा अर्थ ऐसा भी है जो प्रायः नाम अपराधका है ताका चित्त कहिये शुद्ध करना सो भी प्रायश्चित्त कहिये. ऐसैं पूर्वे कीये अपराधतैं जातैं शुद्धता होय सो प्रायश्चित्त है. ऐसैं जो मुनि मनवचनकाय कृतकारितअनुमोदनाकरि दोष नाहीं लगावै ताकै उत्कृष्ट विशुद्धता होय. यही प्रायश्चित्त नामा तप है ॥ ४४९ ॥

अह कहवि पमादेण य दोसो जदि एदि तं पि पयडेदि
णिद्दोससाहुमूले दसदोसविवज्जिदो होदुं ॥ ४५० ॥

भाषार्थ—अथवा कोई प्रकार प्रमादकरि अपने चारित्रमें दोष आया होय तौ ताकूं निर्दोष जे साधु आचार्य उनकै निकट दश दोषवर्जित होयकरि प्रकट करै आलोचना करै. भावार्थ—अपने चारित्रमें दोष प्रमादकरि लग्या होय तौ

---

१ यत्याचारोक्तं दशप्रकारं प्रायश्चित्तं ।

१ आलोयण पडिकमणं उभय विवेगो तहा विओसग्गो ।
तवछेदो मूलं पि य परिहारो चेव सद्दहणं ॥

आचार्य पास जाय दशदोषवर्जित आलोचना करै. ते प्रमा-द–इन्द्रिय ५ निन्द्रा १ कषाय ४ विकथा ४ स्नेह १ ये पांच हैं तिनके पंदरह भेद हैं भंगानिकी अपेक्षा बहुत भेद होय हैं तिनिकरि दोष लागै है. बहुरि आलोचनाके दश दोष हैं तिनिके नाम आकंपित १ अनुमानित २ बादर ३ सूक्ष्म ४ दृष्ट ५ प्रच्छन्न ६ शब्दाकुलित ७ बहुजन ८ अव्यक्त ९ तत्सेवी १० ए दश दोष हैं. तिनिका अर्थ ऐसा जो आचार्यकूं उपकरणादि देकरि आपकी करुणा उपजाय आलोचना करै जो ऐसैं कीये प्रायश्चित्त थोडा देसी, ऐसा विचारै तौ यह आकंपितदोष है. बहुरि वचन ही करि आचार्यनिकी बडाई आदिकरि आलोचना करै अभिप्राय ऐसा राखै जो आचार्य मोसूं प्रसन्न रहै तौ प्रायश्चित्त थोडा बतावै, ऐसैं अनुमानित दोष है. बहुरि प्रत्यक्ष दृष्टदोष होय सो कहै अदृष्ट न कहै सो दृष्टदोष है. बहुरि स्थूल बडा दोष तौ कहै सूक्ष्म न कहै सो बादरदोष है. बहुरि सूक्ष्म दोष ही कहै बादर न कहै यह जनावै यानैं सूक्ष्म ही कह दिया सो बादर काहेकूं छिपावै सो सूक्ष्मदोष है. बहुरि छिपायकरि ही कहै कोई अन्यनैं अपना दोष कह्या है तब

---

(१) विकहा तहा कषाया इंदिय णिद्दा तहेव पणओ य।
चउ चउ पण मेगेगं होदि पमादा हु पण्णरसा ॥ १ ॥

[२] आकंपिय अणुमाणिय जं दिट्ठं बादरं च सुहमं च।
छण्णं सद्दाउलियं बहुजणमव्वत्त तस्सेवी ॥ २ ॥

कहै ऐसा ही दोष मोकूं लाग्या है ताका नाम प्रकट न करै सो प्रच्छन्न दोष है. वहुरि वहुत शब्दका कोलाहलविषै दोष कहै अभिप्राय ऐसा कोई और न सुणै तहां शब्दाकुलित दोष है. वहुरि गुरु पासि आलोचनाकरि फेरि अन्य गुरु-पासि आलोचना करै अभिप्राय ऐसा जो याका प्रायश्चित्त देखें, अन्य गुरु कहा वतावै, ऐसैं वहुजननामा दोष है. व-हुरि जो दोष व्यक्त होय सो कहै अभिप्राय ऐसा—जो यह दोष छिपाया छिपै नाहीं कह्या ही चाहिये. सो अव्यक्त दोष है. वहुरि अन्य मुनिनै लाग्या दोषकी गुरुपासि आलो-चनाकरि प्रायश्चित्त लिया देखकरि तिस समान आपकूं दोष लाग्या होय ताकी आलोचना गुरुपासि न करै आपही प्रा-यश्चित्त लेवै, अभिप्राय दोष प्रगटकरनेका न होय सो तत्-सेवी दोष है. ऐसैं दशदोषरहित सरलचित्त होय बालककी ज्यों आलोचना करै ॥ ४५० ॥

जं किंपि तेण दिण्णं तं सव्वं सो करेदि सद्धाए।
णो पुण हियए संकदि किं थोवं किमु वहुवं वा ४५१

भाषार्थ—दोषकी आलोचना करे पीछैं जो किछू आचा-र्य प्रायश्चित्त दीया तिस सर्व हीकूं श्रद्धाकरि करै. हृदय-विषै ऐसैं शंका संदेह न करै जो ए प्रायश्चित्त दिया सो थोडा है कि बहुत है. भावार्थ—प्रायश्चित्तके तत्त्वार्थ सूत्रमें नव भेद कहे हैं. आलोचन प्रतिक्रमण तदुभय विवेक व्यु-त्सर्ग तपश्छेद परिहार उपस्थापना. तहां दो

दोषका यथावत् कहना, प्रतिक्रमण–दोषका मिथ्या करावना, तदुभय–आलोचन प्रतिक्रमण दोऊ करावना, विवेक–आगामी त्याग करावना, व्युत्सर्ग–कायोत्सर्ग करावना, तप, छेद कहिये दीक्षा छेदन, बहुत दिनके दीक्षितकूं थोड़े दिनका करना, परिहार–संघबाह्य करना, उपस्थापना फेरि नवा सिरतैं दीक्षा देना. ऐसैं नव हैं इनिके भी अनेक भेद हैं. तहां देश काल अवस्था सामर्थ्य दूषणका विधान देखि यथाविधि आचार्य प्रायश्चित्त देहैं ताकूं श्रद्धाकरि अंगीकार करै तामें संशय न करै ॥ ४५१ ॥

पुणरवि काउं णेच्छदि तं दोसं जइवि जाइ सयखंडं ।
एवं णिच्छयसहिदो पायच्छित्तं तवो होदि ॥ ४५२ ॥

भावार्थ–लाग्यादोषका प्रायश्चित्त लेकरि तिस दोषकूं फिरा न चाहै जो आपके शतखंड भी होय तौ न करै ऐसैं निश्चय सहित प्रायश्चित्त नामा तप होय है. भावार्थ–ऐसा दिढचित्त करै जो लाग्या दोषकों फेरि अपना शरीरके शतखंड होय जाय तौऊ सो दोष न लगावै सो प्रायश्चित्त तप है ॥ ४५२ ॥

जो चिंतइ अप्पाणं णाणसरूवं पुणो पुणो णाणी ।
विकहादिविरत्तमणो पायच्छित्तं वरं तस्स ॥ ४५३ ॥

भावार्थ–जो ज्ञानी मुनि आत्माकूं ज्ञानस्वरूप फेरि फेरि वारंवार चिंतवन करै, बहुरि विकथादिक प्रमादनितैं

विरक्त हूवा संता ज्ञानहीकूं निरन्तर सेवै, ताकै श्रेष्ठप्रायश्चित्त होय. भावार्थ—निश्चय प्रायश्चित्त यह है जामें सर्वप्रायश्चित्तके भेद गर्भित हैं जो प्रमादतैं रहित होय अपना शुद्ध ज्ञानस्वरूप आत्माका ध्यान करना यातैं सर्व पापनिका प्रलय होय है ऐसैं प्रायश्चित्तनामा अभ्यन्तर तपका भेद कह्या ॥ ४५३ ॥

आगें विनय तपकौं गाथा तीनिकरि कहै हैं,—

विणयो पंचपयारो दंसणणाणे तहा चारित्ते य ।
बारसभेयम्मि तवे उवयारो बहुविहो णेओ ॥ ४५४ ॥

भाषार्थ—विनय पांच प्रकार है दर्शनविषै ज्ञानविषै तथा चारित्रविषै बारह भेदरूप तपविषै अर उपचार विनय सो यह बहुत प्रकार जानना ॥ ४५४ ॥

दंसणणाणचरित्ते सुविसुद्धो जो हवेइ परिणामो ।
बारसभेदे वि तवे सो च्चिय विणओ हवे तेसिं ४५५

भाषार्थ—दर्शन ज्ञान चारित्र इनिविषै बहुरि बारहभेदरूप तपकेविषै जो विशुद्ध परिणाम होय सो ही तिनिका विनय है. भावार्थ—सम्यग्दर्शनके शंकादिक अतीचार रहित परिणाम सो दर्शनका विनय है. बहुरि ज्ञानका संशयादिरहित परिणाम अष्टांग अभ्यास करना सो ज्ञानविनय है. बहुरि चारित्रकौं अहिंसादिक परिणामकरि अतीचाररहित पालना सो चारित्रका विनय है. बहुरि तैसैं ही तपके भेद-

निकौं निरखि देखि निर्दोष पालने सो तपका विनय है ४५५

रयणत्तयजुत्ताणं अणुकूलं जो चरेदि भत्तीए ।
भिच्चो जह रायाणं उवयारो सो हवे विणओ ४५६

भाषार्थ—जो रत्नत्रय सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रका धारक मुनिनिके अनुकूल भक्तिकरि आचरण करै जैसे राजाके चाकर राजाके अनुकूल प्रवर्त्ते हैं तैसें साधुनिके अनुकूल प्रवर्त्तै सो उपचार विनय है. भावार्थ—जैसें राजाके चाकर किंकर लोक राजाके अनुकूल प्रवर्त्तैं हैं, ताकी आज्ञा मानैं, हुकम होय सो करैं तथा प्रत्यक्ष देखि उठि खडा होय, सन्मुख होय. हाथहू जोडैं, प्रणाम करैं, चालै तब पीछै होय चालैं, ताके पोसाख आदि उपकरण संवारैं. तैसें ही मुनिनिकी भक्ति मुनिनिका विनय करै तिनकी आज्ञा मानैं प्रत्यक्ष देखै तब उठि सन्मुख होय हाथ जोडै प्रणाम करै चलैं तब पीछै होय चालै उपकरण संवारै इत्यादिक तिनका विनय करै सो उपचार विनय है ॥ ४५६ ॥

आगें वैयावृत्य तपकौं दोय गाथाकरि कहै हैं,—

जो उवयरदि जदीणं उवसग्गजराइखीणकायाणं ।
पूजादिसु णिरवेक्खं विज्जावच्चं तवो तस्स ॥ ४५७ ॥

भाषार्थ—जो मुनि यति उपसर्गकरि पीडित होय तिनिका तथा जरा रोगादिककरि क्षीणकाय होय तिनिका अपनी चेष्टातैं तथा उपदेशतैं तथा अल्प वस्तुतैं उपकार करैं

ताकै वैयावृत्य नामा तप होय है. सो कैसैं करै आप अपने पूजा महिमा आदिविषै अपेक्षा बांछातैं रहित जैसैं होय तैसैं करै. भावार्थ–निस्पृह हूवा मुनिनिकी चाकरी करै सो वैयावृत्य है. तहां आचार्य उपाध्याय तपस्वी शैक्षय ग्लान गण कुल संघ साधु मनोज्ञ ये दश प्रकारके यति वैयावृत्य करने योग्य कहे हैं. तिनिका यथायोग्य अपनी शक्तिसारू वैयावृत्य करै ॥ ४५७ ॥

जो वावरइ सरूवे समदमभावम्मि सुद्धिउवजुत्तो ।
लोयववहारविरदो विज्जावच्चं परं तस्स ॥ ४५८ ॥

भाषार्थ–जो मुनि शमदमभावरूप जो अपना आत्मस्वरूप ताके विषै शुद्ध उपयोगकरि युक्त हूवा प्रवर्त्तै अर लोकव्यवहार बाह्य वैयावृत्यसूं विरक्त होय, ताकै उत्कृष्ट निश्चय वैयावृत्य होय है. भावार्थ—जो मुनि सम कहिये राग द्वेष रहित साम्यभाव, बहुरि दम कहिये इन्द्रियनिकौं विषयनिविषै न जानै देना, ऐसा जो अपना आत्मस्वरूप ताविषै लीन होय, ताकै लोकव्यवहाररूप बाह्य वैयावृत्य काहेकौं होय ? ताकै निश्चय वैयावृत्य ही होय है. शुद्धोपयोगी मुनिनिकी यह रीति है ॥ ४५८ ॥

आगैं स्वाध्याय तपकौं छह गाथानिकरि कहै हैं;——

परतत्तीणिरवेक्खो दुट्ठवियप्पाण णासणसमत्थो ।
तच्चविणिच्छयहेदू सज्झाओ ज्झाणसिद्धियरो ॥४५९॥

भाषार्थ–जो मुनि परकी निन्दाविषै निरपेक्ष होय बां-

छारहित होय है. बहुरि दुष्ट जे मनके खोटे विकल्प तिनिके नाश करनेकूं समर्थ होय ताकै तत्त्वके निश्चय करनेका कारण अर ध्यानकी सिद्धि करनेवाला स्वाध्यायनामा तप होय है. भावार्थ—जो परकी निंदा करनेविषै परिणाम राखै अर आर्त्तरौद्रध्यानरूप खोटे विकल्प मनमें चिंतवन कीया करै ताकैं शास्त्रनिका अभ्यासरूप स्वाध्याय कैसैं होय तातैं तिनिकौं छोडि स्वाध्याय करै ताकै तत्त्वका निश्चय होय अर धर्म्यशुक्लध्यानकी सिद्धि होय, ऐसा स्वाध्याय तप है ॥ ४५९ ॥

पूजादिसु णिरवेक्खो जिणसत्थं जो पढेइ भत्तीए ।
कम्ममलसोहणट्ठं सुयलाहो सुहयरो तस्स ॥ ४६० ॥

भाषार्थ—जो मुनि अपनी अपनी पूजा महिमा आदिविषै तौ निरपेक्ष होय, वांछारहित होय अर भक्तिकरि जिनशास्त्र पढै, बहुरि कर्ममलके सोधनेके अर्थ पढै ताकै श्रुतका लाभ सुखकारी होय. भावार्थ—जो पूजा महिमा आदिके अर्थ शास्त्रकूं पढै है ताकैं शास्त्रका पढना सुखकारी नाहीं. अपने कर्मक्षयके निमित्त जिनशास्त्रनिहीकौं पढै ताकै सुखकारी है ॥ ४६० ॥

जो जिणसत्थं सेवइ पंडियमानी फलं समीहंतो ।
साहम्मियपडिकूलो सत्थं पि विसं हवे तस्स ॥ ४६१

भाषार्थ—जो पुरुष जिनशास्त्र तौ पढै है अर आपकै

पूजा लाभ सत्कारकूं चाहै है अर साधर्मी सम्यग्दृष्टी जैनी जननितैं प्रतिकूल है सो पंडितंमन्य है. पंडित तौ नाहीं अर आपकूं पंडित मानै ताकूं पंडितंमन्य कहिये सो ऐसाकै सो ही शास्त्र विषरूप परिणमै है. भावार्थ—जैनशास्त्र भी पढि-करि तीव्रकषायी भोगाभिलाषी होय जैनीनितैं प्रतिकूळ रहै सो ऐसा पंडितंमन्यके शास्त्र ही विष भया कहिये. जो यह मुनि भी होय तौ भेषी पाषंडी ही कहिये ॥ ४६१ ॥

जो जुद्धकामसत्थं रायदोसेहिं परिणदो पढइ ।
लोयावंचणहेदुं सज्झाओ णिप्फलो तस्स ॥ ४६२ ॥

भाषार्थ—जो पुरुष युद्धके शास्त्र कामकथाके शास्त्र रागद्वेष परिणामकरि लोकनिकौं ठगनेके अर्थ पढै है ताके स्वाध्याय निष्फल है. भावार्थ—जो पुरुष युद्धके, कामकौतूहलके, मंत्र ज्योतिष वैद्यक आदि लौकिक शास्त्र लोकनिके ठगनेकूं पढै है, ताकैं काहेका स्वाध्याय है. इहां कोई पूछै मुनि अर पंडित तौ सर्व ही शास्त्र पढै हैं ते काहेकौं पढै हैं. ताका समाधान—रागद्वेषकरि अपने विषय आजीविका पोषनेकं लोकनिके ठगनेकौं पढै ताका निषेध है. बहुरि जो धर्मार्थी हूवा कछू प्रयोजन जानि इनि शास्त्रनिकौं पढै, ज्ञान बढावना, परका उपकार करना, पुण्यपापका विशेष निर्णय करना, स्वपर मतकी चरचा जानना, पंडित होय तो धर्मकी प्रभावना हो, जो जैन मतमें ऐसे पंडित हैं इत्यादिक प्रयो-

जन है. दुष्ट अभिप्रायतैं पढै ताका निषेध है ॥ ४६२ ॥

जो अप्पाणं जाणदि असुइसरीरादु तच्चदो भिण्णं ।
जाणगरूवसरूवं सो सत्थं जाणदे सव्वं ॥ ४६३ ॥

भाषार्थ–जो मुनि अपने आत्माकौं इस अपवित्र शरीरतैं भिन्न ज्ञायकरूप स्वरूप जाणै सो सर्व शास्त्र जाणै. भावार्थ–जो मुनि शास्त्र अभ्यास अल्प भी करै है अर अपना आत्माका रूप ज्ञायक देखन जाननहारा इस अशुचि शरीरतैं भिन्न शुद्ध उपयोगरूप होय जाणै है, सो सर्व ही शास्त्र जानै है. अपना स्वरूप न जान्या अर बहुत शास्त्र पढे तौ कहा साध्य है? ॥ ४६३ ॥

जो ण विजाणदि अप्पं णाणसरूवं सरीरदो भिण्णं ।
सो ण विजाणदि सत्थं आगमपाढं कुणंतो वि ४६४

भाषार्थ–जो मुनि अपने आत्माकौं ज्ञानस्वरूप शरीरतैं भिन्न नाहीं जानै है सो आगमका पाठ करै तौऊ शास्त्रकौं नाहीं जानै है. भावार्थ–जो मुनि शरीरतैं भिन्न ज्ञानस्वरूप आत्माकौं नाहीं जानै है सो वहुत शास्त्र पढै है तौऊ विना पढ्या ही है. शास्त्रके पढनेका सार तौ अपना स्वरूप जानि रागद्वेषरहित होना था सो पढिकरि भी ऐसा न भया तो काहेका पढया? अपना स्वरूप जानि ताविषै स्थिर होना सो निश्चयस्वाध्यायतप है. वाचना पृच्छना अनुप्रेक्षा आम्नाय धर्मोपदेश ऐसैं पांचप्रकार व्यवहारस्वाध्याय है सो

यह व्यवहार निश्चयके अर्थ होय सो व्यवहार भी सत्यार्थ है विना निश्चय व्यवहार थोथा है ॥ ४६४ ॥

आगें व्युत्सर्ग तपकों कहै हैं,—

जल्लमललित्तगत्तो दुस्सहवाहीसु णिप्पडीयारो ।
मुहधोवणादिविरओ भोयणसेज्जादिणिरवेक्खो ६५
ससरूवचिंतणरओ दुज्जणसुयणाण जो हु मज्झत्थो ।
देहे वि णिम्ममत्तो काओसग्गो तवो तस्स ॥ ६६ ॥

भाषार्थ—जो मुनि जल्ल कहिये पसेव अर मल तिनि करि तौ लिप्त शरीर होय, बहुरि सह्या न जाय ऐसा भी तीव्र रोग आवै, ताका प्रतीकार न करै इलाज न करै, मुखका धोवणा आदि शरीरका संस्कार न करै भोजन अर सेज्या आदिकी वांछा न करै, बहुरि अपने स्वरूप चितवनविषै रत होय, लीन होय, बहुरि दुर्जन सज्जनविषै मध्यस्थ होय, शत्रु मित्र बराबर जानै, बहुत कहा कहिये देहविषै भी ममत्वरहित होय, ताकै कायोत्सर्ग नामा तप होय है. मुनि कायोत्सर्ग करै है, तब सर्व बाह्य अभ्यंतर परिग्रह त्यागकरि सर्व बाह्य आहारविहारादिक क्रियासूं रहित होय कायसूं ममत्व छांडि अपना ज्ञानस्वरूप आत्माविषै रागद्वेषरहित शुद्धोपयोगरूप होय लीन होय है, तिस काल जो अनेक उपसर्ग आवो, रोग आवो, कोई शरीरकों काटि ही डारो, स्वरूपतैं चिगै नाहीं, काहूसैं रागद्वेष नाहीं उपजावै है ताकैं कायोत्सर्ग तप होय है ॥ ४६५–४६६ ॥

जो देहपालणपरो उवयरणादीविसेससंसत्तो।
बाहिरववहाररओ काओसग्गो कुदो तस्स ॥ ४६७ ॥

भाषार्थ—जो मुनि देहके पालनेविषै तत्पर होय, उपकरण आदिकविषै विशेष संसक्त होय, बहुरि बाह्य व्यवहार लोकरंजन करनेविषै रत होय, तत्पर होय ताकै कायोत्सर्ग तप काहेतैं होय ? भावार्थ—जो मुनि बाह्य व्यवहार पूजा प्रतिष्ठा आदि तथा ईर्यासमिति आदि क्रिया ताकौं लोक जानैं यह मुनि है ऐसी क्रियामें तत्पर होय अर देहका आहारादिकतैं पालना उपकरणादिकका विशेष संवारना शिष्यजनादिकतैं बहुत ममता राखि प्रसन्न होना इत्यादिकमें लीन होय अर अपना स्वरूपका यथार्थ अनुभव जाकै नाहीं तामें कबहूं लीन होय ही नाहीं कायोत्सर्ग भी करै तौ खड़ा रहना आदि बाह्य विधान करले तौ ताकै कायोत्सर्ग तप न कहिये निश्चय विना बाह्यव्यवहार निरर्थक है ॥ ४६७ ॥

अंतो मुहुत्तमेत्तं लीणं वत्थुम्मि माणसं णाणं।
ज्झाणं भण्णइ समए असुहं च सुहं च तं दुविहं ६८

भाषार्थ—जो मनसंबंधी ज्ञान वस्तुविषै अंतर्मुहूर्तमात्र लीन होय एकाग्र होय सो सिद्धान्तविषै ध्यान कह्या है सो शुभ बहुरि अशुभ ऐसैं दोय प्रकार कह्या है. भावार्थ—ध्यान परमार्थतैं ज्ञानका उपयोग ही है जो ज्ञानका उपयोग एक ज्ञेय वस्तुमें अन्तर्मुहूर्तमात्र एकाग्र ठहरै सो ध्यान है सो शुभ भी है अर अशुभ भी है ऐसैं दोय प्रकार है ॥ ४६८ ॥

आगैं शुभ अशुभध्यानके नाम स्वरूप कहै हैं,—

असुहं अट्ट रउद्दं धम्मं सुक्कं च सुहयरं होदि।
आदं तिव्वकसायं तिव्वतमकसायदो रुद्दं ॥ ४६९ ॥

भाषार्थ–आर्त्तध्यान रौद्रध्यान ए दोऊ तौ अशुभध्यान हैं बहुरि धर्मध्यान अर शुक्लध्यान ए दोऊ शुभ अर शुभतर हैं तिनिमें आदिका आर्त्तध्यान तौ तीव्र कषायतैं होय है अर रौद्रध्यान अति तीव्र कषायतैं होय है ॥ ४६९ ॥

मंदकसायं धम्मं मंदतमकसायदो हवे सुक्कं।
अकसाए वि सुयड्ढे केवलणाणे वि तं होदि ॥४७०॥

भाषार्थ–धर्म ध्यान है सो मंदकषायतैं होय है. बहुरि शुक्लध्यान है सो अतिशयकरि मंदकषायतैं होय महामुनि श्रेणी चढै तिनिकै होय है. अर कषायका अभाव भये श्रुतज्ञानी उपशांतकषाय क्षीणकषाय तथा केवलज्ञानी सयोगी अयोगी जिनकै भी कहिये है. भावार्थ–धर्मध्यान तौ व्यक्तरागसहित पंच परमेष्ठी तथा दशलक्षणस्वरूप धर्म तथा आत्मस्वरूपविषै उपयोग एकाग्र होय है तातैं याकूं मन्दकषायसहित है ऐसा कह्या है. बहुरि शुक्लध्यान है सो उपयोगमें व्यक्तराग तौ नाहीं अर अपने अनुभवमें न आवै ऐसा सूक्ष्मराग सहित श्रेणी चढै है तहां आत्मपरिणाम उज्वल होय हैं यातैं शुचि गुणके योगतैं शुक्ल कह्या है. ताकूं मन्दतमकषाय कहिये अतिशय मंदकषायतैं होय है ऐसा कह्या है तथा कषायके अभाव भये भी कह्या है ॥ ४७० ॥

आगें आर्त्तध्यानकूं कहै हैं,—

दुक्खयरविसयजोए केण इमं चयदि इदि विचिंतंतो।
चेट्ठदि जो विक्खित्तो अट्टं ज्झाणं हवे तस्स ॥४७१॥

मणहरविसयविजोगे कह तं पावेमि इदि वियप्पो जो।
संतावेण पयट्टो सो चिय अट्टं हवे ज्झाणं ॥ ४७२ ॥

भाषार्थ—जो पुरुष दुःखकारी विषयका संयोग होते ऐसा चिंतवन करै जो यह मेरे कैसे दूर होय? बहुरि तिसके संयोगतैं विक्षिप्तचित्त भया संता चेष्टा करै, रुदनादिक करै तिसके आर्त्तध्यान होय है. बहुरि जो मनोहर प्यारी विषय सामग्रीका वियोग होतैं ऐसा चिंतवन करै जो ताहि मैं कैसें पाऊं, ताके वियोगतैं संतापरूप दुःखरूप प्रवर्त्तै, सो भी आर्त्तध्यान है. भावार्थ—आर्त्तध्यान सामान्य तौ दुःखक्लेश रूप परिणाम है. तिस दुःखमें लीन रहै अन्य किछू चेत रहै नाहीं ताकूं दोय प्रकारकरि कह्या. प्रथम तौ दुःखकारी सामग्रीका संयोग होय ताकूं दूरि करनेका ध्यान रहै. दूसरा इष्ट सुखकारी सामग्रीका वियोग होय ताके मिलावनेका चिंतवन ध्यान रहै सो आर्त्तध्यान है. अन्य ग्रंथनिमें च्यारि भेद कहे हैं—इष्टवियोगका चिंतवन, अनिष्टसंयोगका चितवन, पीडाका चितवन, निदानबंधका चितवन. सो इहां दोय कहे तिनिमें ही अंतर्भाव भये. अनिष्टसंयोगके दूरि करनेमें तौ पीडा चितवन आय गया, अर इष्टके मिलावनेकी वांछा

में निदानबंध आयगया. ये दोऊ ध्यान अशुभ हैं पापबंधकूं करै हैं धर्मात्मा पुरुषनिके त्यजने योग्य हैं ॥ ४७२ ॥

आगें रौद्रध्यानकौं कहै हैं,—

हिंसाणंदेण जुदो असच्चवयणेण परिणदो जो दु ।
तत्थेव अथिरचित्तो रुद्दं ज्झाणं हवे तस्स ॥ ४७३ ॥

भाषार्थ—जो पुरुष हिंसाविषै आनन्दकरि संयुक्त होय. बहुरि असत्य वचन करि परिणमता रहै तहां ही विक्षिप्तचित्त रहै तिसकै रौद्रध्यान होय है. भावार्थ—हिंसा जो जीवनिका घात तिसकौं करि अति हर्ष मानै, शिकार आदिमें आनन्दतैं प्रवर्त्तै, परके विघ्न होय, तब अति संतुष्ट होय बहुरि झूठ बोलि करि अपना प्रवीणपणा मानै, परके दोषनिकौं निरन्तर देखै, कहै तामें आनंद मानै ऐसैं ए दोय भेद रौद्रध्यानके कहे ॥ ४७३ ॥

आगें दोय भेद और कहै हैं,—

परविसयहरणसीलो सगीयविसयेसु रक्खणे दक्खो ।
तग्गयचित्ताविट्ठो णिरंतरं तं पि रुद्दं पि ॥ ७४ ॥

भाषार्थ—जो पुरुष परकी विषय सामग्रीकूं हरणेका स्वभावसहित होय, बहुरि अपनी विषय सामग्रीकी रक्षा करणेविषै प्रवीण होय, तिनि दोऊ कार्यनिविषै लीनचित्त निरन्तर राखै, तिस पुरुषकै यह भी रौद्रध्यान ही है. भावार्थ, परकी सम्पदाकौं चोरनेविषै प्रवीण होय चोरीकरि हर्ष मानै

बहुरि अपनी विषय सामग्रीकूं राखने का अति यत्न करै ताकी रक्षाकरि आनन्द मानै ऐसैं ये दोय भेद रौद्रध्यानके भये. ऐसैं ये चारो भेदरूप रौद्रध्यान अतितीव्र कषायके योगतैं होय हैं, महापाप रूप हैं. महापापबन्धकूं कारण हैं. सो धर्मात्मा पुरुष ऐसे ध्यानकौं दूरिहीतैं छोडै हैं. जेते जगतकौं उपद्रवके कारण हैं तेते रौद्रध्यानयुक्त पुरुषतैं बणै है. जातैं पापकरि हर्षमानै सुख मानै ताकौ धर्मका उपदेश भी नाहीं लागै है. अति प्रमादी हूवा अचेत पापहीमें मस्त रहै है ॥ ४७४ ॥

आगें धर्मध्यानकूं कहै हैं,—

विण्णिवि असुहे ज्झाणे पावणिहाणे य दुक्खसंताणे।
णच्चा दूरे वज्जह धम्मे पुण आयरं कुणहु ॥ ७५ ॥

भाषार्थ—हे भव्य जीव हो ! आर्त्त रौद्र ये दोऊ ही ध्यान अशुभ हैं पापके निधान दुःखके संतान जाणिकरि दूरिहीतैं छोडौ, बहुरि धर्मध्यानविषै आदर करौ. भावार्थ—आर्त्तरौद्र दोऊ ही ध्यान अशुभ हैं अर पापके भरे हैं अर दुःखहीकी संतति इनिमें चली जाय है. तातैं छोडिकरि धर्मध्यान करनेका श्रीगुरुनिका उपदेश है ॥ ४७५ ॥

आगें धर्मका स्वरूप कहै हैं,—

धम्मो वत्थुसहावो खमादिभावो य दसविहो धम्मो।
रयणत्तयं च धम्मो जीवाणं रक्खणं धम्मो ॥ ७६ ॥

भाषार्थ—[illegible] स्वभाव सो धर्म है. जैसें जीवका द-

र्शन ज्ञान स्वरूप चैतन्यस्वभाव सो याका एही धर्म है. ब-हुरि क्षमादिक भाव दश प्रकार सो धर्म हैं. बहुरि रत्नत्रय सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित्र सो धर्म है. बहुरि जीवनिकी रक्षा करना सो भी धर्म है. भावार्थ—अभेदविवक्षाकरि तौ वस्तुका स्वभाव सो धर्म है जीवका चैतन्य स्वभाव सो ही याका धर्म है. बहुरि भेद विवक्षाकरि दशलक्षण उत्तम क्षमादिक तथा रत्नत्रयादिक धर्म है. बहुरि निश्चयतैं तौ अपने चैतन्यकी रक्षा विभावपरिणतिरूप न परिणमना अर व्यवहारकरि पर-जीवकौं विभावरूप दुःख क्लेशरूप न करना ताहीका भेद जीवकौं प्राणांत न करना यह धर्म है ॥ ४७६ ॥

आगें धर्मध्यान कैसे जीवकै होय सो कहै हैं,—

धम्मे एयग्गमणो जो ण हि वेदेइ इंदियं विसयं ।
वेरग्गमओ णाणी धम्मज्झाणं हवे तस्स ॥ ७७ ॥

भावार्थ—जो पुरुष ज्ञानी धर्मविषैं एकाग्रमन होय वर्त्तै, बहुरि इन्द्रियनिके विषयनिकौं न वेदै. बहुरि वैराग्यमयी होय, तिस ज्ञानीकै धर्मध्यान होय है. भावार्थ—ध्यानका स्व-रूप एक ज्ञेयकेविषै ज्ञानका एकाग्र होना है. जो पुरुष ध-र्मविषै एकाग्रचित्त करै तिस काल इन्द्रिय विषयनिकौं न वेदै ताकै धर्मध्यान होय है. याका मूलकारण संसारदेहभो-गसूं वैराग्य है विना वैराग्यके धर्ममें चित्त थंभै नाहीं ॥७७॥

सुविसुद्धरायदोसो बाहिरसंकप्पवज्जिओ धीरो ।

एयग्गमणो संतो जं चिंतइ तं पि सुहज्झाणं ॥७८॥

भावार्थ—जो पुरुष रागद्वेषतैं रहित हूवा संता बाह्यके संकल्पकरि वर्जित हूवा धीरचित्त एकाग्रमन हूवा सन्ता जो चितवन करै सो भी शुभध्यान है. भावार्थ—जो रागद्वेषमयी वा वस्तुसंबन्धी संकल्प छोडि एकाग्रचित्त होय काहूका चलाया न चलै ऐसा होय चितवन करे सो भी शुभ ध्यान है॥ ४७८ ॥

ससरूवसमुब्भासो णट्ठममत्तो जिदिंदिओ संतो ।
अप्पाणं चिंतंतो सुहज्झाणरओ हवे साहू ॥ ७९ ॥

भावार्थ—जो साधु अपने स्वरूपका है समुद्भास कहिये प्रगट होना जाकै ऐसा हूवा संता, तथा परद्रव्यविषै नष्ट भया है ममत्व भाव जाकै ऐसा हूवा संता, तथा जीते हैं इन्द्रिय जानै, ऐसा हूवा संता आत्माकौं चितवन करता सन्ता प्रवर्त्तै सो साधु शुभध्यानकेविषैं लीन होय है. भावार्थ—जाकै अपना स्वरूपका तौ प्रतिभास भया होय अर परद्रव्यविषै ममत्व न करै अर इन्द्रियनिकौं वश करै ऐसैं आत्माका चितवन करै सो साधु शुभ ध्यानविषै लीन होय है, अन्यकै शुभध्यान न होय है ॥ ४७९ ॥

वज्जियसयलवियप्पो अप्पसरूवे मणं णिरुंभित्ता ।
जं चिंतइ साणंदं तं धम्मं उत्तमं ज्झाणं ॥ ४८० ॥

भावार्थ—जो समस्त अन्य विकलपनिकूं वर्जकरि आत्म-

स्वरूपविषै मनकूं रोककरि आनंदसहित चितवन होय सो उत्तम धर्मध्यान है. भावार्थ—जो समस्त अन्य विकल्पनिसूं रहित आत्मस्वरूपविषै मनकूं थांभनेतैं आनन्दरूप चिन्तवन रहै सो उत्तम धर्मध्यान है. इहां संस्कृत टीकाकार धर्मध्यानका अन्य ग्रंथनिके अनुसार विशेष कथन किया है. ताकौं संक्षेपकरि लिखिये है—तहां धर्मध्यानके च्यारि भेद कहे हैं. आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय, संस्थानविचय, ऐसैं. तहां जीवादिक छह द्रव्य पंचास्तिकाय सप्ततत्त्व नव पदार्थनिका विशेष स्वरूप विशिष्ट गुरुके अभावतैं तथा अपनी मंदबुद्धिके वशतैं प्रमाण नय निक्षेपनितैं साधिये ऐसा जान्या न जाय तब ऐसा श्रद्धान करै जो सर्वज्ञ वीतराग देवने कह्या है सो हमारै प्रमाण है ऐसैं आज्ञा मानि ताके अनुसार पदार्थनिमैं उपयोग थांभै * सो आज्ञाविचय धर्मध्यान है १. बहुरि अपाय नाम नाशका है सो जैसैं कर्मनिका नाश होय तैसैं चितवै तथा मिथ्यात्वभाव धर्मविषै विघ्नके कारण हैं तिनिका चितवन राखै—अपने न होनेका चितवन करै परके मेटनेका चितवन करै सो अपायविचय है २. बहुरि विपाक नाम कर्मके उदयका है सो जैसा कर्म उदय होय ताका तैसा स्वरूपका चितवन करै सो विपाकविचय है ३. बहुरि लोकका स्वरूप चितवना सो संस्थान विचय है ४. बहुरि दशप्रकार भी कह्या है—अपायविचय उपायविचय जीवविचय आज्ञाविचय विपाकविचय अजीवविचय

हेतुविचय विरागविचय भवविचय संस्थानविचय. ऐसैं इनि दशनिका चितवन सो ए च्यारि भेदनिका विशेष कीये हैं. बहुरि पदस्थ पिंडस्थ रूपस्थ रूपातीत ऐसैं च्यारि भेदरूप धर्मध्यान होय है. तहां पद तो अक्षरनिके समुदायका नाम है सो परमेष्ठीके वाचक अक्षर हैं जिनकूं मंत्र संज्ञा है सो तिनि अक्षरनिकूं प्रधानकरि परमेष्ठीका चितवन करै तहां तिस अक्षरमें एकाग्रचित्त होय सो तिसका ध्यान कहिये । तहां नमोकार मन्त्रके पैंतीस अक्षर हैं ते प्रसिद्ध हैं तिनिविषै मन लगावै तथा तिस ही मन्त्रके भेदरूप कीये संक्षेप सोलह अक्षर हैं "अरहंत सिद्ध आइरिय उवज्झाय साहू" ऐसैं सोलह अक्षर हैं. बहुरि इसहीके भेदरूप 'अरहंत सिद्ध' ऐसे छह अक्षर हैं बहुरि इसहीका संक्षेप " अ सि आ उ सा " ये आदिअक्षररूप पांच अक्षर हैं. बहुरि "अरहंत" ए च्यारि अक्षर हैं. बहुरि "सिद्ध" अथवा "अर्हं" ऐसैं दोय अक्षर हैं बहुरि "ॐ" ऐसा एक अक्षर है. यामें पंचपरमेष्ठीका आदि

---

* सूक्ष्मं जिनोदितं तत्त्वं हेतुभिर्नैव हन्यते ।
आज्ञासिद्धं तु तद्ग्राह्यं नान्यथावादिनो जिनाः ॥

१ पदस्थं मन्त्रवाक्यस्थं पिण्डस्थं स्वात्मचिन्तनं ।
रूपस्थं सर्वचिद्रूपं रूपातीतं निरंजनं ॥

[२] अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो नमः ।

[३] णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरीयाणं ।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥ १ ॥

अक्षर सर्व हैं. अरहंतका अकार अशरीर जे सिद्ध तिनिका अकार आचार्यका आकार उपाध्यायका उकार मुनिका मकार ऐसैं पांच अक्षर अ+अ+आ+उ+म्="ओम्" ऐसा सिद्ध होय है. ऐसैं ए मंत्रवाक्य हैं सो इनिका उच्चारणरूप-करि मनविषै चिंतवनरूप ध्यान करै. तथा इनिका वाच्य अर्थ जो परमेष्ठी तिनिका अनन्तज्ञानादिरूप स्वरूप विचारि ध्यान करना, बहुरि अन्य भी बारह हजार श्लोकरूप नम-स्कार ग्रन्थ हैं ताके अनुसार तथा लघुबृहत् सिद्धचक्र प्रतिष्ठा ग्रंथनिमें मन्त्र कहे हैं तिनिका ध्यान करना, मन्त्रनिका के-ताइक कथन संस्कृत टीकामें है सो तहांतैं जानना. इहां सं-क्षेप लिख्या है. ऐसैं पदस्थध्यान है. बहुरि पिंड नाम श-रीरका है तिसविषै पुरुपाकार अमूर्तीक अनन्तचतुष्टयकरि संयुक्त जैसा परमात्माका स्वरूप तैसा आत्माका चिंतवन क-रना सो पिंडस्थध्यान है. बहुरि रूप कहिये अरहंतका रूप समवसरणविषै घातिकर्मरहित चौंतीस अतिशय आठ प्राति-हार्यकरि सहित अनन्तचतुष्टयमंडित इन्द्र आदिकरि पुज्य परम औदारिक शरीरकरि युक्त ऐसा अरहंतकूं ध्यावै तथा ऐसा ही संकल्प अपने आत्माका करि आपकूं ध्यावै सो रूपस्थ ध्यान है. बहुरि देहविना बाह्यके अतिशयादिकविना अपना परका ध्याता ध्यान ध्येयका भेदविना सर्व विकल्प-

---

[४] अरहंता असरीरा आइरिया तह उवज्झया मुणिणो।
पढमक्खरणिप्पणो ओंकारो पंचपरमेट्ठो ॥ १ ॥

रहित परमात्मस्वरूपविषै लयकूं प्राप्त होय सो रूपातीत ध्यान है. ऐसा ध्यान सातवें गुणस्थान होय तब श्रेणीकौं मांडै यह ध्यान व्यक्तरागसहित चतुर्थ गुणस्थानतैं लगाय सातवां गुणस्थान ताईं अनेक भेदरूप प्रवर्त्तै है ॥ ४८० ॥

आगैं शुक्लध्यानकौं पांच गाथाकरि कहैं हैं,—

जत्थ गुणा सुविसुद्धा उवसमखमणं च जत्थ कम्माणं ।
लेसा वि जत्थ सुक्का तं सुक्कं भण्णदे ज्झाणं ॥४८१॥

भाषार्थ—जहां भले प्रकार विशुद्ध व्यक्त कषायनिके अनुभवरहित उज्वल गुण कहिये ज्ञानोपयोग आदि होय, बहुरि कर्मनिका जहां उपशम तथा क्षय होय, बहुरि जहां लेश्या भी शुक्ल ही होय, तिसकौं शुक्लध्यान कहिये है. भावार्थ—यह सामान्य शुक्लध्यानका स्वरूप कह्या विशेष आगैं कहै हैं. बहुरि कर्मके उपशमनका अर क्षपणका विधान अन्य ग्रन्थनितैं टीकाकार लिख्या है सो आगैं लिखियेगा ।

आगैं विशेष भेदनिकूं कहै हैं,—

पडिसमयं सुज्झंतो अणंतगुणिदाए उभयसुद्धीए ।
पढमं सुक्कं ज्झायदि आरूढो उभयसेणीसु ॥ ४८२ ॥

भाषार्थ—उपशमक अर क्षपक इनि दोऊं श्रेणीनिविषैं आरूढ हूवा संता समय समय अनंतगुणी विशुद्धता कर्मका उपशमरूप तथा क्षयरूपकरि शुद्ध होता संता मुनि प्रथम शुक्लध्यान पृथक्त्ववितर्कवीचार नामा ध्यावै है. भावार्थ—पहलैं

मिथ्यात्व तीन, कषाय अनंतानुवंधी च्यारि प्रकृतिनिका उपशम तथा क्षय करि सम्यग्दृष्टी होय. पीछैं अप्रमत्त गुणस्थानविषै सातिशय विशुद्धतासहित होय श्रेणीका प्रारम्भ करै, तब अपूर्वकरण गुणस्थान होय शुक्लध्यानका पहला पाया प्रवर्त्तै, तहां जो मोहकी प्रकृतिनिकूं उपशभावनेका प्रारंभ करै तौ अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण सूक्ष्मसांपराय इनि तीनूं गुणस्थानविषै समय समय अनन्तगुणी विशुद्धताकरि वर्द्धमान होता संता मोहनीय कर्मकी इकईस प्रकृतिनिकूं उपशमकरि उपशांत कषाय गुणस्थानकूं प्राप्त होय है. अर कै मोहकी प्रकृतिनिकूं क्षपावनेका प्रारंभ करै तौ तीनू गुणस्थानविषै इकईस मोहकी प्रकृतिनिका सत्तामेंसूं नाशकरि क्षीणकषाय बारहवां गुणस्थानकूं प्राप्त होय है. ऐसैं शुक्लध्यानका पहला पाया पृथक्त्ववितर्कवीचार नामा प्रवर्त्तै है. तहां पृथक कहिये न्यारा न्यारा वितर्क कहिये श्रुतज्ञानके अक्षर अर अर्थ अर वीचार कहिये अर्थका व्यंजन कहिये अक्षररूप वस्तुका नामका अर मन वचन कायके योग इनिका पलटना सो इस पहले शुक्लध्यानमें होय है. तहां अर्थ तौ द्रव्य गुणपर्याय है सो पलटै, द्रव्यसूं द्रव्यान्तर गुणसूं गुणान्तर पर्यायसूं पर्यायान्तर. बहुरि तैसैं ही वर्णसूं वर्णान्तर बहुरि तैसैं ही योगसूं योगांतर है।

इहां कोई पूछै—ध्यान तौ एकाग्रचिंतानिरोध है पलटनेकूं ध्यान कैसैं कहिये ? ताका समाधान—जो जेतीवार एक-

परि थंभे सो तौ ध्यान भया पलट्या तब दूसरे परि थंभ्या सो भी ध्यान भया ऐसैं ध्यानके संतानकं भी ध्यान कहिये। इहां संतानकी जाति एक है ताकी अपेक्षा लेणी. बहुरि उपयोग पलटै सो इसके ध्याताकै पलटावनेकी इच्छा नाहीं है जो इच्छा होय तौ रागसहित यह भी धर्म ध्यान ही ठहरै. इहां रागका अव्यक्त भया सो केवलज्ञानगम्य है ध्याताकै ज्ञान गम्य नाहीं. आप शुद्ध उपयोगरूप हूवा पलटनेका भी ज्ञाता ही है. पलटना क्षयोपशम ज्ञानका स्वभाव है सो यह उपयोग बहुत काल एकाग्र रहै नाहीं याकूं शुक्ल ऐसा नाम्र रागके अव्यक्त होनेहीतैं कहा है ॥ ४८२ ॥

आगैं दूजा भेद कहैं हैं,—

णिस्सेसमोहविलये खीणकसाओ य अंतिमे काले ।
ससरूवम्मि णिलीणो सुक्कं ज्झायेदि एयत्तं ४८३

भावार्थ—आत्मा समस्त मोहकर्मका नाश भये क्षीणकषाय गुणस्थानका अंतके कालविषै अपने स्वरूपविषै लीन हूवा संता एकत्ववितर्कवीचारनामा दूसरा शुक्लध्यानकौं ध्यावै है. भावार्थ—पहले पायेमें उपयोग पलटै था सो पलटता रहगया एक द्रव्य तथा पर्यायपरि तथा एक व्यंजनपरि तथा एक योगपरि थंभि गया, अपने स्वरूपमें लीन हैही, अब घातिकर्मका नाशकरि उपयोग पलटैगा सो सर्वका प्रत्यक्ष ज्ञाता होय लोकालोककौं जानना यह ही पलटना रह्या है ॥ ४८३ ॥

आगें तीसरा भेद कहै हैं,—

केवलणाणसहावो सुहमे जोगम्मि संठिओ काए ।
जं ज्झायदि सजोगजिणो तं तादियं सुहमकिरियं च ॥

भाषार्थ—केवलज्ञान है स्वभाव जाका ऐसा सयोगी जिन सो जब सूक्ष्म काय योगमें तिष्ठै तिस काल जो ध्यान होय सो तीसरा सूक्ष्मक्रिया नामा शुक्ल ध्यान है. भावार्थ—जब घातिकर्मका नाशकरि केवल उपजै, तब तेरहवां गुणस्थानवर्ती सयोगकेवली होय है तहां तिस गुणस्थानकालका अंतमें अंतर्मुहूर्त्त शेष रहै तब मनोयोग वचनयोग रुकि जाय अर काययोगकी सूक्ष्मक्रिया रह जाय तब शुक्लध्यानका तीसरा पाया कहिये है. सो इहां उपयोग तौ केवलज्ञान उपज्या तबहीतैं अवस्थित है अर ध्यानमें अन्तर्मुहूर्त्त ठहरना कह्या है सो इस ध्यानकी अपेक्षा तौ इहां ध्यान है नाहीं अर योगके थंभनेकी अपेक्षा ध्यानका उपचार है अर उपयोगकी अपेक्षा कहिये तौ उपयोग थंभ ही रह्या है किछू जानना रह्या नाहीं तथा पलटावनेवाला प्रतिपक्षी कर्म रह्या नाहीं तातैं सदा ही ध्यान है अपने स्वरूपमें रमि रहे हैं. ज्ञेय आरसीकी ज्यों समस्त प्रतिबिंबित होय रहे हैं, मोहके नाशतैं काहूविषै इष्ट अनिष्टभाव नाहीं है ऐसैं सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती नामा तीसरा शुक्लध्यान प्रवर्त्तै है ॥ ४८४ ॥

आगें चौथा भेद कहै हैं,—

जोगविणासं किच्चा कम्मचउक्कस्स खवणकरणट्ठं ।

जं ज्झायदि अजोगिजिणो णिक्किरियं तं चउत्थं च

भाषार्थ—केवली भगवान् योगनिकी प्रवृत्तिका अभाव-करि जब अयोगी जिन होय हैं तब अघातियाकी प्रकृति सत्तामें पिच्यासी रहीं हैं तिनिका क्षय करनेके अर्थ जो ध्यावै है सो चौथा व्युपरतक्रियानिवृत्ति नामा शुक्लध्यान होय है. भावार्थ—चौदहवां गुणस्थान अयोगीजिन है तहां स्थिति पंचलघु अक्षरप्रमाण है. तहां योगनिकी प्रवृत्तिका अभाव है सो सत्तामें अघातिकर्मकी पिच्यासी प्रकृति हैं तिनिके नाशका कारण यह योगनिका रुकना है तातैं इसकौं ध्यान कह्या है. सो तेरहवां गुणस्थानकी ज्यों इहां भी ध्यानका उपचार जानना. किछू इच्छापूर्वक उपयोगका थांभनेरूप ध्यान है नाहीं, इहां कर्म प्रकृतिनिके नाम तथा और भी विशेष कथन अन्यग्रंथनिके अनुसार हैं सो संस्कृत-टीकातैं जानना, ऐसैं ध्यान तपका स्वरूप कह्या ॥ ४८५ ॥

आगें तपके कथनकौं संकोचै हैं,—

एसो वारसभेओ उग्गतवो जो चरेदि उवजुत्तो ।
सो खविय कम्मपुंजं मुत्तिसुहं उत्तमं लहई ॥४८६॥

भाषार्थ—यह बारह प्रकारका तप कह्या जो मुनि इनि-विषै उपयोग लगाय उग्र तीव्र तपकौं आचरण करै है सो मुनि मुक्तिके सुखकौं पावै है. कैसा है मुक्तिसुख खेपे हैं कर्मके पुंज जानैं बहुरि अक्षय है. अविनाशी है. भावार्थ—तप-

तैं कर्मकी निर्जरा होय है अर संवर होय है सो ए दोऊ ही मोक्षके कारण हैं सो जो मुनिव्रत लेयकरि बाह्य अभ्यंतर भेदकरि कह्या जो तप ताकौं तिस विधानकरि आचरै है सो मुक्ति पावै है, तब ही कर्मका अभाव होय है. याहीतैं अविनाशी बाधा रहित आत्मीक सुखकी प्राप्ति होय है. ऐसैं बारह प्रकारके तपके धारक तथा इस तपका फल पावैं ते साधु च्यारि प्रकारकरि कहे हैं. अनगार, यति, मुनि, ऋषि, तहां सामान्य साधु गृहवासके त्यागी मूलगुणनिके धारक ते अनगार हैं. बहुरि ध्यानमें तिष्ठैं श्रेणी मांडैं ते यति हैं. बहुरि जिनकौं अवधि मनःपर्ययज्ञान होय तथा केवलज्ञान होय ते मुनि हैं. बहुरि ऋद्धिधारी होंय ते ऋषि हैं. तिनके च्यारि भेद. राजऋषि, ब्रह्मऋषि, देवऋषि, परमऋषि, तहां विक्रिया ऋद्धिवाले राजऋषि, अक्षीण महानस ऋद्धिवाले ब्रह्मऋषि, आकाशगामी देवऋषि, केवलज्ञानी परमऋषि हैं ऐसैं जानना ॥ ४८६ ॥

आगैं या ग्रंथका कर्त्ता श्रीस्वामिकार्त्तिकेयनामा मुनि हैं सो अपना कर्त्तव्य प्रगट करै हैं,—

जिणवयणभावणट्ठं सामिकुमारेण परमसद्धाए ।
रइया अणुपेक्खाओ चंचलमणरुंभणट्ठं च ॥४८७॥

भावार्थ—यह अनुप्रेक्षा नाम ग्रंथ है सो स्वामिकुमार जो स्वामिकार्तिकेय नामा मुनि तानैं रच्या है. गाथारूप रचना करी है. इहां कुमार शब्दकरि ऐसा सूच्या है जो यह मुनि

जन्महीतैं ब्रह्मचारी हैं तानै यह रची है, सो श्रद्धाकरि रची है. ऐसा नाहीं जो कथनमात्रकरि दिई हो इस विशेषणतैं अनुप्रेक्षातैं अति प्रीति सूचै है. बहुरि प्रयोजन कहै हैं कि,-जिन वचनकी भावनाकी अर्थ रच्या है. इस वचनतैं ऐसा जनाया है जो ख्याति लाभ पुजादिक लौकिकप्रयोजनके अर्थ नाहीं रच्या है. जिनवचनका ज्ञान श्रद्धान भया है ताकौं बारम्बार भावना स्पष्ट करना यातैं ज्ञानकी वृद्धि होय कषायनिका प्रलय होय ऐसा प्रयोजन जनाया है. बहुरि दूजा प्रयोजन चंचल मनकौं थांभनेके अर्थ रची है. इस विशेषणतैं ऐसा जानना जो मन चंचल है सो एकाग्र रहै नाहीं. ताकौं इस शास्त्रमें लगाइये तौ रागद्वेषके कारण जि विषय तिनिविषै न जाय. इस प्रयोजनके अर्थ यह अनुप्रेक्षा ग्रंथकी रचना करी है. सो भव्य जीवनिकौं इसका अभ्यास करना योग्य है. जातैं जिनवचनकी श्रद्धा होय, सम्यग्ज्ञानकी वधवारी होय. अर मन चंचल है सो इसके अभ्यासमें लगै अन्य विषयनिविषै न जाय ॥ ४८७ ॥

आगें अनुप्रेक्षाका माहात्य कहि भव्यनिकौं उपदेशरूप फलका वर्णन करै हैं,—

बारसअणुपेक्खाओ भणिया हु जिणागमाणुसारेण ।
जो पढइ सुणइ भावइ सो पावइ उत्तमं सोक्खं ॥

भावार्थ-ए बारह अनुप्रेक्षा जिन आगमके अनुसार ले प्रगटकरि कही हैं ऐसा वचनकरि यह जनाया है जो मैं—

ल्पित न कही हैं पूर्व अनुसारतैं कही हैं सो इनिकौं जो भव्य जीव पढै अथवा सुणै अर इनिकी भावना करै वारम्वार चिंतवन करै सो उत्तम सुख जो वाधारहित अविनाशी स्वात्मीक सुख, ताकौं पावै. यह संभावनारूप कर्त्तव्य अर्थका उपदेश जानना. भव्य जीव है सो पढौ सुणो वारम्वार इनिका चितवन रूप भावना करौ ॥ ४८८ ॥

आगें अन्त्यमंगल करै हैं,--

तिहुयणपहाणस्वामिं कुमारकाले वि तविय तवयरणं।
वसुपुज्जसुयं मल्लिं चरिमातियं संथुवे णिच्चं ॥४८९॥

भावार्थ—तीन भुवनके प्रधानस्वामी तीर्थंकर देव जिनने कुमार कालविषै ही तपश्चरण धारण किया, ऐसे वसुपूज्य राजाके पुत्र वासुपूज्यजिन, अर मल्लिजिन अर चरम कहिये अंतके तीन नेमिनाथ जिन, पार्श्वनाथ जिन, वर्द्धमान जिन ए पांच जिन, तिनिकौं मैं नित्य ही स्तवूं हूं तिनिके गुणानुवाद करूं हूं वंदूं हूं. भावार्थ—ऐसैं कुमारश्रमण जे पांच तीर्थंकर तिनिकौं स्तवन नमस्काररूप अंतमंगल कीया है. इहां ऐसा सूचै है कि—आप कुमार अवस्थामें मुनि भये हैं तातैं कुमार तीर्थंकरनितैं विशेष प्रीति उपजी है तातैं तिनिके नामरूप अंतमंगल कीया है ॥ ४८९ ॥

ऐसै श्रीस्वामिकार्त्तिकेय मुनि यह अनुप्रेक्षा नामा ग्रन्थ समाप्त कीया।

आगैं इस वचनिकाके होनेका संबन्ध लिखिये हैं,—

दोहा ।

प्राकृत स्वामिकुमार कृत, अनुप्रेक्षा शुभ ग्रन्थ ।
देशवचनिका तासकी, पढौ लगौ शिवपंथ ॥ १ ॥

चौपई ।

देश ढुंढाहड़ जयपुर थान । जगतसिंह नृपराज महान ।
न्यायबुद्धि ताकैं नित रहै । ताकी महिमा कोकवि कहै ॥२॥
ताके मंत्री बहुगुणवान । तिनकैं मंत्र राजसुविधान ॥
ईति भीति लोकनिकै नाहिं । जो व्यापै तौ झट मिटि जाहिं
धर्मभेद सब मतके भले । अपने अपने इष्ट जु चले ॥
जैनधर्मकी कथनी तनी । भक्ति प्रीति जैननिकैं घनी ॥ ४ ॥
तिनमें तेरापंथ कहाव । धरैं गुणीजन करै वढाव ॥
तिनिकैं मध्य नाम जयचंद्र । मैं हूं आतमराम अनंद ॥ ५ ॥
धर्मरागतैं ग्रन्थ विचारि । करि अभ्यास लेय मनधारि ॥
भावन बारह चिंतवन सार । सो हूं लखि उपज्यो सुविचार ६
देशवचनिका करिये जोग । सुगम होय बांचै सब कोय ॥
यातैं रची वचनिका सार । केवल धर्मराग निरधार ॥ ७ ॥
मूलग्रन्थतैं घटि वढि होय । ज्ञानी पंडित सोधौ सोय ॥
अल्पबुद्धिकी हास्य न करैं । संतपुरुष मारग यह धरैं ॥ ८ ॥
बारह भावनकी भावना । बहु लै पुण्ययोग पावना ॥
तीर्थंकर वैराग जु होय । तब भावै सब राग जु खोय ॥९॥
दीक्षा धारै तब निरदोष । केवल ले अरु पावै मोष ॥
यह विचारि भावौ भवि जीव । सब कल्याण सु धरौ सदीव ॥१०॥

पंच परमगुरु अरु जिनधर्म । जिनबानी भाषै सब मर्म ॥
चैत्य चैत्यमंदिर पढि नाम । नमूं मानि नव देव सुधाम ११

दोहा ।

संवत्सर विक्रमतणूं, अष्टादशशत जानि ।
त्रेसठि सावण तीज वदि, पुरण भयो सुथानि ॥१२॥
जैनधर्म जयवंत जग, जाको मर्म सु पाय ।
वस्तु यथारथरूप लखि, ध्यावें शिवपुर जाय ॥१३॥

इति श्रीस्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा जयचंदजीकृत
वचनिकासहित समाप्त ।

लीजिये ! पांचसौका ग्रंथराज इक्यावन रुपयेमें—

सिद्धांत ग्रंथ गोम्मटसारजी ।

(लब्धिसार क्षपणासारजी भी साथमें हैं)

ये ग्रन्थराज पांच वर्षसे हमारे यहां छप रहे थे, सो अब लब्धिसारक्षपणासारजी सहित ६ खंडोंमें छपकर संपूर्ण हो गये । जीवकांड १४०० पृष्ठ कर्मकांड संदृष्टिसहित १६००, पृष्ठ लब्धिसारक्षपणासारजी ११०० पृष्ठ कुल ४१०० पृष्ठ श्लोक संख्या सबकी अनुमान १,२५००० के होगी । क्योंकि इन सबमें संस्कृतटीका और स्वर्गीय पं० टोडरमलजी कृत वचनिका सहित मूलगाथायें छपी हैं । कागज स्वदेशी ऐंटिक टिकाऊ ५० पौंडके लगाये गये हैं । ऐसा वडा ग्रंथ जैनसमाजमें न तो किसीने छपाया और न कोई आगेको भी छपानेका साहस कर सकता है । अगर इस समस्त ग्रन्थको हाथसे लिखवाया जाय तो ५००) रु० से ऊपर खर्च पडेंगे और १० वर्षमें भी सायद लिखकर पूरा न होगा वही ग्रंथ हाथसे लिखे हुये ग्रंथोंसे भी दो बातोंमें पवित्र छपा हुवा—केवल ५१) रुपयोंमें देते हैं डांकखर्च ३।) जुदा लगेगा ।

ये ग्रंथराज सिद्धांत ग्रंथोंमें एक ही हैं यह जैनधर्मके समस्त विषय जाननेके लिए दर्पण समान हैं । इसके पढ़े विना कोई जैनधर्मका जानकार पण्डित ही नहीं हो सकता ।

लब्धिसार क्षपणासारजी ।

(भाषा और संस्कृतटीका सहित)

भगवान नेमिचन्द्राचार्य जब गोमट्टसारजी सिद्धांतग्रंथकी रचना कर चुके और उसमें केवल बीस प्ररूपणाओंका तथा जीवको अशुद्ध दशामें रखनेवाले कर्मोंका ही वर्णन आ पाया तो उनने सांसारिक दशासे मुक्त होनेकी रीतिका भी वर्णन करना उपयुक्त समझा । बस ! इसी बातका इस ग्रन्थमें सविस्तर वर्णन हैं । यदि आपने अपनी अनन्त कालसे संसारमें परिभ्रमणकर प्राप्त हुई पर्यायोंका दिग्दर्शन कर लिया है, यदि आपने उन अशुद्ध वैभाविक पर्यायोंको उत्पन्न करानेवाले वास्तविक कर्मरूपी शत्रुओंकी समस्त सेनाको पहिचान लिया है तो आपका सबसे पहिले यह कर्तव्य है कि आप अपनी शुद्ध दशा होनेकी रीति जो आचार्य महाराजने इस ग्रन्थमें बतलाई है, उसका मनन अध्ययन करें । पुष्ट कागज, मोटे अक्षरोंमें पं० टोडरमल्लजी कृत भाषा भाष्य और संस्कृतटीका सहित है । पृष्ठ संख्या ११०० सौ । न्योछावर १२॥) पोष्टेज १।) जुदा ।

जिन भाइयोंने गोमट्टसारजी पूर्ण लिये हैं उनको तो अवश्य ही यह ग्रंथ मंगाना चाहिये । न्योछावर उनके लिए १०) रु० ही है । पोष्टेज जुदा ।